साहित्य अमृत

चैत्र-वैशाखा, संवत्-२०७८-७९ ❖ अप्रैल २०२२ मासिक

वर्ष-२७ ❖ अंक-९ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

✍ संपादकीय

प्रभु श्रीराम के देश में ४

✍ प्रतिस्मृति

एक नई शुरुआत/ *नरेंद्र कोहली* ६

✍ कहानी

थैंक्यू नंदू, थैंक्यू आंटी…!/ *प्रकाश मनु* १०

इस रिश्ते को क्या नाम दूँ?/ *विपिन पवार* ३०

जीवाणु सम्मेलन/ *कर्नल पी.सी. वशिष्ठ* ४८

शाख से टूटी हुई…/ *इला प्रसाद* ५६

सिंदूर/ *रणीराम गढ़वाली* ६६

✍ लघुकथा

विवशता/ *रेनू मंडल* १६

सिर्फ रोटियाँ/ *बलराम अग्रवाल* २५

अवधारणा/ *भगवान वैद्य 'प्रखर'* २९

नजर/ *योगेंद्र नाथ शुक्ल* ६४

चौहद्दी से मुक्ति/ *योगेंद्र नाथ शुक्ल* ६८

ऑनलाइन रिश्ते/ *नेहा सूरज बिनानी 'शिल्पी'* ७२

जमाना/ *भगवान वैद्य 'प्रखर'* ७६

✍ आलेख

हम क्यों भूलते जा रहे हैं विक्रम संवत्?/ *राजशेखर व्यास* १४

संत-साहित्य का वैभव और दादूपंथ/ *नंद किशोर पांडेय* २२

विवशताएँ/ *चंद्रपाल मिश्र 'गगन'* २६

महुआ डबर/ *कादंबरी मेहरा* ३६

अमेरिका का हिंदू समाज, पहचान की तलाश/ *रेणु 'राजवंशी' गुप्ता* ४२

विस्थापन : एक अनवरत यात्रा/ *देवी प्रसाद तिवारी* ५०

लोक-संस्कृति का आँगन : पुरखौती मुक्तांगन/ *संदीप राशिनकर* ५४

साहित्यकार : दायित्व बोध का प्रश्न/ *वेद प्रकाश* ६०

स्वाधीनता संघर्ष के अमर नायक सरदार अजीत सिंह/ *उत्कर्ष श्रीवास्तव* ७४

✍ कविता

गजलें/ *बालस्वरूप राही* १७

गदराई गेहूँ की बाली/ *सूर्यप्रकाश मिश्र* २१

जीवन सपना है/ *आर.सी. शुक्ला* ३५

मस्ती में झूमता/ *मंजु गुप्ता* ५३

रिश्ते सँभालकर देखो/ *ब्रह्मानंद झा* ५५

स्मृतियाँ आलंबन/ *अनिल अग्निहोत्री* ६९

✍ संस्मरण

कवि-सम्मेलन के बहाने दिनकरजी से भेंट/ *भैंरूलाल गर्ग* १८

✍ जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख

डॉ. भीमराव आंबेडकर, मदाम भीकाजी कामा ३९

✍ राम झरोखे बैठ के

जेब कतरे महान् होते हैं/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४५

✍ ललित-निबंध

धूँ-धूँ जले रे नरबाई/ *नर्मदाप्रसाद सिसोदिया* ६२

✍ साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

मराठी कविताएँ/ *संजय चौधरी* ६५

✍ साहित्य का विश्व परिपार्श्व

बंदर/ *एलेक्जेंडर किलैंड* ७०

✍ लोक-साहित्य

धनगर जाति का लोक-साहित्य/ *योगेश राणुजी कोरटकर* ७७

✍ बाल-संसार

कबीर, नविका और मछली/ *मधु काँकरिया* ७३

✍ वर्ग-पहेली ७९

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८०

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८१

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

प्रभु श्रीराम के देश में···

एक कहानी प्रचलित है, जिसमें अपने आश्रम में रहनेवाली चिड़ियों को एक साधु बताते हैं···"बहेलिया आएगा, जाल बिछाएगा, दाना डालेगा, लोभ में आकर फँसना नहीं···" अब चिड़ियाँ रट लेती हैं, साधु को दोहराकर बता देती हैं कि उन्होंने अक्षरश: उनकी सीख को कंठस्थ कर लिया है! एक दिन सारी चिड़ियाँ गायब मिलती हैं। साधु योगमाया से पता लगा लेते हैं कि चिड़ियाँ बहेलिए के जाल में फँस गई हैं। साधु वहाँ पहुँचकर चिड़ियों से पूछते हैं कि तुम सबको क्या सिखाया था···तो सब की सब फिर से दोहरा देती हैं···'बहेलिया आएगा···जाल बिछाएगा···!' उन्होंने सीख ले तो रखी थी किंतु उस पर अमल नहीं किया। लगता है, हम भारतवासी प्रभु श्रीराम के संदर्भ में पूरी तरह चिड़ियों जैसा ही बरताव कर रहे हैं। हम उनके नाम का जयकारा लगाते हैं, उनके मंदिर के लिए भरपूर उत्साह एवं समर्पण का प्रदर्शन करते हैं किंतु जब प्रभु श्रीराम के आदर्शों एवं संदेशों को जीवन में उतारने अथवा उनसे कुछ सीखने की बात आती है तो वहाँ हम अत्यंत निराशाजनक व्यवहार करते पाए जाते हैं। प्रभु श्रीराम माता-पिता की भक्ति एवं आज्ञापालन के लिए जाने जाते हैं। अपनी सौतेली माँ के आदेश को भी सहर्ष शिरोधार्य करके राजगद्दी छोड़कर वन जाने को तैयार हो जाते हैं। आज उन्हीं प्रभु श्रीराम के भारत में कितने ही नगरों में अनेकानेक वृद्धाश्रम और 'सीनियर सिटिजन होम' खुल गए हैं तथा निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। हजारों बुजुर्ग पिता अपनी ही संतानों के विरुद्ध न्यायालयों का द्वार खटखटाने को विवश हैं! आए दिन लाचार माता-पिता को घर से बाहर निकाल देने या उन्हीं के बनाए घरों से उन्हें छल-कपट या जोर-जबरदस्ती से बेदखल कर देने के कष्टप्रद समाचार सामने आते रहते हैं।

प्रभु श्रीराम एवं सीताजी की जोड़ी आपसी-प्रेम, समर्पण के लिए भारत ही नहीं, पूरे विश्व के लिए एक प्रेरणा है। जब राम वनगमन के लिए तैयार होते हैं तो सीता को महल में ही रुकने की सलाह दी जाती है, क्योंकि वे राजकुमारी की तरह सुख-सुविधाओं में पली-बढ़ी हैं; ऐसे में वन का कष्टदायक जीवन उनके लिए उचित नहीं रहेगा। किंतु सीता नहीं मानतीं और राम के साथ हर कष्ट का सामना करने को अपना कर्तव्य मानकर साथ जाती हैं। इसी प्रकार जब रावण वध के बाद राम यज्ञ करते हैं तो उन्हें दूसरे विवाह की सलाह दी जाती है, क्योंकि सीताजी को वन भेज दिया गया था, किंतु राम विवाह के प्रस्ताव को ठुकराकर सीता की स्वर्णमूर्ति बनवाकर यज्ञ करते हैं। सीता के पृथ्वी में समा जाने के बाद प्रभु राम सीता के वियोग में जल-समाधि ले लेते हैं। आज राम-सीता के ही भारत में पति-पत्नी में तलाक के लाखों मुकदमे अदालतों में लंबित हैं। इन मुकदमों में प्राय: मनगढ़ंत आरोप मढ़े जाते हैं। वकीलों के लिए यह लाभदायक व्यवसाय बन गया है। इन मुकदमों के कारण लाखों युवक-युवतियों का जीवन बरबाद हो रहा है। इसी प्रकार राम-लक्ष्मण का प्रेम भी संपूर्ण विश्व के लिए प्रेरणास्रोत है। लक्ष्मण बचपन से ही राम के साथ रहते हैं। जब राम वन जाने की तैयारी करते हैं तो लक्ष्मण जिद करके उनके साथ जाते हैं और वन के कष्टों को सहना सहर्ष स्वीकार करते हैं। आज राम-लक्ष्मण वाले भारत में घर-घर में भाई-भाई के बीच संपत्ति के बँटवारे को लेकर कितने मुकदमे हैं। आपसी कलह है, बँटवारे हैं, बताने की आवश्यकता नहीं। वन में चौदह वर्ष का कठिन वनवास, फिर सीताहरण तथा रावण से युद्ध के पश्चात् अयोध्या के राजा के रूप में चैन से जीने का समय आता है तो अयोध्या के एक नागरिक का सीताजी के संबंध में किया गया आक्षेप राम को एक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए विवश कर देता है। राम स्वयं भी सीताजी की पवित्रता से अनभिज्ञ नहीं थे किंतु 'लोक' मत का सम्मान उनके लिए सर्वोपरि बन जाता है, भले ही मात्र एक व्यक्ति का आक्षेप था और वह भी झूठा! आज भी कवियों, लेखकों, नारीवादियों ने राम की आलोचना करना नहीं छोड़ा है कि उन्होंने गर्भवती सीता को निर्दोष होने के बावजूद वन क्यों भेजा? किंतु लोकमत के लिए इतना बड़ा बलिदान देकर आदर्श प्रस्तुत करनेवाले राम के देश में, जो विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, अकसर न्याय की माँग करनेवाले सरकारों की उपेक्षा तथा दमन का शिकार होते हैं, चाहे वे विद्यार्थी हों अथवा शिक्षक, श्रमिक हों या पेशेवर!

रामकथा संपूर्ण विश्व को प्रेरणा देती है, तभी विश्व की हर भाषा में वह सँजोई गई है, भले ही उसका रूप कुछ-न-कुछ परिवर्तित कर दिया गया हो, किंतु राम का चरित्र, राम के आदर्श नहीं बदलते। विश्व के बड़े इसलामी देश इंडोनेशिया में वे राष्ट्रीय महापुरुष हैं तो बौद्ध देश थाईलैंड में भी उनके आदर्श महापुरुष। दुनिया के एक हजार शहरों, कस्बों, मोहल्लों के नाम राम के नाम पर हैं। ऐसे संपूर्ण विश्व के वंदनीय राम के देश को उनके आदर्शों को अपने जीवन में उतारकर एक उदाहरण प्रस्तुत करना होगा।

२१वीं सदी के विश्व में

पुराने समय का अवलोकन करें तो यही समझ में आएगा कि मनुष्य को हिंसा से कितना लगाव था! कितना लड़ाकू था मनुष्य! राजाओं, शासकों के पास लड़ने के अलावा जैसे कोई काम ही नहीं था! पूरा इतिहास भयानक युद्धों से भरा पड़ा है। कितनी मारकाट, कितना खून-खराबा, कितनी हिंसा, कितना विनाश···! युद्ध के पश्चात् हारनेवाले देश अथवा

राज्य के निर्दोष नागरिकों पर भयावह अत्याचार, लूटपाट, महिलाओं के साथ पाशविक दुर्व्यवहार···। उदाहरण के लिए अप्रैल महीने की ही किसी तिथि पर नजर डालते हैं। चलिए दो अप्रैल की तिथि का इतिहास जानते हैं। सन् १४५३ में तुर्की सेनाओं ने इस्तांबुल पर कब्जा किया। १८०१ में ब्रिटिश फौजों ने कोपेनहेगन (डेनमार्क) पर कब्जा किया। १९१७ में अमरीका ने इसी दिन जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। १८६५ में पीटर्सबर्ग का युद्ध समाप्त हुआ, ब्लेकने फोर्ट का युद्ध चला, १८८३ में बामाको युद्ध, जिसमें फ्रांस भागीदार था, और भी कितने ही छोटे-छोटे युद्ध। फिर किसी देश में पड़ोसी राज्यों के आपसी युद्ध। प्रथम विश्वयुद्ध, द्वितीय विश्वयुद्ध की भयानक यादें शायद ही कभी समाप्त हो सकें। हिरोशिमा, नागासाकी में परमाणु बमों से महाविनाश! लाखों निर्दोष नागरिक किसी सनकी तानाशाह या विश्वविजेता का स्वप्न देखनेवाले की हवस का शिकार हुए। करोड़ों लोग अपाहिज हुए, घर से बेघर हुए। सर्वाधिक विपदा महिलाओं पर टूटी। द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाशक परिणामों के बाद मनुष्य का रुझान कुछ सभ्य बनने तथा शांति की स्थापना की ओर हुआ। जन्म हुआ संयुक्त राष्ट्र संघ का—पूरे विश्व के मनुष्य के कल्याण के उद्देश्य के साथ। शक्तिशाली देशों पर कुछ अंकुश लगाने की मंशा से। अंतरराष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हुई। जब विश्व दो खेमों में बँटा तो गुटनिरपेक्ष देशों ने संतुलन बनाने में सराहनीय भूमिका निभाई, जिसमें भारत का बहुमूल्य योगदान रहा! युद्ध तो होते रहे किंतु वैश्विक हस्तक्षेप के कारण बहुत लंबे नहीं खिंचे! विडंबना देखिए कि जब विज्ञान ने मनुष्य का जीवन असंख्य सुख-सुविधाओं से भर दिया है, दुनिया भर के पुस्तकालय पुस्तकों से भरे पड़े हैं, लाखों पूजाघर हैं, संचार के विकसित साधन हैं, विश्व सचमुच एक संयुक्त परिवार में बदल चुका है और किसी देश में सौ से भी अधिक देशों के नागरिक मिल जाएँगे, तब ऐसे विकास की सुखद यात्रा में पहले कोरोना जैसी महामारी ने करोड़ों इनसानों का जीवन ठप्प कर दिया। इस महामारी से पूरी तरह उबरने भी न पाए थे कि रूस-यूक्रेन के युद्ध की विभीषिका सामने आई। कौन दोषी है, कितना दोषी है, उस पर बहस हो सकती है, किंतु २१वीं सदी की विकसित सभ्यता के युग में लाखों परिवारों का पलायन, हजारों निर्दोष नागरिकों की मौत, अस्पतालों तक में बमबारी, महिलाओं-बच्चों की मौत तो पूरी मानवता के लिए लज्जा का विषय है। युद्ध तो कहीं हो, कभी हो, छोटा हो, बड़ा हो, सिर्फ विनाश ही लाता है। यह भी निर्विवाद है कि लड़नेवाले दो देश ही नहीं, पूरा विश्व किसी-न-किसी रूप में युद्ध के दुष्परिणाम भुगतता है। रूस-यूक्रेन युद्ध के दौरान जबकि एक ओर बम और मिसाइलें अपना भयानक रूप दिखा रहे हैं, इनसानियत के दृश्य उम्मीद की किरणें जगा रहे हैं। भारतीय छात्र-छात्राएँ जब यूक्रेन से दूसरे देशों, जैसे पोलैंड या रोमानिया आदि में आ गए तो वहाँ के प्रवासी भारतीय स्वयं छात्र-छात्राओं की सहायता के लिए आगे बढ़कर आए। एक भारतीय लड़की ने भारत न लौटकर यूक्रेन के उस परिवार के साथ रहने का फैसला, जिसने उसे मुश्किल दिनों में सहारा दिया था, इनसानियत तथा प्रेम की मिसाल बन गया। एक बुजुर्ग नागरिक का टैंक के सामने खड़े होकर ललकारना कि तुम्हें मुझे कुचलकर ही आगे बढ़ना होगा अथवा एक मासूम बच्ची का आगे बढ़ते सैनिकों को ललकारना··· ऐसे दृश्य देशप्रेम की प्रेरणा देते हैं। विश्व में जितने भी युद्ध हुए, उनका अंत हमेशा आपसी समझौते तथा संवाद से ही हुआ है। काश युद्ध से पहले ही संवाद कारगर हों और विश्व के नागरिक दहशत और तबाही से बचे रहें। आवश्यकता है कि दुनिया भर के देश एक बार फिर सोचें कि इस विकसित विश्व में युद्ध का क्या औचित्य है। अरबों रुपयों की संपत्ति का नष्ट होना, हजारों की मौत, लाखों का जीवनभर को अपाहिज होना—कब तक? कब तक?

□

हे मतदाता···

पाँच राज्यों में चुनाव संपन्न हुए। कुछ नतीजे न केवल रोचक हैं, वरन् कुछ सोचने-समझने तथा सबक लेने को भी विवश करते हैं। एक प्रांत में कई दशक तक राजनीति के सूत्रधार रहे बुजुर्ग नेता चुनाव हार जाते हैं। इसी प्रांत में कई बार सरकार बनानेवाले दल के अध्यक्ष चुनाव हार जाते हैं। इसी प्रांत में कार्यरत मुख्यमंत्री दोनों क्षेत्रों से चुनाव हार जाते हैं। एक-दूसरे प्रांत में तीन बार सरकार चलानेवाले दल को मात्र एक सीट पर विजय मिलती है।

एक प्रांत में दल तो विजयी होता है किंतु मुख्यमंत्री स्वयं चुनाव हार जाते हैं। एक अन्य प्रांत में दल को प्रचंड बहुमत मिलता है किंतु उपमुख्यमंत्री समेत दस मंत्री चुनाव हार जाते हैं। थोड़ा पीछे लौटें तो कार्यरत प्रधानमंत्री को भी चुनाव में हार मिली तथा भविष्य में प्रधानमंत्री बननेवाले भी चुनाव हारे।

निष्कर्ष यही है कि मतदाता बहुत शक्तिशाली है। कोई अपने दल में अथवा सरकार में कितने ही ऊँचे पद पर हो, मतदाता पर उसके रुतबे का कोई असर नहीं पड़ता। यह भारतीय लोकतंत्र की जीवंतता का प्रमाण है।

अब आवश्यकता इस बात की है कि मतदाता, यानी आम जनता अपनी शक्ति को पहचाने तथा राजनीति में आई विकृतियों को दूर करने में अपनी शक्ति का प्रयोग करे। वर्तमान चुनाव परिणामों की कुछ बातें परेशान करनेवाली हैं। इस चुनाव में एक बड़े प्रांत में विजयी उम्मीदवारों की स्वयं की घोषणा के मुताबिक दागी विधायकों की संख्या १४३ (२०१७) से बढ़कर २०५ हो गई है। १५ प्रतिशत की वृद्धि चिंताजनक है। इनमें गंभीर अपराध वाले १०७ से बढ़कर १५८ हैं, यह भी विचारणीय है।

विजेता उम्मीदावारों में ३२२ (२०१७ में) करोड़पतियों से बढ़कर ३६६ होना भी यही दरशाता है कि साधनहीन या सामान्य नागरिकों का चुनाव लड़ना कितना दुष्कर हो गया है। विजेता महिलाओं का प्रतिशत १० से १२ हो जाना, यानी २०१७ में ४० से अब ४७ हो जाना भी अखरता है। यदि मतदाता और भी जागरूक हों तो राजनीति से आपराधिक पृष्ठभूमि के उम्मीदावारों तथा बाहुबलियों की विदाई हो सकती है, जो अत्यंत आवश्यक है। राजनीति में आपराधिक पृष्ठभूमि वालों की वृद्धि एक कलंक है तथा विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए लज्जाजनक भी।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

एक नई शुरुआत

● नरेंद्र कोहली

घनश्यामदास की तबीयत कल शाम से काफी खराब थी।

कोई और समय होता तो शायद वे चारपाई से हिलते भी नहीं। कौन सा अब दफ्तर जाना होता है। पड़े रहते चुपचाप! रिटायर हो जाने का यही तो सुख है। पर चुप पड़े रहने की बात पूरी होती नजर नहीं आ रही थी उन्हें।

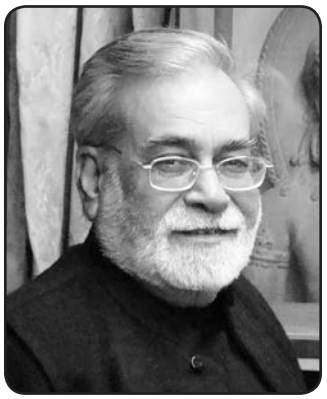

सहसा उन्होंने ऊँचे स्वर में पुकारकर कहा, "सुना तुमने! मेरे लिए तीन-चार दातुनें भी रख लेना। कौन जाने वहाँ दातुनें मिलें, न मिलें।"

वे हाँफकर चुप हो गए थे। वे अधिक चीख-चिल्ला नहीं सकते थे। दिल के मरीज के लिए वे सारी बातें खतरनाक हैं, जो कल शाम से हो रही थीं। वे सोचते जाते थे और दर्द की एक तीखी छुरी उनकी बाईं पसलियों से ऊपर की ओर चलनी शुरू हो जाती थी...

उनकी बात का उत्तर किसी ने नहीं दिया था। उत्तर की उन्हें कोई इच्छा भी नहीं थी। वे अपनी पत्नी को काफी अच्छी तरह जानते थे। एक लगभग पूरी-की-पूरी उम्र कटी थी उसके साथ। वह यदि उत्तर देती तो कोई-न-कोई ऐसी ही मूर्खतापूर्ण बात कहती, जिससे उनकी तकलीफ बढ़ ही जाती, घटती नहीं।

कल शाम से इस घर में कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। किसी ने मजबूरी में किसी से कुछ कहा भी तो बहुत धीमे स्वर में, जैसे ऊँचे स्वर में बोलने से कोई मर्यादा टूटती हो, किसी का अपमान होता हो। इतने ऊँचे स्वर में बोलने की बात तो कोई सोच ही नहीं सकता था, जितने ऊँचे स्वर में घनश्यामदास बोले थे। सब चुप-चुप थे, अपने आप में डूबे हुए। कौन अधिक दु:खी है, यह कोई नहीं जानता था, इसलिए कोई किसी को सांत्वना भी नहीं दे रहा था।

घनश्यामदास कैसे इतने ऊँचे स्वर में बोल गए, शायद पत्नी के प्रति खीझ के कारण। सुबह से वह तैयारी कर रही है और अभी तक तैयार नहीं हो पाई है। दोपहर दो बजे वाली बस तो निकल ही गई समझो। उसके बाद वाली भी पकड़ पाएँगे कि नहीं, कहा नहीं जा सकता। देर हो जाएगी शायद। लड़की अकेली जाने वहाँ किस हाल में होगी। छोटे-छोटे बच्चे हैं और फिर इस उम्र में यह सदमा! और यहाँ यह है लड़की की माँ—एक कपड़ा अटैची में रखती है और सिर पर हाथ रखकर रोने लगती है। ऐसे कब तक तैयार होगी यह···

उनकी खीझ दु:ख से भी ऊँची चढ़ गई थी कहीं। दु:ख दबकर, तह होकर, खीझ के नीचे कहीं छिप गया था। शायद इसी कारण वे इतने ऊँचे स्वर में बोल सके थे···

पर ऊँचा बोलकर वे पछताए ही थे। क्रोध उनके लिए विष था विष! क्रुद्ध होते ही जैसे उनके शरीर का सारा रक्त उनके सिर को जा चढ़ता। मुँह लाल सुर्ख हो जाता और एक तरह के नशे में वे कुछ कह जाते, कुछ कर जाते। पर गुस्से का भाटा बहुत दुखदाई होता। क्रोध बाढ़ के पानी के समान जब पीछे हटता तो जैसे कितने ही साँप-केंचुए, कीड़े-मकोड़े और भयंकर बीमारियाँ पीछे छोड़ जाता। घनश्यामदास पस्त हो जाते, जैसे नशा टूटा हो। साँस उखड़ने लगती, छाती में दर्द बढ़ जाता और अंग-अंग में दर्द होने लगता।

□

अभी कल सवेरे घनश्यामदास अपनी मुक्ति की बात सोच रहे थे।

एक लंबा परिवार पाला था उन्होंने। लगता था, जैसे उनके बच्चे न हों, राशन लेने वालों की एक लंबी कतार हो, जो खत्म होने पर नहीं आती। वे अपनी पत्नी से मजाक किया करते थे—"परमेश्वरी! जब तक तू आखिरी बच्चे को खिलाएगी, तब तक पहले को फिर भूख लग चुकी होगी। इतने बच्चे हैं तेरे!"

"नजर मत लगाया करो जी, मेरे बच्चों को।" परमेश्वरी चिढ़कर कहती, "पैदा किए हैं तो उन्हें खिला भी लूँगी, तुम चिंता मत करो।"

कोई स्वस्थ आदमी भी इतने बच्चों को पालता, पढ़ाता, उनकी नौकरियाँ लगवाता, उनके ब्याह करता हुआ थक जाता। उन्होंने तो एक लंबा जीवन अपने इस रोगी शरीर के साथ काटा था। पर कट ही गया था। वे अपनी नौकरी में लग रहे थे और घर में सारे काम होते गए थे।

पिछले वर्ष रिटायर होकर उन्होंने एक बार आँखें खोलकर अपने परिवार की ओर स्टॉक-चेकिंग की दृष्टि से देखा था। जरा एक बार हिसाब-किताब तो कर लें, क्या-क्या हो गया और क्या-क्या करना है। कितनी क्षमता है और कितना समय है। उन्हें अपनी पढ़ाई के दिन याद

थे। परीक्षा में समय पूरा होने से आधा घंटा पूर्व जब वार्निंग-बेल बजती थी, तो वे इसी प्रकार अपना प्रश्न-पत्र और उत्तर-पुस्तिका जाँचते थे। उलट-पलटकर देखते, कितने प्रश्न करने हैं, कितने प्रश्न किए हैं। शेष कितने हैं और समय बचा है, आधा घंटा। बस वे इसी गति से काम करने में जुट जाते कि आधा घंटे में शेष कार्य पूरा हो जाए; क्योंकि जितना काम आधा घंटे में समाप्त नहीं होगा, वह छूट गया ही माना जाएगा। और काम का छूट जाना, अधूरा रहना—उन्हें पसंद नहीं था। अपनी जिम्मेदारी पूरी कर देनी चाहिए, बाद में कोई उसका मूल्य चाहे कितना ही आँके।

कुछ ऐसी ही दृष्टि से रिटायर होने पर उन्होंने अपने परिवार को देखा था।

नौकरी समाप्त हो गई थी। अब उन्हें न तो किसी नौकरी में एक्सटेंशन मिल सकती थी और न कोई नई नौकरी ही वे कर सकते थे। नई नौकरी करने की हिम्मत उनमें अब नहीं थी। इसी नौकरी में उनका शरीर घिसट गया, इसी को बहुत मानना चाहिए। बच्चे सब अपनी-अपनी जगह पहुँच गए थे। बचे थे दो। छोटे दोनों के प्रति उनकी जिम्मेदारी!

इन दोनों ने भी शेष बच्चों के समान उनकी बात मानी होती तो उनकी नौकरी में ही ये जिम्मेदारियाँ भी पूरी हो जातीं। पर ये छोटे दोनों अपने-अपने ढंग से उनकी बात मानने से इनकार करते रहे थे। बिट्टो ने एम.एस-सी. करके नौकरी कर ली थी और शादी को टालती आई थी। राजा बार-बार फेल हो रहा था और किसी भी प्रकार बी.ए. पार नहीं कर पा रहा था।

यदि वे बिट्टो का विवाह कर देते और राजा को किसी भी छोटी-मोटी नौकरी पर लगा सकते, तो बात बन जाती। स्वयं अपने और पत्नी के लिए तो उनकी पेंशन भी पर्याप्त थी। वे अपना गुजारा कर सकते थे। हाँ, दिल्ली को छोड़ गाँव चले जाते, अपने घर पर। मकान का किराया भी बच जाता और दिल्ली की महँगाई से भी बच जाते।

पर ये दोनों काम···! परीक्षा के दिनों की आधा घंटा शेष वाली चेतावनी की घंटी जैसा कुछ बज रहा था। ये दोनों काम यदि जल्दी-जल्दी हो जाएँ। वर्ष भर के भीतर बिट्टो का विवाह हो जाए और राजा इसी वर्ष बी.ए. करके कोई नौकरी कर ले। बिट्टो के विवाह और वर्ष भर के खर्च का बोझ उनका प्रॉविडेंट फंड का पैसा सँभाल सकता था। वर्ष भर तो वे अपने इस सरकारी क्वार्टर में भी किसी-न-किसी प्रकार काट ही जाएँगे...

परीक्षा भवन में अंतिम आधा घंटे में वे जिस प्रकार समय के साथ होड़ करते थे, पिछले महीनों में कुछ ऐसा ही समय उन्होंने बिताया था। उस आधा घंटे के संघर्ष और भाग-दौड़ के बाद की मुक्ति का सुख! काम पूरा करने का संतोष! अपनी इस परीक्षा से मुक्ति की बात भी कल सवेरे ही सोची थी उन्होंने!

बिट्टो की सगाई पिछले सप्ताह कर दी थी उन्होंने। तीन महीनों के भीतर-भीतर शादी! फिर रह जाता था केवल अकेला राजा! उसका वे क्या करें... ? उसका कोई हल नहीं सूझ रहा था उन्हें। इस बात की गारंटी कौन देगा कि राजा इस बार परीक्षा में पास हो ही जाएगा। वह बी.ए. हो ही जाएगा और इस परीक्षा में इतने अंक ले ही आएगा कि कोई ढंग की नौकरी कर, कम-से-कम अपना ही बोझ उठा सके।

उनकी स्थिति कुछ वैसी ही थी, जैसी सारा परचा करने के पश्चात् पाँच अंकों के किसी प्रश्न का उत्तर न आने पर होती थी। इन पाँच अंकों का क्या करें? राजा का क्या करें? यदि वह इसी वर्ष के भीतर बी.ए. करके नौकरी पर न लगा तो वे उसका क्या करेंगे और अपना क्या करेंगे? सरकारी क्वार्टर उन्हें छोड़ना पड़ेगा। प्रॉविडेंट फंड का पैसा बिट्टो की शादी में चुक जाएगा। फिर वे अपनी पेंशन में तीन व्यक्तियों की गृहस्थी दिल्ली में चला पाएँगे क्या?

पाँच अंकों के बचे हुए इस प्रश्न ने उन्हें बहुत तंग किया था और इसके विषय में सोच-सोचकर कितनी ही बार उनकी तबीयत खराब हो गई थी—दर्द की छुरी बाईं पसलियों से ऊपर की ओर चल पड़ती थी और वे चारपाई पर पड़े-पड़े छटपटाते रहते थे।

उनकी स्थिति कुछ वैसी ही थी, जैसी सारा परचा करने के पश्चात् पाँच अंकों के किसी प्रश्न का उत्तर न आने पर होती थी। इन पाँच अंकों का क्या करें? राजा का क्या करें? यदि वह इसी वर्ष के भीतर बी.ए. करके नौकरी पर न लगा तो वे उसका क्या करेंगे और अपना क्या करेंगे? सरकारी क्वार्टर उन्हें छोड़ना पड़ेगा।

और कल सवेरे ही उन्होंने अपनी मुक्ति की बात सोची थी। उन्हें सहसा ही लगा था कि परीक्षा के तीन घंटे के अंतिम पाँच मिनटों में जैसे उन्होंने घबराकर प्रश्न-पत्र उलटा-पुलटा हो और उन्होंने पढ़ा हो कि उन्हें छह में से पाँच प्रश्न ही करने थे। एक प्रश्न वे छोड़ सकते थे—कोई सा भी। एक प्रश्न छोड़ देने पर भी उनका परचा अधूरा नहीं माना जाएगा। वे राजा की पढ़ाई भी छोड़े जा सकने वाले प्रश्न के समान ही मानेंगे। यदि वह नहीं पढ़ा तो उसका अपना दोष था। उन्होंने अपनी ओर से कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी थी। वे उसे अपनी जिम्मेदारी नहीं समझेंगे। आज से उस प्रश्न को छोड़ देने का निर्णय कर लेंगे। वे तीन महीनों के भीतर-भीतर बिट्टो का विवाह कर देंगे। और फिर वर्ष समाप्त होने पर सरकारी क्वार्टर छोड़कर गाँव चले जाएँगे। राजा नौकरी करने लगे, दिल्ली रह जाए या कहीं और चला जाए तो ठीक है। कुछ न कर सके, उनके साथ आना चाहे तो शायद जब तक वे जीवित हैं—खाना तो उसे दे ही देंगे।

और जैसे उनका परचा पूरा हो गया था। तनाव से भरे हुए तीन घंटों के बाद की सुख-शांति उनके भीतर आ समाई थी। वे बड़े हल्के से हो गए थे। अपने रोगी शरीर को अधिक कष्ट देने का क्या लाभ? उन्होंने सबकुछ ढीला छोड़ दिया था—दिन भर के कड़े परिश्रम के पश्चात् आराम की शाम के समान। अब वे तृप्त से थे।

बिट्टो की सगाई बहुत धूमधाम से नहीं की थी उन्होंने। धूमधाम की कौन सी बात थी, कौन सा घर में पहला विवाह था। फिर वे रिटायर हो चुके थे। अधिक धूम-धड़ाका करने के फेर में पड़ते तो प्रॉविडेंट फंड का

पैसा वर्ष भर से पूर्व ही दम तोड़ देता।

फिर भी घर के सारे लोग—सारे बच्चे आए थे, एक इंदु को छोड़कर। इंदु ने बधाई का पत्र लिख दिया था और लिखा था कि जगदीश—उसके पति—बीमार हैं। अत: वह नहीं आ सकेगी। उसने काफी विस्तार से लिखा था कि बिट्टो की सगाई में आने का उसका कितना मन था। वह आती तो सब लोगों से मिल लेती। वैसे तो दिल्ली से चंडीगढ़ कोई बहुत दूर नहीं था, पर फिर भी घर-गृहस्थी में से निकलना जरा मुश्किल हो जाता है। सगाई के बहाने ही आ जाती। पर पति को छोड़कर कैसे आती?

घनश्यामदास ने भी लिख दिया कि वह जगदीशजी का हाल विस्तार से लिखे, उनके ठीक होने की सूचना शीघ्र दे और बिट्टो के विवाह पर आने की तैयारी अभी से पूरी कर डाले। विवाह के समय वे कोई बहाना नहीं सुनेंगे।

सगाई हो गई थी और सब लोग अपने-अपने घर लौट गए थे। घनश्यामदास बड़े हल्के और प्रसन्न मन से चारपाई पर लेटे-लेटे छत को देख-देखकर मुसकराते रहते। उन्होंने मान लिया था कि वे सरकारी नौकरी से रिटायर हो चुके हैं और गृहस्थी के चक्कर से भी बस अब रिटायर होने ही वाले हैं। दो-तीन महीनों की ही बात थी। ये दो-तीन महीने भी बस ऐसे ही थे, जैसे वेटिंग-रूम में बैठा हुआ एक यात्री, जिसकी बर्थ गाड़ी में रिजर्व हो चुकी हो। सामान सारा ब्रैक-वैन में बुक हो गया हो और वह बैठा घड़ी देख रहा हो कि गाड़ी प्लेटफार्म पर आए तो वह हौले से अपनी बर्थ पर जा बैठे। सारा कुछ हो चुका है, बस समय की बात है—वे बहुधा स्वयं को सूचना देते रहते।

पहले दिन में एक-आध बार वे राजा को डाँट-डपट भी कर दिया करते थे, कभी पढ़ाई को लेकर और कभी उसके व्यवहार को लेकर। पर अब उन्होंने उसे कुछ भी कहना छोड़ दिया था। वह उनके सामने पड़ जाता तो उनके भीतर एक चुहल सी मचलने लगती—'आप्शनल क्वेश्चन है साला!' वे स्वयं को सूचित करते और मुसकराने लगते—'इससे क्या सिर मारना!'

उन्हें स्वयं अपने ऊपर आश्चर्य होने लगता, आखिर कैसे उन्होंने स्वयं को उससे इतना तोड़ लिया है कि उसके कॅरियर की बात, उसके भविष्य की बात, उसकी पढ़ाई और नौकरी की बात—उसकी कोई भी बात उन्हें विचलित नहीं कर पाती थी। यह सचमुच ही एक रिटायर्ड आदमी का दृष्टिकोण था।

□

और ऐसे ही कल शाम जब वे चारपाई पर लेटे-लेटे, रिटायर्ड जीवन का रस लेते हुए हल्के-हल्के ऊँघ से गए थे कि उन्हें जगदीश, इंदु के पति की मृत्यु का तार मिला था!

तार पढ़कर वे चुपचाप बैठे रहे, वैसे के वैसे ही, जैसे कुछ हुआ ही न हो। कुछ क्षणों के पश्चात् उन्होंने अपनी धोती के सिरे से चश्मा साफ किया और तार को फिर से पढ़ा। तार पढ़कर उन्होंने परमेश्वरी को पुकारा। और अपनी पुकार को सुनकर ही उन्हें पता चला कि वे रो रहे हैं, उनकी आँखों से आँसू गिर-गिरकर उनके भौंचक से खुले मुँह को नमकीन कर रहे हैं और उनकी आवाज भर्रा ही नहीं गई, फट गई है।

परमेश्वरी भागी-भागी आई और उसके साथ-साथ ही बिट्टो भी आ गई। राजा को भी किसी प्रकार—शायद उनकी आवाज सुनकर—पता लग गया कि कुछ हो गया है। उन तीनों ने उन्हें घेर लिया था और वे तार हाथ में पकड़े रोते जा रहे थे।

बिट्टो ने उनके बढ़े हुए हाथ से तार पकड़ लिया, पढ़ा और बहुत धीरे से बोली, "माँ! जगदीश जीजाजी नहीं रहे···"

परमेश्वरी ने धाड़ मारी और घनश्यामदास को पता नहीं क्या हुआ। वे चीखकर बोले, "जाओ, यहाँ से चले जाओ! मेरा सिर मत खाओ!"

घर में कुछ देर तक चीखें उठती रहीं, कभी किसी की, कभी किसी की और अंत में सबकुछ मौन हो गया! तीन जने घर के विभिन्न कोनों में बैठकर रोते रहे। राजा छत पर खड़ा-खड़ा चुपचाप सिगरेट पीता रहा और आकाश को घूरता रहा।

□

दु:ख की पहली बाढ़ से उभरकर, आँसू पोंछ घनश्यामदास गंभीर हो गए थे। उनकी छाती में बाईं ओर हल्का-हल्का दर्द हो रहा था, पर कोई ऐसा तेज नहीं था कि वे उसके बारे में सोचते।

वे सोच रहे थे इंदु के बारे में। इंदु अगले जून में आयु के पैंतीस वर्ष पूरे करेगी। अभी उम्र क्या है उसकी! और छोटे-छोटे तीन बच्चे हैं। छोटा लड़का तो अभी कुल डेढ़ साल का है। ससुराल कहने को इंदु की एक छोटी ननद मात्र है, जिसका विवाह तीन वर्ष पहले स्वयं इंदु ने अपने हाथों किया है। सास-ससुर, देवर-जेठ कोई नहीं। वह अब किसके द्वार पर जाएगी? कहाँ जाकर बैठेगी?

और शायद जगदीश ने बीमा भी नहीं करवाया था—नहीं, करवाया था, करवाया था शायद! कुछ ठीक पता नहीं उन्हें। प्रॉविडेंट फंड भी कितना होगा। जमा-पूँजी? यदि कुछ भी तो कितने दिन चलेगा?

इस वय में विधवा होने का, पति के बिछुड़ने का दु:ख, जो इंदु को होगा, वह तो होगा ही; पर उसका यह आर्थिक पक्ष? अभी तो ढेर सारी जिंदगी पड़ी है—लंबी और संघर्ष से भरी। और तीन-तीन बच्चे। उन्हें पढ़ाना-लिखाना होगा, पालना-पोसना। लड़की का विवाह करना होगा! कैसे करेगी बेचारी इंदु! उसका अब कौन है?

और सहसा उन्हें लगा, वे यों ही व्यर्थ चिंता कर रहे हैं। इंदु की ससुराल में कोई न सही, मायके में तो हैं। उसके भाई हैं, भाभियाँ हैं, बहनें हैं...और तुरंत ही उन्हें लगा, वे अब गलत सोच रहे हैं। भाई-भाभियाँ ही किसी की जिम्मेदारी उठा सकते तो उन्हें अपनी बिट्टो के विवाह और राजा की पढ़ाई के लिए इस बुढ़ापे में अपने रोगी शरीर को कष्ट देने की क्या आवश्यकता थी? जिन भाइयों पर छोटे बहन-भाइयों की, कुछ वर्षों के लिए जिम्मेदारी नहीं छोड़ी जा सकती, उनसे यह आशा कहाँ की जा सकती है कि वे अपनी विधवा बहन और तीन-तीन बच्चों की जिम्मेदारी आजीवन उठाएँगे। नहीं···यह संभव नहीं है।

तो फिर कौन?

उनके सिवाय और कौन? और कोई नहीं। उन्हें ही करना होगा।

इंदु उनकी बेटी है। ऐसे समय में वे उसे सहारा नहीं देंगे तो और कौन देगा। वे रिटायर अवश्य हो गए हैं, पर अभी जीवित हैं। फिर वे यह क्यों सोचते हैं कि और कौन?

कल सवेरे जल्दी-से-जल्दी, जो भी बस मिले, उससे चंडीगढ़ चले जाएँगे। जगदीश का संस्कार कर, वे इंदु और उसके बच्चों को अपने साथ दिल्ली ले आएँगे···

दिल्ली—उन्होंने सोचा—सरकारी क्वार्टर उन्हें छोड़ देना है। वे रिटायर हो चुके हैं। पेंशन उनकी बहुत अधिक नहीं है। प्रॉविडेंट फंड का पैसा बिट्टो के विवाह के लिए है, उसका विवाह भी आवश्यक है। जब इंदु का विवाह किया है तो बिट्टो का भी करना होगा। वे उससे मुँह नहीं मोड़ सकते। प्रॉविडेंट फंड का पैसा, इंदु के लिए नहीं बचाया जा सकता। बचा भी लिया जाए तो वह कितने दिन चलेगा?

उनकी मानसिक अवस्था कुछ वैसी थी, जैसी किसी परीक्षा के लिए आवेदन-पत्र भरते हुए होती थी। वे दस बार सोचते थे—उनकी तैयारी पूरी हो चुकी है न? वे परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे क्या? पर कभी-कभी ऐसा सोचने का अवसर नहीं भी हो सकता। पूरी तरह से तैयारी न होने पर भी परीक्षा में बैठना पड़ सकता है। तब विद्यार्थी यह मान लेता है कि वह परीक्षा के लिए तैयार ही है···

इसका अर्थ यह हुआ कि—वे सोच रहे थे—परमेश्वरी, इंदु और उसके तीन बच्चों के साथ उन्हें नई गृहस्थी शुरू करनी पड़ेगी। राजा भी निश्चित ही साथ रहेगा। एक बार पहले भी उन्होंने अपनी गृहस्थी आरंभ की थी। पर तब उनके साथ केवल परमेश्वरी थी। तब वे जवान भी थे। उनके सामने लंबा, आशामय जीवन पड़ा था। पर अब उन्हें आयु की इस सीमा में पहुँचकर, फिर से शुरुआत करनी होगी। एक नई शुरुआत! क्या करेंगे वे? इस बूढ़े-रोगी शरीर से वे क्या करेंगे? कैसे कमाएँगे? घर का खर्च कैसे चलाएँगे?

गाँव जाना बेकार होगा। गाँव में कोई ऐसा धंधा नहीं है, जिसे वे कर सकें। नौकरी वहाँ नहीं मिलेगी। जमीन उनके पास नहीं है। जमीन मिल भी जाए तो वे खेती कर पाएँगे क्या?

तो फिर?

तो दिल्ली में ही रहना होगा। पर दिल्ली में रहकर क्या होगा? क्या वे कोकाकोला बेचेंगे, पान-सिगरेट की दुकान करेंगे या···

उन्हें लगा, तीन घंटे का परचा समाप्त कर, वे परीक्षा भवन से निकल ही रहे थे कि उनके हाथ में एक नया प्रश्न-पत्र पकड़ाकर परीक्षा भवन में वापस भेज दिया गया है। उनकी टाँगें सो गई हैं, झुके-झुके रीढ़ की हड्डी चटखने सी लगी है और अंगुलियाँ लिखते-लिखते जड़ हो गई हैं···वे नया परचा, पूरे तीन घंटे का परचा फिर से कैसे आरंभ कर सकते हैं?

पर और हो ही क्या सकता है?

सहसा उनका ध्यान भटक गया। वे अपने ही विषय में क्यों सोच रहे हैं? आखिर इंदु की बात वे क्यों नहीं सोचते? इस मृत्यु से सबसे अधिक प्रभावित वही होने जा रही थी। सबसे अधिक उसे ही सहना था।

एक विशिष्ट ढर्रे में अपनी जिंदगी के पैंतीस वर्ष बिताकर इंदु को भी, फिर से एक नई शुरुआत करनी पड़ेगी। अब उसका पति नहीं होगा। वह अधिकारपूर्वक किसी से अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने को नहीं कह सकेगी। उसके बच्चे किसी चीज के लिए मचलकर जिद नहीं कर सकेंगे। वे अपने नाना के घर पर होंगे, नाना की दया पर—उस नाना की दया पर, जो स्वयं न जाने कब चल दें। जाने किस बात पर, दर्द की छुरी उसकी बाईं पसलियों पर से ऊपर चले और सबकुछ काटकर रख दे···

सहसा घनश्यामदास को लगा, उनका रक्त ठंडा पड़ता जा रहा है। वे काफी डर गए हैं। दर्द की छुरी ने उन्हें बुरी तरह डरा रखा है···और, और शायद उनमें यह साहस नहीं आ रहा कि छाती ठोंककर कहें, 'इंदु बेटी! जब तक मैं हूँ, तब तक तू क्यों घबराती है!'

कैसे कहेंगे वे? जिस व्यक्ति ने सारी उम्र कुरसी पर बैठकर सरकारी नौकरी की हो—वह अब बुढ़ापे में कोकाकोला की बोतलें बेचेगा! सिगरेट की डिब्बियाँ बेचेगा! और यह कौन सी आयु है, उनकी दुकान पर बैठने की। आधा घंटा कहीं बैठ जाएँ तो कमर दु:खने लगती है, दिल धड़कने लगता है और साँस फूलने लगती है···क्या ऐसा नहीं हो सकता—उन्होंने सोचा कि इंदु ही नई शुरुआत करे। वह उनसे आयु में बहुत कम है। जवान है। जीवन में एडजस्ट कर सकती है। उसे तो भोगना पड़ेगा ही, वही क्यों न नई शुरुआत करे?

पर कैसे?

उनकी आँखों के सामने कई धुँधले-धुँधले चित्र उभरे। पर स्वयं ही एक-एक कर उन्होंने सब हटा दिए। नहीं! वे अपनी बेटी को ऐसे किसी काम के लिए नहीं कह सकते। क्या इंदु का फिर से विवाह नहीं हो सकता? विवाह··· ? विवाह तो बिट्टो का करना है। इंदु का विवाह कहाँ से होगा? बिट्टो अभी छोटी है, इंदु से अधिक पढ़ी-लिखी है, देखने में सुंदर है, अच्छी नौकरी करती है—उसके विवाह में इतनी परेशानियाँ थीं तो इंदु और उसके तीन बच्चे!

नहीं—उन्होंने सिर झटका—कुछ नहीं। मुझे ही नए सिरे से शुरुआत करनी होगी। बाप होकर, उन्हें यह सब सोचना शोभा नहीं देता।

"परमेश्वरी!" उन्होंने फिर ऊँची आवाज में पुकारा, "तैयार हो?"

वे हिम्मत करके उठ खड़े हुए।

हाथ में बड़ी दृढता से छड़ी पकड़े, चेहरे की रेखाओं को सख्त बनाए, वे बड़ी कठोर मुद्रा में खड़े थे। हाँ, वे फिर से नई शुरुआत का दम रखते हैं। आयु का क्या है। बात तो जीवट की है और जीवट की उनमें कमी नहीं है।

सहसा उनके चेहरे की सख्त रेखाओं के नीचे-नीचे किसी शरारती हठीले बालक के समान एक परिहास सा तैर गया—'दूसरों को तो भरमा लोगे, शायद इंदु को भी, पर स्वयं को धोखा कैसे दोगे, घनश्यामदास?'

छड़ी पर उसके हाथों की पकड़ कुछ ढीली हो गई। छड़ी कुछ-कुछ काँपने लगी थी।

'कितना अच्छा होता, यदि इंदु बेटी ही कुछ हिम्मत करे।' उन्होंने सोचा, पर वे उससे कैसे कहें?

उन्हें जोर की खाँसी आ गई। वे खाँस-खाँसकर दुहरे हो रहे थे और दर्द की छुरी उनकी बाईं ओर की पसलियों को खटखटाने लगी थी।

□

थैंक्यू नंदू, थैंक्यू आंटी···!

● **प्रकाश मनु**

आइए, पहले इस कहानी के नायक से मिलते हैं। हमारी इस कहानी का नायक है—नंदू। एक बड़ा ही नटखट, चपल-चंचल, गोल-मुटल्ला नंदू। थोड़ा भोला, थोड़ा-थोड़ा शरारती भी।

और हाँ, मम्मी का लाडला तो है ही वह! उसे देखकर वे रीझ-रीझ उठती हैं। कभी-कभी हँसते हुए गाल पर एक मीठी चपत लगाकर कहती हैं, "ओहो जी, ओहो! यह रहा मेरा प्यारा गोलू-मोलू खरगोश!"

वैसे इतवार को सुबह-सुबह क्रिकेट खेलने के बाद वह खेल के मैदान से तेजी से भागता हुआ घर आ रहा हो, तो आप धोखा खा जाएँ। लगेगा, यह नंदू नहीं, आकाश से उतरा बालसूर्य है। चमकती आँखों और सुर्ख टमाटर जैसे लाल-लाल गालों वाला!

बच्चे तो बहुत होते हैं और सभी प्यारे-प्यारे होते हैं, पर नंदू तो भई, नंदू ही है। इसलिए कि वह हमारी कहानी का नटखट, चपल-चंचल, गोल-मुटल्ला नंदू है, जिसकी आँखों में हर वक्त उत्साह की चमक दिखाई देती है। तभी तो उसके गाल हर वक्त ललछौंहे से लगते हैं।

मगर भई, कहानी का नायक वह नन्ही सी जान, यानी वह जरा सा शरीर और ऊधमी चिड़िया का बच्चा भी तो हो सकता है, जो अपने नन्हे-नन्हे रोएँदार भाई-बहनों से झगड़ते हुए एकाएक घोंसले से निकलकर बाहर आ गिरा था और···और उसने एक नन्ही सी कहानी को जन्म दिया था!

फर्श पर इधर-उधर बिखरे तिनकों के साथ, एक बेहद मासूम, रोएँदार नन्ही शख्सियत महसूस की जा सकती थी। और वह नन्ही कहानी भी, जो मैं सुनाने जा रहा हूँ!

खैर, आप नहीं मानते, तो उस नन्ही सी जान यानी चिड़िया के उस नन्हे शरीर बच्चे को ही कहानी का नायक मान लेते हैं! पर अब मेहरबानी करके थोड़ा पीछे चलें। अतीत के उस छोर पर, जब चिड़िया का बच्चा अभी अस्तित्व में नहीं आया था। चिड़िया ने घोंसला बनाया है नंदू के छोटे से घर में···और नंदू खुश है। इतना खुश, इतना खुश, मानो उसके पंख उग आए हों और वह जब चाहे आसमान की सैर कर सकता है।

बेशक जब से उस चिड़िया और चिड़े ने उसके घर के आँगन में, एकदम सामने वाली दीवार की खोखल में अपना नन्हा सा घोंसला बनाया है, तभी से—बस तभी से उसकी यह हालत है। जब देखो, वह उड़ा-उड़ा सा दिखाई देता है! उड़ा-उड़ा। उड़ती पतंग सा। जैसे पूरा का पूरा आकाश उसका हो!

जी हाँ, पूरा का पूरा आकाश। भला नंदू जैसे बच्चे को इससे कम कोई चीज कैसे तसल्ली दे सकती है?

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह एवं शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित। 'हिंदी बाल साहित्य का इतिहास' विशेष उल्लेखनीय कृति। साहित्य अकादेमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती पुरस्कार' तथा हिंदी अकादेमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

और यकीन मानिए, बस अभी चंद दिनों में ही उसने यह बिना पंखों के उड़ना सीखा है। साथ ही ऐसी-ऐसी बातें कि आप हैरान रह जाएँ।

□

नंदू की मम्मी यानी मिसेज आनंद हैरान हैं, आँगन की दीवार में एक ईंट की जगह न जाने कैसे खाली रह गई थी। बस चिड़िया को घोंसला बनाने के लिए वह जँच गई। और अब तो दिन में पचासों चक्कर उसके लगते हैं। कभी तिनके ला रही है, कभी घास, कभी सुतली, कभी फूस, कभी कुछ और।

नंदू को मानो दिन भर का काम मिल गया। दिन में बीसियों दफा मेज पर चढ़कर, उचक-उचककर देखता है चिड़िया के घोंसले में कितनी 'प्रोगेस' हुई? क्या-क्या नई चीजें आ रही हैं। और उन्हें कहाँ-कहाँ जँचाया जा रहा है!

ओहो, ये तिनका···

ओहो, ये पत्ती···थोड़ी घास नरम-नरम सी···

ओहो, ये फूल···वह एक पतला सा धागा भी, शायद चारपाई की मूँज का···

बाप रे, कितनी सारी चीजें!

और यह सब देखकर वह दौड़ा-दौड़ा मम्मी के पास जाता है तथा सारा हाल और घोंसले के बारे में 'ताजा समाचार' मम्मी को बताता है। फिर खोद-खोदकर मम्मी से सवाल पूछता है कि मम्मी, चिड़िया यह क्यों करती है? वह क्यों करती है? और चिड़िया के घोंसले में अंडे कब

आएँगे? कब आएँगे चिड़िया के बच्चे?

मिसेज आनंद फुरसत में होती हैं, तो थोड़ा-बहुत बता देती हैं। मगर कभी काम में लगी हों, तो गाल पर हलकी सी चपत लगाकर कहती हैं, "जा भाग, तुझे और कोई काम नहीं है? दुष्ट कहीं का!"

मगर क्या करे नंदू? उसका ध्यान तो चिड़िया के घोंसले से हटता ही नहीं। और उसे लगता है कि उसे तो इतना बड़ा खजाना मिल गया है, इतना बड़ा कि कुछ न पूछो।

तभी तो हर वक्त उसके दिमाग में धड़-धड़-धड़ करती विचारों की एक रेल सी चलती है। कभी आगे, कभी पीछे। कभी पीछे, कभी आगे। मगर रुकना तो यह जानती ही नहीं।

स्कूल में ड्राइंग के पीरियड में उसने चित्र बनाना सीखा था। खूब सारे बढ़िया-बढ़िया चित्र बनाता, जिनमें उसे कभी 'गुड', कभी 'वेरी गुड', कभी 'फेयर' मिलता। फिर मिट्टी से गमला, मिट्टी से कप-प्लेट और गुलदस्ता बनाने की कला में तो वह उस्ताद था। गत्ते की छोटी सी साफ-सुथरी झोंपड़ी बनाना भी उसे आ गया था। उसके आगे वह जरूर फूलों की एक सुंदर सी क्यारी भी बनाता—खूब रंग-बिरंगी। उसके ड्राइंग के सर कृष्ण मुंदाजी हमेशा तारीफ करते हैं इस बात की।

मगर चिड़िया···? भला किसने सिखाया होगा चिड़िया को इतना सुंदर-सुंदर, बढ़िया सा घोंसला बनाना? अपनी छोटी सी चोंच से तिनके कैसे एक के ऊपर एक जमाकर रखती है। और लो जी, बन गया घोंसला इतना खूबसूरत और प्यारा कि क्या कहने! मगर कैसे? किसने सिखाई चिड़िया को यह नायाब कला? क्या वह भी ड्राइंग के सर कृष्ण मुंदाजी के घर ड्राइंग सीखने के लिए जाती है? तब तो उसे रोज 'गुड', 'वेरी गुड' देते होंगे मुंदा सर।

लेकिन फीस···? बेचारी चिड़िया के पास भला फीस के पैसे कहाँ से आते होंगे?

वह बहुत सोचता है, बहुत। पर ठीक-ठीक उत्तर नहीं मिलता अपने सवालों का।

स्कूल में अपने दोस्तों को भी यह सब बताता है तो वे हैरानी से ताकते रह जाते हैं। कभी-कभी कोई बोल भी पड़ता है, "यार नंदू, तेरे दिमाग में ऐसी-ऐसी चीजें कहाँ से आती हैं? अपने भेजे में तो कभी आती ही नहीं···!"

और सत्ते ने तो बोल ही दिया था कि "नंदू, लगता है, एक दिन तेरे घर में आकर देखना ही होगा चिड़िया का वह घोंसला, जिसने तेरे ऊपर बिल्कुल जादू ही कर दिया है!"

इस पर सारे बच्चे खूब 'ठी···हा-हा-हा' करके हँसे थे।

नंदू एक पल के लिए तो नर्वस हुआ, फिर तुर्की-ब-तुर्की बोला, "ठीक है बच्चू, आना। कभी आना संडे के दिन। हमारे घर वाला चिड़िया का घोंसला देखोगे तो देखते ही रह जाओगे। फिर तुम्हारे दिमाग में भी जरूर मेरी तरह के ही आइडिया आया करेंगे।"

इस पर क्लास के बच्चे तो एकदम कट के रह गए। किसी को सूझा ही नहीं कि क्या जवाब दें। मगर नंदू की बातें सुन-सुनकर आस-पड़ोस के बच्चे तो सच्ची-मुच्ची घर तक चले आते हैं। खूब चमकती आँखों से कहते हैं, "दिखा तो नंदू, कहाँ है चिड़िया का घोंसला?"

तब नंदू एकदम राजाओं वाली शान और अकड़ से वह चिड़िया का घोंसला दिखाता है और उसके बारे में एक-एक छोटी से छोटी बात बताना नहीं भूलता।

"एक दिन ऐसा हुआ, ऐसा कि चिड़िया हमारे घर आई। साथ में अपने चिड़े को भी लाई। उसने यहाँ देखा, वहाँ देखा, इधर उड़ी, उधर उड़ी और फिर वह जो कमरे में पंखा है न, उसकी टोपी के ऊपर वाले हिस्से में घोंसला बनाने लगी। तो मैंने उसे टोका कि नईं-नईं पग्गल, अभी करेंट लग जाएगा! फिर तो जी, दरवाजे के ऊपर वाला वो रोशनदान दिखाई दे रहा है न, हाँ-हाँ, वही। वहाँ पर उसने रखने शुरू किए तिनके।

"मगर शाम तक सारा फर्श गंदा हो गया, तो मम्मी ने रोका। बड़ी मुश्किल से हटाया वहाँ से! फिर चिड़िया को भा गई यह जगह। देख रहे हो ना, दीवार के बीच छूटी यह छोटी सी जगह। बस जी, बस्स! अब तो चिड़िया और श्रीमान चिड़ा महाशय सारा दिन तिनके ला रहे हैं, धर रहे हैं, घोंसला बना रहे हैं। वह मार-तूफान इन्होंने मचाया कि क्या कहने! मगर भई, फिर घोंसला बना, बनकर रहा। और अब तो अंडे भी आएँगे, फिर चिड़िया के बच्चे···!"

नंदू की कहानी हमेशा यहीं से शुरू होती और फैलते-फैलते इतनी फैल जाती कि खुद नंदू को कुछ सुध-बुध न रहती। हाँ, चिड़िया के बच्चों की बात आते ही नंदू की आँखें चमकने लगतीं। जैसे यही कहानी का वह झरोखा हो, जहाँ से उम्मीद की रोशनी आती हो।

नंदू के दोस्त हैरान होते हैं—आजकल यह नंदू को क्या हो गया है? बात कहीं की हो, उड़ते-उड़ते कहाँ से कहाँ जा पहुँचता है! अब यही लो। बात तो हो रही थी चिड़िया के घोंसले की, मगर यह तो ऐसा लगता है, जैसे गुन-गुन, गुन-गुन करता महादेवी वर्मा की कविता सुना रहा हो!

कमाल है जी, कमाल···! नंदू जो न करे सो कम है।

□

फिर कुछ रोज बाद चिड़िया ने अंडे दिए। और अब तीन-चार दिनों से, जब से चिड़िया के बच्चों की आवाजें सुनाई देने लगी हैं, नंदू की उत्सुकता का कोई पार ही नहीं है।

वह उछलकर मेज पर चढ़ता है, बड़े गौर से चिड़िया को अपने बच्चों के मुँह में दाना डालते देखता है और कूदकर फिर नीचे। पढ़ते-पढ़ते थोड़ी देर बाद फिर उसका ध्यान उचटता है और वह झट मेज पर खड़ा होकर चिड़िया के बच्चों को देखने लगता है।

सुबह उठते ही उसका पहला काम यही होता है। मेज पर खड़ा होकर चिड़िया के बच्चों को 'चीं-चीं' करते देखता है और फिर खुश होकर अपने काम में लग जाता है। स्कूल जाने से पहले चिड़िया के बच्चों को 'टा-टा' कहना भी नहीं भूलता। शाम को स्कूल से आते ही बस्ता

फेंककर सीधा मेज पर आ खड़ा होता है और चिड़िया के घोंसले के आगे ऐसे खड़ा हो जाता है, मानो अभी-अभी दुनिया का सबसे नया, नायाब तमाशा यहाँ होने जा रहा हो।

रोज स्कूल से आकर वह मम्मी से यह पूछना भी नहीं भूलता, "मम्मी, चिड़िया आई थी अपने बच्चों के लिए दाना लेकर? कहीं भूल तो नहीं गई? वे कहीं भूखे तो नहीं होंगे। हैं मम्मी!"

सुनकर घर और दफ्तर के खयालों के बीच उलझी मिसेज आनंद खिलखिलाकर हँस देती हैं। एक हलकी चपत नंदू के गाल पर लगाकर कहती हैं, "तू क्यों चिंता करता है रे नंदू? चिड़िया खुद अपने बच्चों की चिंता कर लेगी।"

या कभी-कभी उसे टालते हुए वे कहती हैं, "यह सब बाद में! पहले तू अपना खाना तो खत्म कर।"

मगर नंदू जब तक बीसियों बातें चिड़िया के बारे में नहीं पूछ लेगा और जब तक बीसियों दफा मेज पर चढ़कर खुद अपनी आँखों से चिड़िया के बच्चों का हाल-चाल नहीं पता कर लेगा, तब तक उसे चैन नहीं।

कई बार मिसेज आनंद खीज भी जाती हैं।

कुछ बरस पहले उनके पति मि. आनंद का तबादला बंगलुरु हो गया था। लिहाजा घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारियों से लदी-फदी मिसेज आनंद जब गुस्से को जज्ब नहीं कर पातीं, तो डपटकर कहती हैं, "तू तो बड़ा उतावला है रे नंदू! देखना, किसी दिन तू चिड़िया के बच्चों को हाथ लगाएगा और फिर चिड़िया इन्हें यहीं छोड़ जाएगी। ये भूखे कलपते रहेंगे, याद रखना।"

तब से डर के मारे नंदू ने चिड़िया के बच्चों को हाथ तो नहीं लगाया, लेकिन उन्हें बार-बार देखने की खुदर-बुदर तो मन में मची ही रहती है। उसे लगता है, दुनिया का सबसे बड़ा खजाना उसके हाथ में है। हीरे और रत्नों से भी बड़ा। फिर भला वह उसे देखने से अपने आपको कैसे रोके? कैसे?

आखिर कोई तो समझाए उसे यह बात। कोई तो··· !

□

यों ही एक-एक कर दिन बीतते जाते थे। मानो पंख लगाकर परियों की दुनिया की ओर उड़े जा रहे हों। और नंदू की प्रसन्नता का कोई अंत नहीं था।

लेकिन आज तो कुछ ऐसी अजीब सी हालत हो गई कि उसकी समझ में नहीं आ रहा था—वह क्या करे, क्या नहीं। यहाँ तक कि उसे तो इतना भी समझ में नहीं आ रहा था कि इस घटना से उसे खुश होना चाहिए या दुःखी?

असल में आज नंदू की छुट्टी थी। मम्मी दफ्तर गई हुई थीं। नंदू ने सोचा, 'चलकर पीछे वाले आँगन में खेला जाए। चिड़िया के बच्चों का क्या हाल है, यह भी देखना चाहिए।'

उसने मेज पर चढ़कर देखा तो जी धक से रह गया। चिड़िया के चार बच्चों में से तीन ही थे। चौथा कहाँ गया? कहीं चील तो झपट्टा मारकर नहीं ले गई, या फिर बिल्ली··· ?

इतनी देर में ही नंदू की हालत खराब हो गई। उसने घबराकर इधर-उधर देखा और उदास होकर मेज से नीचे उतर आया।

मगर मेज से नीचे आते ही वह चौंका। आँगन के एक कोने में वही चिड़िया का बच्चा था—एकदम वही! डर के मारे एकदम सिकुड़ा हुआ सा बैठा था।

देखते ही नंदू की सारी उदासी गायब हो गई। एकबारगी तो उसे इतनी खुशी हुई कि वह मारे खुशी के चीख पड़ने को हुआ। फिर अचानक उसका ध्यान इस बात की ओर गया कि चिड़िया का बच्चा डरा हुआ है। इतनी देर से भूखा-प्यास भी होगा। कहीं इसे पानी की जरूरत तो नहीं है?

वह एक कटोरी में पानी भर लाया और उसे चिड़िया के बच्चे के पास ला रखा। मगर वह छुटका सा चिड़िया का बच्चा पानी पिए कैसे?

नंदू उलझन में है। मगर ठीक समय पर उसे गुपलू की याद आई। नंदू को यकीन था, गुपलू से ज्यादा इस दुनिया में चिड़िया और चिड़िया के बच्चे के बारे में कोई और नहीं जानता। इसीलिए क्लास के ज्यादातर बच्चे चाहे उसके शेखीखोर होने से चिढ़ते थे, पर नंदू उसे बरदाश्त करता था। यहाँ तक कि प्यार भी करता था।

गुपलू कह रहा था, "अगर रुई भिगोकर चिड़िया के मुँह में पानी डालो, तो वह पी लेगा।" नंदू को याद आया तो उसकी निराशा थोड़ी कम हुई। वह झट रुई लेने के लिए अंदर गया।

अभी वह रुई लेकर बाहर आया ही था कि आँगन में अमरूद के पेड़ पर से चीं-चीं-चीं की इतनी आवाजें आईं कि वह चौंक गया।

"अरे, यह कौआ···मुटल्ला, काला! उफ!" उसके माथे पर मारे भय के पसीना छलछला आया।

इसमें शक नहीं कि वह दुष्ट खलनायक कौआ नीचे आकर चिड़िया के बच्चे को हड़पना चाहता था। अमरूद के पेड़ पर बैठीं चिड़ियाँ इसीलिए चेतावनी भरे स्वर में जोर से चीं-चीं-चीं कर रही थीं।

"हे राम! चिड़िया को तूने इतना भोला, इतना मासूम क्यों बनाया? क्यों मेरे राम? क्यों?"

नंदू चिंता में। नंदू पसीने-पसीने। नंदू इस समय—जरा गौर कीजिए—दुनिया का सबसे बड़ा दार्शनिक है।

□

नंदू परेशान हो गया। वह क्या करे, क्या नहीं! उसने रुई से दो बूँद पानी चिड़िया के बच्चे के मुँह में डाला था। मगर घबराहट के मारे वह भी उसने पिया नहीं। इधर यह दुष्ट कौआ न जाने कहाँ से चला आया!

नंदू की सारी खुशी काफूर हो चुकी थी। और वह डर सा गया था—कहीं चिड़िया के इस बच्चे का अनिष्ट न हो जाए।

कहीं कौआ सचमुच चिड़िया के इस नन्हे, मासूम बच्चे को खा गया तो? सोचकर उसे कँपकँपी सी हो आई। सारा शरीर पसीने-पसीने।

"जब तक मम्मी नहीं आतीं, तब तक मैं यहीं रहूँगा।" सोचकर वह दीवार से टेक लगाकर बैठ गया। और प्यार से चिड़िया के बच्चे को पुचकारने लगा।

कुछ देर बाद उसे भूख लगी, लेकिन कहीं वह पाजी कौआ फिर न आ जाए! सोचकर वह वहाँ से नहीं हिला।

समय बीत रहा था, मगर नंदू के लिए वह कहीं रुक गया था। वह अपनी जगह से नहीं हिला। नहीं हिला।

आखिर इतने नन्हे से, मासूम चिड़िया के बच्चे की जिंदगी का सवाल था न!

□

"ट्रिन्न···ट्रिन्न्-न···!"

दोपहर को कॉलबेल की आवाज सुनाई दी तो नंदू समझ गया, जरूर मम्मी आई हैं। अरे, मम्मी के आने का आज पता ही नहीं चला।

वह दिन भर के अपने भीषण कुरुक्षेत्र युद्ध के मैदान से निकलकर दरवाजा खोलने गया। मगर दरवाजा खोलते ही फिर दौड़कर आँगन की ओर भागा।

"क्या है नंदू? आज तो तुमने मुझसे बात ही नहीं की!" मम्मी ने लाड से कहा।

"मम्मी, चिड़िया का बच्चा···!" नंदू के मुँह से बस इतना ही निकला। वह रुआँसा हो चुका था।

"क्या हुआ चिड़िया के बच्चे को?" मम्मी तब तक आँगन में आ चुकी थी।

आँगन के कोने में डरे, सिकुड़े चिड़िया के बच्चे और नंदू को देखा तो मिसेज आनंद का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया।

आज ऑफिस में बॉस ने कुछ ऐसा कह दिया था कि वे अंदर ही अंदर तिलमिला गई थीं, पर चाहते हुए भी जवाब नहीं दे पाई थीं। असल में कभी-कभी नंदू की वजह से उन्हें दफ्तर से वक्त से कुछ पहले उठना पड़ता था। पर वे रोज का सारा काम रोज निबटाती थीं नियम से, कुछ भी पैंडिंग नहीं छोड़ती थीं। लिहाजा बॉस को भी कोई परेशानी न थी। पर आज पड़ोस के भेंगी आँखों वाले मिस्टर अरोड़ा ने कुछ ऐसा कह दिया···ऐसा कि बॉस के अंदर हवा भर गई। भरती गई और फिर उन्होंने कह ही दिया, "देखिए मिसेज आनंद, यह रोज-रोज की बात! ऐसे तो चलेगा नहीं।"

'तू···तू···तेरा परिवार नहीं है! तू नहीं जानता किस तरह मैं अपने बच्चे को पाल रही हूँ, जबकि मेरे हसबैंड, तू अच्छी तरह जानता है कि यहाँ नहीं···! तुझ पर भी कभी कुछ बीते तो पता चले! हे राम, कैसे-कैसे हैवान···!'

कहना तो चाहती थीं, पर कहतीं कैसे! यह नौकरी जरूरी थी उनके लिए, वरना तो···?

लेकिन रास्ते भर हवा में उँगलियाँ हिला-हिलाकर मानो वे बॉस को यही सब सुनाती आई थीं। उनका ब्लड प्रेशर बढ़ गया था और सिर चक्कर खाने लगा था। वे घर आते ही लेटना चाहती थीं। और···और अब घर पर लाडले ने यह दृश्य क्रिएट कर दिया।

बुरी तरह चिल्लाकर बोलीं, "मुझे मालूम था, तू यह शरारत करेगा··· मुझे मालूम था!"

"नहीं मम्मी, मैंने कुछ नहीं किया, मैं तो···!" नंदू कुछ कहना चाहता था, पर मम्मी को सख्त नजरों से अपनी ओर देखते देखा, तो चुप हो गया।

"मम्मी, मैं तो इसे कौए से बचा रहा था।" कुछ देर बाद नंदू ने फिर धीरे से कहा।

"मगर···यह नीचे आया कैसे, गिरा कैसे?" मिसेज आनंद ने गुस्से से बिफरकर पूछा।

"मुझे नहीं पता मम्मी। मैंने तो इसे आँगन में गिरा हुआ देखा था। फिर मैं रुई लाया, इसे पानी पिलाने के लिए। कौआ इसे खाना चाहता था, इसलिए मैं सुबह से यहीं बैठा हूँ। नाश्ता भी नहीं किया।"

सुनते ही एक क्षण में मिसेज आनंद का गुस्सा काफूर हो गया। उन्हें नंदू पर बहुत लाड आया। बोलीं, "अरे नंदू, तू तो बहुत अच्छा है रे! मैं तो यों ही तुझ पर बिगड़ रही थी। सॉरी बेटा, मम्मी को माफ कर दे। गुस्सा किसी और पर था और···"

"मम्मी···मम्मी, यह चिड़िया का बच्चा···? इसका अब क्या करेंगे?" नंदू अब भी उसी कशमकश में।

मिसेज आनंद हँसीं, "अरे, करना क्या है? मैं इसे फिर से घोंसले में रख देती हूँ।"

उन्होंने बहुत प्यार से पुचकारकर चिड़िया के बच्चे को हथेली पर लिया और आहिस्ता, बहुत आहिस्ता से घोंसले में रख दिया।

लेकिन अचरज···।

अचरज पर अचरज!

उस नन्हे से नरम रोएँदार चिड़िया के बच्चे को प्यार-दुलार से घोंसले में रखते समय उन्हें लगा, मानो 'खुल जा सिम-सिम' करते हुए बचपन के जादुई करिश्मों से भरे अजायबघर का दरवाजा खुल गया है। और भीतर इतनी ललचाने वाले दृश्य, और चीजें और खेल हैं कि अगर उन्होंने खुद को नहीं रोका, तो अभी बच्ची बनकर नंदू के साथ खेलने और बतियाने लगेंगी।

नंदू ने भी देखा और सोचा—आज मम्मी कितनी अच्छी लग रही हैं, सचमुच कितनी अच्छी, प्यारी मम्मी!

उधर चिड़िया और चिड़ा भी यह देख रहे थे। उनकी एक साथ चीं-चीं की आवाज सुनाई दी। मानो दोनों मिलकर नंदू और उसकी मम्मी को धन्यवाद दे रहे हों, "थैंक्यू नंदू, थैंक्यू आंटी···!"

"थैंक्यू···!"

"थैंक्यू···!"

□

कहानीकार का ध्यान अभी चिड़िया, चिड़े और चिड़िया के बच्चे की सम्मिलित चीं-चीं-चीं की ओर था कि अचानक उसने देखा, नंदू और उसकी मम्मी भी चिड़िया और चिड़िया के बच्चे में बदल गए हैं।

शाम के डूबते सूरज की मद्धिम रोशनी में उनके खूब बड़े, रोएँदार सुनहले पंख चमक रहे हैं—ठीक चिड़िया की तरह। और फिर चिड़िया, चिड़ा, चिड़िया के बच्चे, नंदू और नंदू की मम्मी सभी एक सुनहले आसमान की ओर उड़ने लगते हैं।

वे उड़ रहे हैं—उड़ते जा रहे हैं···यहाँ तक कि उड़ते-उड़ते नजरों से ओझल हो जाते हैं।

५४५, सेक्टर-२९,
फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१०६०२३२७
prakashmanu333@gmail.com

हम क्यों भूलते जा रहे हैं विक्रम संवत्?

● **राजशेखर व्यास**

'विक्रम संवत्' के दो हजार वर्ष का समाप्त होना भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। धूमिल अतीत में विक्रम के स्मारक स्वरूप जिस विक्रम संवत् का प्रर्वतन हुआ था, उसके पथ की वर्तमान रेखा यद्यपि अंधकार में डूबी है, परंतु इस डोर के सहारे हम अपने आपको उस शृंखला के क्रम में पाते हैं, जिसके अनेक अंश अत्यंत उज्ज्वल एवं गौरवमय रहे हैं। ये दो हजार वर्ष तो भारतीय इतिहास के उत्तरकाल के ही अंश है। विक्रम के उद्‌भव तक विशुद्ध वैदिक संस्कृति का काल, रामायण और महाभारत का युग, महावीर और गौतम बुद्ध का समय, पराक्रम सूर्य चंद्रगुप्त मौर्य एवं प्रियदर्शी अशोक का काल, अंतत: पुष्यमित्र शुंग की साहस गाथा सुदूरभूत की बातें बन चुकी थीं। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र-ग्रंथ एवं मुख्य स्मृतियों की रचना हो चुकी थी। वैयाकरण पाणिनि और पतंजलि अपनी कृतियों से पंडितों को चकित कर चुके थे और कौटिल्य की ख्याति सफल राजनीतिज्ञता के कारण फैल चुकी थी। उन पिछले दो हजार वर्षों की लंबी यात्रा में भी भारत के शौर्य ने उसकी प्रतिभा के शौर्य ने उसकी विद्वत्ता ने जो मान स्थित कर दिए हैं, वे विगत शताब्दियों के बहुत कुछ अनुरूप हैं। विक्रम संवत् के प्रथम हजारों वर्षों में हमने मात्र शिवनागों, समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त, विक्रमादित्य, स्कंदगुप्त, यशोधर्मन, स्कंदगुप्त, यशोधर्मन, विष्णुवर्धन आदि के बल और प्रताप के सम्मुख विदेशी शक्तियों को थर-थर काँपते हुए देखा, भारत के उपनिवेश बसते देखे, भारत की संस्कृति और उसके धर्म का प्रसार बाहर के देशों में देखा। कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ आदि की काव्य-प्रतिभा तथा दंडि और बाण भटट् की विलक्षण लेखन-शक्ति देखी, कुमारिल भटट् और शंकराचार्य का बुद्धि-वैभव देखा और स्वतंत्रता की अग्नि को सदैव प्रज्वलित रखने वाली राजपूत जाति के उत्थान व सगंठन को देखा। हालाँकि दूसरी सहस्राब्दी में भाग्य-चक्र की गति थोड़ी सी विपरीत हो गई, उसने उपनिवेशों का उजड़ना दिखाया और भारतीयों की हार तथा बहुमुखी पतन भी हमने देखा। परंतु उनकी आंतरिक जीवन-शक्ति का हास नहीं हुआ और हमने यह भी दिखा दिया कि गिरकर भी कैसे उठा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति के अभिमानियों के लिए यह कम गौरव की बात नहीं, आज भारतवर्ष में प्रवर्तित विक्रम संवत्सर, बुद्ध-निर्वाण काल-गणना को छोड़कर संसार के प्राय: सभी प्रचलित ऐतिहासिक संवतों से अधिक प्राचीन है।

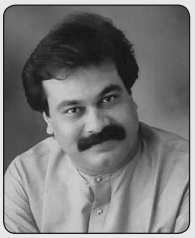

सुपरिचित लेखक, संपादक एवं निर्माता-निदेशक। केवल १२ वर्ष की वय में पितृविहीन हो चले 'यायावर'। ५९ से अधिक क्रांतिकारी ग्रंथ, ४००० से ज्यादा लेख देश-विदेश के सभी अखबारों में प्रकाशित; २०० से ज्यादा वृत्तचित्र, कार्यक्रम, रूपक, फीचर, रिपोर्ताज टी.वी. पर प्रसारित। भारतीय दूरदर्शन में सबसे अल्पायु के आई.बी.एस. अधिकारी 'अतिरिक्त महानिदेशक'।

'विक्रम', 'यह था' या 'वह', यह विवाद केवल अनुसंधान प्रिय पंडितों का समीक्षार्थ विषय है। आज संपूर्ण विश्व में जिस प्रकाशपुंज की विमल-धवल कीर्ति फैल रही है, वह कहाँ से और कैसे उद्‌भव हो गई है, वह तो इतिहासकर्ताओं की अनुसंधानशाला तक मर्यादित है। उनसे उच्चकोटि के मानसमूह तो बरसों से 'विक्रम' को अपने हृदय में सँजोए बैठे हैं। दरअसल 'विक्रम' में हम अपने विशाल देश की परतंत्र पाश-पीड़ा से मुक्ति दिलाने वाली समर्थ शक्ति की अभ्यर्थना करते हैं। इसकी पावन स्मृति की धरोहर संवत् वर्षकाल गणना की स्मरण मणि की तरह इतिहास की शृंखलाएँ भी एक-दूसरे से जुड़ी चली जाती है। विक्रम, कालिदास और उज्जयिनी हमारे स्वाभिमान, शौर्य और स्वर्णयुग के अभिमान का विषय है।

उसी उज्जयिनी में महर्षि सांदीपनी वंश में उत्पन्न पद्मभूषण, साहित्य वाचस्पति स्व. पं. सूर्यनारायण व्यास ने विक्रम संवत् के दो हजार वर्ष पूर्ण होने पर एक मासिक पत्र 'विक्रम' का प्रकाशन आरंभ किया। पं. व्यास का अपना निजी प्रेस था, जहाँ से वे अपने पंचांग का प्रकाशन करते थे। 'विक्रम' (मासिक विक्रम) का प्रकाशन एक विशेष उद्‌देश्य को लेकर किया गया था। विशेषकर उन दिनों जब हिंदी में चाँद, हंस, वीणा, माधुरी, सुधा, सरस्वती जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका हिंदी में सुस्थापित थी। पं. व्यास का उज्जैन जैसे छोटे से कस्बे से 'विक्रम' का प्रकाशन दुस्साहस ही कहा जाएगा। मगर 'विक्रम' तो मानो उनके बल, विक्रम, पुरुषार्थ का परिचायक ही बन गया था।

हजारों वर्षों से हमारे इतिहास को जो विकृत और धूमिल किया जा रहा था, उससे पं. व्यास मानो लोहा लेने खड़े हुए थे, अरसे से हमें पढ़ाया जा रहा था, हम मुगलों के, अंग्रेजों के गुलाम रहे हैं। हम शोषित, पीड़ित और गुलामों को पं. व्यास ने एक प्रबल बल, विक्रम और पुरुषार्थ-पराक्रमी नायक, चरित्र नायक संवत् प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य दिया

और बताया कि हम आरंभ से ही परास्त, पराजित, पराभूत और शोषित नहीं रहे हैं, बल्कि 'शक' और हूणों को परास्त करने वाला हमारा नायक शकारि विक्रमादित्य विजय और विक्रम का दूसरा प्रतीक है। कालिदास समारोह के जन्म से भी पुरानी घटना है यह, जब उज्जयिनी में पं. व्यास ने विक्रम द्विसहस्राब्दि समारोह समिति का गठन कर सम्राट् विक्रम की पावन स्मृति में चार महत् उद्देश्यों की स्थापना का संकल्प लिया, वे उद्देश्य थे—विक्रम के नाम पर एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना, जो साहित्य, शिक्षा, कला, संस्कृति की त्रिवेणी हो। वे विक्रम कीर्ति मंदिर नाट्यशाला स्थापना और विक्रम स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन हो।

इसमें कोई शक नहीं कि विक्रम द्विसहस्राब्दि की उनकी इस योजना में उनके सबसे अंतरंग स्नेह सहयोगी महाराजा जीवाजीराव सिंधिया का विशेष सहयोग रहा। 'विक्रम-पत्र' के माध्यम से जब यह योजना देश के सम्मुख पं. व्यास ने रखी थी, तब भी वे नहीं जानते थे कि उनकी इस योजना का इतना सम्यक् स्वागत होगा। विशेषकर वीर सावरकर और के.एम. मुंशीजी ने अपने पत्र 'सोशल वेलफेयर' में इस योजना का प्रारूप संपूर्ण विवरण के साथ विस्तार से प्रकाशित किया और सारे देश से इस पुण्य कार्य में पूर्ण सहयोग देने की प्रार्थना की।

महाराज देवास ने इस आयोजन के लिए सारा धन देना स्वीकार किया, मगर शर्त यह रखी गई कि सारे सूत्र उनके हाथों में रखे जाए। मगर विधि को कुछ और ही मंजूर था, पं. व्यास अपने व्यक्तिगत कार्यवश मुंबई गए और वहां मुंशीजी से मिलकर योजना पर विस्तार से चर्चा की, तभी महाराजा सिंधिया का उन्हें निंमत्रण मिला। महाराजा जीवाजीराव सिंधिया ने पंडित व्यास को बताया कि वे इस योजना को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हैं और इस कार्य को एक समिति बनाकर आगे बढ़ाना चाहिए, यह चर्चा कुछ ही क्षणों में हो गई। जब पं. व्यास महाराज से मिलकर कक्ष से बाहर ही निकले थे कि महाराज ने पुन: आवाज दी और विस्तार से चर्चा का पुन: आमंत्रण दिया। अगली मुलाकात दो-चार मिनट भी नहीं, लगभग ढाई घंटे की हुई और इस चर्चा ने तो सारी रूपरेखा ही बदल दी, जो कल्पना की गई थी उससे व्यापक रूप से समारोह करने की बात तय हुई और इस तरह पं. व्यास सप्ताह भर ग्वालियर रुके और रोजाना घंटों-घंटों विचार-विनिमय हुआ। महाराज से पं. व्यास का अंतरंग आत्मीय संबंध यों तो सन् १९३४ से था। मगर इस संबंध में ज्योतिष ही प्रमुख कड़ी था। यह पहला अवसर था, जब उन्होंने एक विशिष्ट विषय पर उनसे चर्चा की थी।

महाराजा का विचार 'विक्रम उत्सव' के लिए पचास लाख की धनराशि एकत्र कर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य आरंभ करना था, विश्वविद्यालय के लिए धनराशि शासन की और से दी जानी थी। इसके सिवा उज्जैन के प्रमुख धार्मिक स्थान और ऐतिहासिक स्थानों के सुधार के लिए शासन की ओर से धनराशि दी जानी थी। इसके सिवा उज्जैन के प्रमुख धार्मिक स्थान और ऐतिहासिक स्थानों के सुधार के लिए शासन के अनेक विभागों द्वारा सहयोग देने का निश्चय किया गया। तदनुसार महाकाल मंदिर, हरसिद्धि मंदिर और क्षिप्रातट पर सुधार कार्य आरंभ हो गए थे। जहाँ-जहाँ यह सुधार कार्य हुए, वहाँ पं. व्यास ने, जो स्वयं संस्कृत के सुकवि थे, यह श्लोक अंकित करवा दिया था—"द्वि सहस्रमिते वर्षे चैत्रे विक्रम संवत्सरे, महोत्सव सभा सम्यक् जीर्णोद्धारमकारयत्।"

जैसे-जैसे समारोह का कार्य प्रगति कर रहा था, देश के विभिन्न भागों में एक सांस्कृतिक वातावरण बन गया था। लगभग उसी समय पत्र-पत्रिकाओं में रवींद्र बाबू और निराला ने भी 'विक्रम' पर कविताओं का सृजन किया था—रवींद्र बाबू की दूर बहुत दूर क्षिप्रातीरे··· और निराला की 'द्विसहस्राब्दि' कविता पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है। हिंदू महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष के समर्थन और सहयोग से सारे देश में चेतना फैली थी। इसी दरम्यान मियाँ जिन्ना ने अपने एक भाषण में इस उत्सव का विरोध किया। जिन्ना के विरोध से सरकार के भी कान खड़े हो गए, चूँकि वह समय भी ऐसा था, विश्व-युद्ध के आसार सामने थे, ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हो गई। उन्हें पं. व्यास के इस आयोजन में क्रांति या विद्रोह की बू दिखी, क्योंकि एक साथ ११४ देशी महाराजा एक जगह विक्रम उत्सव के नाम पर इकट्ठा हो रहे थे, निस्संदेह इस पर्व रंग में पं. व्यास की यह परिकल्पना भी छुपी थी। शौर्य और विक्रम उत्सव के इस उत्सव के अवसर पर हमारे खोए बल, पराक्रम की चर्चा देशी राजाओं के रक्त में उबाल अवश्य ले आएगी। वैसे इस आयोजन में हिंदू-मुस्लिम भेदभाव को कोई जगह नहीं थी, किंतु जिन्ना के विरोध से वातावरण में विकार पैदा हो गया। उस समय पं. व्यास ने नवाब भोपाल को शासकीय स्तर पर समारोह मनाने के लिए लिखा। नवाब ने अपने कैबिनेट में योग्य विचार करने का आश्वासन दिया। चेतना फैल रही थी, जागृति फैल रही थी। मुंबई में बड़े पैमाने पर यह समारोह आयोजित किया गया। देश की हजारों सभा-संस्थाओं ने समारोह की तैयारी की।

लगभग उसी समय प्रख्यात फिल्म निर्माता-निर्देशक विजय भटट् ने पं. व्यास के आग्रह पर 'विक्रमादित्य' सिनेमा का निर्माण आरंभ किया, जिसके संवाद, पटकथा और गीत-लेखन का कार्य भी उन्होंने व्यासजी के परामर्श से किया। इस फिल्म में 'विक्रमादित्य' की मुख्य भूमिका भारतीय सिनेमा जगत् के महानायक पृथ्वीराज कपूर ने निभाई थी। पृथ्वीराजजी उस समय पं. व्यास के आवास 'भारती भवन' में ही ठहरे थे।

तब से जो आत्मीयता उन दोनों के मध्य स्थापित हुई थी, वह अंत तक बनी रही। बाद के बाद के दिनों में पृथ्वीराज कपूरजी ने 'कालिदास समारोह' में अपनी नाटक मंडली को लाकर स्वयं नाटक भी किए और अपने से होने वाली सारी आय कालिदास समारोह के लिए प्रदान कर दी।

विक्रम कीर्ति मंदिर का निर्माण कर उसमें पुरातत्त्व संग्रहालय, चित्रकला कक्ष, प्राचीन ग्रंथ संग्रहालय आदि रखने का निश्चय किया गया। कुछ समय बाद ही रियासतों का विलनीकरण हुआ, मध्य भारत का निर्माण हुआ और वि.के निर्माण को लेकर अनेक उलझन, प्रपंच और अड़ंगे लगाए गए। चूँकि उस वक्त इंदौर और भोपाल तक में विश्वविद्यालय नहीं थे, अत: वहाँ के अखबारों और स्वार्थी राजनेताओं ने पं. व्यास के इस महान् कार्य में असंख्य बाधाएँ उपस्थित कीं।

उज्जियनी में प्रति वर्ष १२ वर्षों में सिंहस्थ पर्व मनाया जाता है। १९४५ में जब सिंहस्थ पर्व आया, तब देश भर के असंख्य आचार्य, संत-साधु, संत-महंत उज्जयिनी आए, तब पं. व्यासजी ने अपने व्यक्तिगत संपर्कों से प्रयास कर उन्हीं के नेतृत्व में 'विक्रम महोत्सव' तीन रोज

तक मनाया। साधु-संतों के १२१ हाथियों, लाजमों, लवाजमों के साथ लाखों लोगों की उपस्थिति में ३ दिनों तक भव्य आयोजन महत् पैमाने पर मनाया गया। देश भर में विक्रमादित्य का बहुत सा साहित्य विविध भाषाओं में प्रकाशित हुआ। देश भर में सांस्कृतिक लहर आ गई। 'विक्रम द्विसहस्राब्दि समारोह समिति' ने भी 'विक्रम स्मृति ग्रंथ' का प्रकाशन किया जैसा कि प्राय: महाभारत के बारे में कहा जाता है कि जो महाभारत में है, वही भारत में हैं और जो महाभारत में नहीं है, वह कही भी नहीं है। वैसा ही वृहदाकार ३ भाषाओं में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ।

क्या किसी नगर के इतिहास में यह कम महत्त्वपूर्ण घटना है कि पद और अधिकार से वंचित एक व्यक्ति ने एक पूरे शहर को एक युग से दूसरे युग में रख दिया। व्यासजी ने विक्रम, कालिदास या उज्जयिनी के नाम पर मंदिर मठ नहीं बनवाए, अपितु शिक्षा अनुसंधान और कला संस्कृति के शोध संस्थान और विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया। आज के विक्रम वि.वि. के कुलपति भी शायद यह नहीं जानते कि विक्रम वि.वि. बना कैसे? वे पं. व्यास का नाम हटाकर विक्रम को चक्रम में पहले ही बदल चुके हैं। विक्रम आज उनके भ्रष्टाचार से ग्रस्त-त्रस्त है।

हालाँकि व्यासजी यह प्रकिया समाज को भरने के प्रयास में खुद को खाली करने की रही। आज जब भारत को आजाद हुए ७२ वर्ष से भी ऊपर होने जा रहे हैं, आज भी हम अपने सांस्कृतिक-साहित्यिक मूल्यों और अवदानों से हम कितने अपरिचित हैं। तरस आता है कि हमारे राष्ट्र के कर्णधारों पर, जो राष्ट्र को २१वीं शताब्दी में तो ले जाने की बात करते हैं। वे ईसा सन्-संवत् से तो सोचते हैं, संभवत: इन 'शक' और 'हूण' वंशजों को यह ज्ञात नहीं होगा कि हम २१वीं शताब्दी में बहुत पहले से ही मौजूद है।

'हिंदुस्तान' एवं 'पंजाब केसरी', 'नई दुनिया' इस देश में ऐसे राष्ट्रीय समाचार पत्र हैं, जो अपने मुखपृष्ठ पर विक्रम संवत् को ही प्रमुखता देते आए हैं। मेरे व्यक्तिगत अनुरोध को स्वीकार कर स्व. राजेंद्र माथुर (तत्कालिन संपादक) ने 'नवभारत टाइम्स' के मुख्य पृष्ठ पर विक्रम संवत् देना आरंभ कर दिया था। मगर अभी भी कानों में कोई पिघला हुआ सीसा डालता है, जब हम प्रात: आकाशवाणी से रेडियो के कान उमेठते ही सुनते हैं, आज दिनांक··· है। तदनुसार शक संवत्···।

साअ

भारती भवन (महाकाल)
उज्जैन-४५६००६ (म.प्र.)
दूरभाष : ९९९९०७००५९
rajshekhar.vyas@yahoo.co.in

लघुकथा

विवशता

• रेनू मंडल

ऑफिस में सारा दिन अजय का मन नहीं लगा। रह-रहकर पापा का निरीह चेहरा आँखों के आगे घूमता रहा। पिछले तीन माह से दोनों आँखों में मोतियाबिंद के कारण पापा को ठीक से दिखाई नहीं देता। कितने बेबस और लाचार हो गए हैं पापा। डॉक्टर ने तुरंत ऑपरेशन के लिए बोला है, किंतु अचानक आए बड़े खर्चे के कारण वह आपरेशन नहीं करवा सका। खैर अब कोई विवशता नहीं है। इस माह वह पापा की आँखों का ऑपरेशन अवश्य करवाएगा। मन-ही-मन फैसला करके उसका हृदय सुकून से भर उठा।

शाम को उसने कहा, "पापा, मैंने डॉक्टर खन्ना से अप्वांइटमेंट ले लिया है। इस सोमवार आपका ऑपरेशन है।" सुनते ही पापा के चेहरे पर राहत भरी मुसकान तैर गई। अजय किचन में आया। पूजा चाय बना रही थी। गला खंखार कर उसने बोलने का प्रयास किया, "पूजा, मैं सोच रहा था, इस माह पापा का ऑपरेशन करवा दें।" पूजा ने क्रोध से उसकी तरफ देखा। "तुम जानते हो न, इस माह हमारी मैरिज एनीवर्सरी है। मैंने अपनी सब सहेलियों से कह दिया है कि हम अंडमान निकोबार घूमने जा रहे हैं।" "पूजा, घूमने अगले माह भी जा सकते हैं, किंतु···" "तो क्या पापा का ऑपरेशन अगले माह नहीं हो सकता? मैरिज एनीवर्सरी साल में एक ही बार आती है न," कहते हुए पूजा ने चाय का पतीला गैस पर से उतारकर इतने जोर से पटका कि गर्म चाय छलककर उसके हाथ पर गिर गई। सिसकारी भरती हुई वह हाथ पोंछने लगी और वह बर्फ लेने फ्रिज की तरफ लपका। उसे लगा, पूजा ठीक ही कह रही है। ऑपरेशन अगले माह हो सकता है, किंतु मैरिज एनीवर्सरी, वह तो इसी माह है। कुछ देर बाद वह पापा के पास पहुँचा। फोन पर वह उसकी छोटी बहन रितु को ऑपरेशन की सूचना दे रहे थे। ज्योंहि उन्होंने मोबाइल बंद किया, अटकते से स्वर में वह बोला, "पापा···इस माह···मैं···मैं विवश.···हूँ। पूजा घूमने जाना चाहती···ऑपरेशन अगले माह अवश्य करवा दूँगा।"

"मैं समझता हूँ," पापा का चेहरा बुझ गया। उनके चेहरे की झुर्रियाँ और गहरा गईं। यकायक उसकी नजर मम्मी की फोटो पर पड़ी। वह मुसकुराते हुए उसे ही देख रही थीं। उनके अंतिम शब्द उसकी स्मृतियों में कौंध गए, "अपने पापा का खयाल रखना।"

उसने तुरंत नजरें फेर लीं और बोझिल कदमों से बाहर निकल गया।

साअ

बी-३०, गंगासागर कॉलोनी
निकट गंगा नगर, मेरठ-२५०००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९७१९२०१७६१

ग़ज़लें

● बालस्वरूप राही

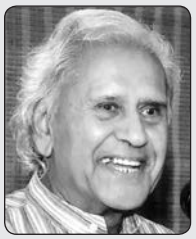

सुपरिचित बहुमुखी साहित्यकार। गीत, ग़ज़ल, मुक्तछंद लगभग सभी विधाओं में निष्णात। हिंदी के प्रथम ऑपेरा 'राग-बिराग' के रचनाकार। केंद्रीय हिंदी संस्थान के सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित।

: एक :

अक्ल कहती है सयानों से बनाए रखना
दिल ये कहता है दीवानों से बनाए रखना

लोग टिकने नहीं देते हैं कभी चोटी पर
जान-पहचान ढलानों से बनाए रखना

जाने किस मोड़ पे मिट जाए निशाँ मंजिल के
राह के और ठिकानों से बनाए रखना

हादसे हौसले तोड़ेंगे सही है फिर भी
चंद जीने के बहानों से बनाए रखना

शयरी ख्वाब दिखाएगी कई बार मगर
दोस्ती गम के फसानों से बनाए रखना

आशियाँ दिल में रहे आसमान आँखों में
यों भी मुमकिन है उड़ानों से बनाए रखना

दिन को दिन रात को जो रात नहीं कहते हैं
फासले उनके बयानों से बनाए रखना

एक बाजार है दुनिया ये अगर ल्हीजी
तुम भी दो-चार दुकानों से बनाए रखना

: दो :

आफतें लौट-लौटकर आईं
देखकर बेवजह ही मुसकाईं

कौन कहता है हम रहे भूखे
हमने दर-दर की ठोकरें खाईं

क्या हुआ हाथ गर रहे खाली
हम से ग़ज़लें तो खूब लिखवाईं

काम था उनका नूर बरसाना
कोहरा बनके हस्तियाँ छाईं

दोस्तों ने चुराई हैं नजरें
मुश्किलें मेरी कब नजर आईं

हम न छोड़ेंगे अपनी जिद हरगिज
आदतें तो सभी ने छुड़वाईं

पूरी शिद्दत से साथ रहती है
मुझसे बेजार कब है परछाईं

हम तो राही हैं साथ क्यों छोड़ें
क्या हुआ मुश्किलें जो इतराईं

: तीन :

तूने खोया मेरा पता जब से
लापता हो गया हूँ मैं तब से

मैं भला किस का इंतजार करूँ
दोस्त मिलते हैं सिर्फ मतलब से

गर गिला मैं करूँ तो किससे करूँ
अपनी किस्मत से, खुद से या रब से

लोग खोए रहे नजारों में
बंध के मैं रह गया तेरी छब से

दिल में कोहराम मचा रहता है
बात फूटी कहा मगर लब से

जिंदगी कशमकश में बीत गई
जी कहाँ पाया मैं भला ढब से

शायरी का ही हाथ थामूँगा
मैंने ये कर लिया है तय अब से

मेरी मंजिल तो सिर्फ तू ही है
मैं हूँ राही भटक रहा कब से

: चार :

काफिले से सहम गए हैं हम
सोचकर कुछ तो थम गए हैं हम

लोग दुनिया खँगाल लेते हैं
अपनी दुनिया में रम गए हैं हम

जिससे जेबें नहीं भरी जातीं
उस तिजारत में जम गए हैं हम

भीड़ उमड़ी पड़ी है मॉलों में
उस तरफ सबसे कम गए हैं हम

शायरी ने हमें पुकारा तो
ले नुकीली कलम गए हैं हम

कोई शुरुआत गर लगी प्यारी
छोड़कर हर रसम गए हैं हम

तोहमतों से डरा नहीं करते
जब बुलाए सनम गए हैं हम

ज्यों ही मंजिल दिखाई दी राही
छोड़कर पेचो-खम गए हैं हम

: पाँच :

कोई माँगता है जन्नत, कोई देव पूजता है
मैं क्या करूँ मुझे तो बस शेर सूझता है

धुन शायरी की जब से छाई दिलो-जिगर पर
औरों की बात छोड़ो अपना नहीं पता है

जब से कलम सँभाली संमत्ता ने और कुछ भी
जाने हुनर ये मुझ को किसने किचर अता है

रहता हूँ कशमकश में फिर भी समझ न पाता
जाने ये कोई खूबी जाने कोई खता है

पहचान मेरी अब तो बस इतनी रह गई है
शायद कोई रुबाई शायद कोई क़िता है

अशआर जिनके मेरे दिल में बसे हुए हैं
लगता है उनसे जैसे कोई खास वास्ता है

राही जनाब भोगो तकदीर में लिखा जो
मंजिल तलफ जो पहुँचे बस ये ही रास्ता है

साअ

डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल,
मॉडल टाउन, दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

कवि-सम्मेलन के बहाने दिनकरजी से भेंट

● भैरूँलाल गर्ग

मैंने जब जुलाई १९७३ में राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के हिंदी विभाग में एम.ए. पूर्वार्ध में प्रवेश लिया, तब एक दिन मेरा परिचय श्री वीरेंद्र डाँगीजी से हुआ। डाँगीजी भी भीलवाड़ा से विश्वविद्यालय में एल.एल.एम. करने आए थे। परस्पर परिचय से मैं भी आश्वस्त हुआ, क्योंकि अपने गाँव-सोडार (भीलवाड़ा-राज.) से लगभग दो सौ कि.मी. दूर मेरा न तो कोई संबंधी था और न ही कोई परिचित विद्यार्थी।

विश्वविद्यालय में डाँगीजी और मैं लगभग प्रतिदिन मिलते रहते थे। दिसंबर का महीना था। एक दिन हम लोग कैंटीन में बैठे थे। डाँगीजी ने जयपुर में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन आयोजन की बात चलाई। उस समय उनके कुछ सहपाठी भी साथ थे। उन्होंने डाँगीजी की इस बात का समर्थन किया। जब डाँगीजी ने मेरी राय जानना चाहा तो मैंने भी सहमति जताई और उनसे कहा कि यह आयोजन अगर प्रो. युगलकिशोर सुरोलिया के निर्देशन में किया जाए तो अधिक अच्छा रहेगा। बस फिर क्या था, डाँगीजी ने अविलंब सुरोलियाजी से संपर्क साधा और इधर कवि-सम्मेलन की तैयारियाँ चल पड़ीं।

बता दूँ कि इधर भीलवाड़ा में डॉ. युगलकिशोर सुरोलिया साहब अपने संयोजन और संचालन में कई वर्षों से प्रतिवर्ष अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन से करवाते आ रहे थे। उस समय का देश का कोई विख्यात मंचीय कवि ऐसा नहीं होगा, जो भीलवाड़ा कवि-सम्मेलन में न आया हो। अत: श्री वीरेंद्र डाँगीजी ने विचार किया कि जयपुर में भी ऐसा ही एक भव्य कवि-सम्मेलन आयोजित किया जाए। श्री डाँगीजी और मैं भीलवाड़ा में आयोजित कवि-सम्मेलनों को कई वर्षों से देखते आए थे। श्री डाँगीजी ने सुरोलिया साहब से परामर्श करके उनके संदर्भ से कवियों से संपर्क साधा तो सभी ने अपनी स्वीकृति दे दी। हम लोगों ने एक कवि-सम्मेलन आयोजन समिति का गठन किया और २६ फरवरी, १९७४ को जयपुर के रामलीला मैदान में कवि-सम्मेलन के आयोजन की घोषणा कर दी। दो-तीन महीने पहले ही हमने इसके लिए लोगों से चंदा इकट्ठा करना शुरू कर दिया था। श्री डाँगीजी ने हमारे आने-जाने के लिए एक एंबेसडर कार (टैक्सी) कर ली थी। हम बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों, ज्वैलर्स, पेट्रोल पंप आदि के मालिकों से चंदा इकट्ठा करते रहते। वैसे डाँगीजी का यह पहला अनुभव था, लेकिन डॉ. सुरोलिया साहब के कारण वे निश्चिंत थे, फिर भी अर्थ की व्यवस्था बहुत बड़ी चुनौती थी, लोगों से चंदा लेना बड़ा कठिन काम था। कई कटु अनुभवों से भी गुजरना था, लेकिन हिम्मत से काम लिया और वह कवि-सम्मेलन घोषणा के अनुरूप आयोजित होना सुनिश्चित हुआ।

तभी हमें पता चला कि २५ फरवरी, १९७४ को डॉ. रामधारी सिंह दिनकर जयपुर आ रहे हैं। रेलवे स्टेशन के पास नवनिर्मित श्रीराममंदिर में 'रामकाव्य' पर उनका व्याख्यान है। श्री डाँगीजी और हम सभी साथियों ने इस बात पर गंभीरता से विचार-विमर्श किया और इस बात की संभावनाएँ तलाशने पर विचार किया कि क्या ही अच्छा हो, अगर २६ फरवरी को होने वाले हमारे आखिल भारतीय कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' कर सकें। लेकिन यह सोचना तो आसान था, ऐसा हो सके, वह हमें बहुत कठिन लग रहा था। परंतु फिर भी हम सभी ने यह तय किया कि दिनांक २४/०२/१९७४ को दिल्ली से दिनकरजी दोपहर को हवाई जहाज से साँगानेर हवाई अड्डे पर पहुँचेंगे, क्यों न तब हम भी उनका स्वागत करने के लिए उस समय हवाई अड्डे पर पहुँच जाएँ और उनसे कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता हेतु निवेदन करें, शायद वे मान भी जाएँ। हमें थोड़ा विश्वास इसलिए था कि इस कवि-सम्मेलन का आयोजन राजस्थान विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा किया जा रहा है, इसलिए शायद वे हमारे निवेदन को स्वीकार कर लें।

हम सभी साथी निश्चित समय से पूर्व दिनांक २४/०२/१९७४ को साँगानेर हवाई अड्डे पर पहुँच गए। सभी बड़ी उत्सुकता से हवाई जहाज के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम सभी के हाथ में मालाएँ थीं। पोद्दार श्री राम मंदिर का प्रतिनिधि मंडल श्री दिनकरजी के स्वागत हेतु पहुँच गया था। तभी हवाई जहाज उतरा और हमने डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' को हवाई जहाज से उतरकर हवाई अड्डे के मैदान पर स्वागत की कक्ष ओर आते देखा तो सभी उनके भव्य व्यक्तित्व को देखकर अत्यंत हर्षित हुए। सभी प्रसन्न मुख एक-दूसरे को देखने लगे। उस समय मुझे 'दिनकर' जी की वह कविता याद हो आई 'मेरे नगपति मेरे विशाल! मेरे भारत के भव्य भाल!' मुझे लगा, दिनकरजी और हिमालय में कितना साम्य है। सचमुच दिनकरजी हिंदी काव्य रूपी हिमालय ही तो हैं। सचमुच इनका भव्य व्यक्तित्व और कृतित्व बेजोड़ है। ये हिंदी काव्य के नगपति हैं, सचमुच ये माँ भारती के भव्य-भाल हैं। उस क्षण उनका भव्य और दिव्य स्वरूप

चित्र खचित सा हम सभी के दृष्टिपटल पर अंकित हो गया था।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ज्यों ही निकट आए, हमने बारी-बारी से उनको माल्यार्पण कर चरण-स्पर्श किए। श्री वीरेंद्र डाँगीजी ने हमारा परिचय देते हुए २६ फरवरी, १९७४ को जयपुर के रामलीला मैदान में आयोजित होने वाले कवि सम्मेलन की अध्यक्षता हेतु उनसे निवेदन किया। कवि-सम्मेलन की बात सुनते ही जैसे उनके मुखमंडल पर घृणा के से भाव तैर उठे। वे बोले, "आजकल कवि-सम्मेलन कहाँ होते हैं? आजकल तो पशु-सम्मेलन होते हैं।" यह सुनते ही हम तो सन्न रह गए। एक राष्ट्रकवि के मुख से ऐसी बात अनायास नहीं निकली होगी। इससे यह तो स्पष्ट था कि वर्तमान के कवि-सम्मेलनों से दिनकरजी संतुष्ट नहीं थे। जबकि दिनकरजी ने स्वयं मंचों पर भी खूब कविताएँ पढ़ी हैं। लेकिन उस समय की मंच की कविता गरिमापूर्ण और मर्यादा की संवाहक हुआ करती थीं। लेकिन अब वैसी कविताएँ मंचों पर नहीं पढ़ी जातीं। शायद राष्ट्रकवि की वेदना इसी कारण इस कथन के माध्यम से व्यक्त हुई है। हमने फिर भी उनसे निवेदन किया कि आप थोड़े समय के लिए ही कवि-सम्मेलन में पधार जाएँ तो यह हमारा सौभाग्य होगा। यह दुर्लभ संयोग है और हम इस अवसर को चूकना नहीं चाहते हैं। हमें विश्वविद्यालयी छात्र जानकर शायद उन्होंने एकदम मना करना तो उचित नहीं समझा था, लेकिन एक शर्त अवश्य रख दी। वे बोले, "देखिए, कल श्रीराममंदिर में 'रामकाव्य' पर मेरा व्याख्यान है। मैं देखता हूँ कि आपमें से कितने छात्र मेरा व्याख्यान सुनने आते हैं। दूसरी बात यह कि मस्तिष्क की बीमारी के कारण मेरा स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहता है। मैं अब कहीं आता-जाता भी नहीं हूँ। लेकिन ये पोद्दारजी पीछे पड़ गए तो मुझे आना ही पड़ा।" यह कहकर वे स्वागत कक्ष की ओर बढ़ चले। हम उनके पीछे-पीछे हो लिए थे।

यह हम सबके लिए कम सौभाग्य का विषय नहीं था कि दिनकरजी के दर्शन, स्वागत और उनसे संवाद का यह अवसर मिला। अब तक दिनकरजी को पाठ्यपुस्तकों में ही पढ़ा था, लेकिन आज इस महाकवि के भव्य और दिव्य स्वरूप के दर्शन कर जैसे हम सभी कृतार्थ हो गए थे। यह भी सोचने लगे कि अगर हम इस अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन का आयोजन नहीं करते तो शायद दिनकरजी के इस तरह स्वागत का तो हमें अवसर मिलता ही नहीं, बल्कि हमें उनके जयपुर आगमन की जानकारी भी मिलती अथवा नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता था। श्री डाँगीजी और हम सभी ने तय किया कि हमें दिनकरजी का व्याख्यान सुनने तो चलना ही है।

दूसरे दिन श्रीराममंदिर के विशाल प्रांगण में दिनकरजी के व्याख्यान की भव्य तैयारियाँ की गई थीं। श्रीराममंदिर का प्रांगण मैंने पहली बार देखा था। रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि और रामचरितमानस के रचनाकार महाकवि तुलसीदास की यहाँ स्थापित मूर्तियाँ बड़ी भव्य और कलात्मक हैं। परिसर में पूर्वाभिमुख मंच पर आसीन दिनकरजी का 'रामकाव्य' पर अत्यंत सारगर्भित व्याख्यान हुआ। वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों के महाकाव्यों के संदर्भ में दिनकरजी का अध्ययन और तात्त्विक विश्लेषण अद्‌भुत था। सचमुच यह व्याख्यान एक सांस्कृतिक व्याख्याकार का था, उपस्थित जनसमूह दिनकरजी को सुनकर उस दिन धन्य हो उठा था। तभी हमें एक अप्रत्याशित दृश्य देखने को मिला।

सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध/आलोचना, बाल साहित्य आदि रचनाएँ प्रकाशित। 'बालवाटिका' मासिक के संस्थापक संपादक। 'बाल साहित्य भारती' सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

व्याख्यान की समाप्ति के बाद अभी दिनकरजी मंच पर ही बैठे थे कि श्रोताओं में से एक संभ्रांत सी दिखने वाली महिला उठकर दिनकरजी से कुछ पूछने के उद्‌देश्य से उनके पास पहुँची। संचालक ने दिनकरजी को संकेत किया कि एक महिला आपसे कुछ पूछना चाहती है। दिनकरजी ने उस महिला को पास बुलाया और उससे कहा कि बोलो, क्या कहना चाहती हो? यह देखकर मैं और मेरा साथी श्री किशनलाल भी मंच के निकट चले गए। उस महिला ने दिनकरजी से प्रश्न किया कि आप तो वीर रस के प्रखर कवि हैं, ओज और पराक्रम पूर्ण कविता के कारण ही आपकी काव्य-जगत् में विशिष्ट पहचान है। आपके अधिकतर प्रबंध काव्य मानव को पराक्रम पूर्ण, वीरोचित और किसी भी स्थिति में हिम्मत न हारने का संदेश देने वाले हैं। कई जगह आपने अपने काव्य में ऐसे चरित्रों का सृजन किया है, जो देशभक्ति, कर्मठता, स्वावलंबन आदि की जैसे प्रतिमूर्ति हैं, जो हमारे लिए प्रेरक और अनुकरणीय हैं।

वह महिला और भी कुछ कहना चाह रही थी कि इसी बीच दिनकरजी बोले, "भाई, इतनी बड़ी भूमिका की आवश्यकता नहीं है, तुम्हें जो कहना हो, सीधे-सीधे कहो।" तभी वह महिला बोली, "मैं तो आपकी कविता 'हारे को हरिनाम' के बारे में कह रही थी कि आखिर आपने ऐसी कविता कैसे लिख डाली? क्या हारे हुए के लिए हरिनाम के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है अथवा नहीं होना चाहिए। मुझे तो इस कविता में नैराश्य की ही गंध आती है।" मुझे आज लगता है कि सचमुच उस महिला ने दिनकर काव्य को बड़ी गंभीरता और मनोयोग से पढ़ा ही नहीं, अपितु अपने ढंग से उसका गहन विश्लेषण भी किया था। खैर, उस महिला की यह आपत्ति सुनकर दिनकरजी बोले, "आपका प्रश्न और शिकायत भी मानूँ तो सही है, लेकिन मैंने इस कविता में निराशा को कहीं हावी नहीं होने दिया है, बल्कि इसमें निराशा जैसा अथवा मनुज की हार जैसा भी कुछ नहीं है। मैंने तो मानवीय मनोविज्ञान की एक अवस्था का चित्रण भर किया है, क्योंकि अगर व्यक्ति सारे प्रयास करके भी किसी कार्य को करने में अपने को असमर्थ पाता है अथवा संकट विशेष से उबरने के लिए उसके पास कोई विकल्प नहीं बचता है तो वह ईश्वर की शरण में जाने को एक नियति मान लेता है। ऐसा ही होता भी है।" लेकिन मैंने महसूस किया था कि दिनकरजी के स्पष्टीकरण के बावजूद वह महिला संतुष्ट नहीं हो पाई थी। जब वह इस संबंध में किसी भी तरह दिनकरजी की बात को न मानते हुए उनसे तर्क ही किए जा रही थी तो मुझे अच्छी तरह याद है दिनकरजी को थोड़ा आवेश आ गया था और वह यह कहकर, "भई, अब तुम जो चाहो कहो, मुझे तो जो कुछ कहना था, कह दिया है। तुम चाहो तो मेरी इस कविता के विरोध में जैसा चाहो लिख सकती हो, तुम स्वतंत्र हो।"

चलने के लिए उठ खड़े हुए थे।

कार्यक्रम के उपरांत दिनकरजी जहाँ ठहरे थे, वहाँ के लिए प्रस्थान करने के लिए ज्यों ही मंदिर परिसर से बाहर आए, मैं अपने साथी श्री किशनलाल के साथ उनके सामने आया और प्रणाम किया तथा उन्हें सांगानेर हवाई अड्डा वाला संदर्भ दिया। तभी उन्होंने मेरा परिचय चाहा। मैंने कहा कि मेरा नाम भैरूँलाल गर्ग है और मैं राजस्थान विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में एम.ए. पूर्वार्ध का विद्यार्थी हूँ। यह सुनकर वे थोड़ा आश्वस्त हुए और तत्काल बोले, "इस समय तुम्हारा हिंदी-विभागाध्यक्ष कौन है?" मैंने कहा, "प्रोफेसर डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय हमारे हिंदी-विभागाध्यक्ष हैं।" दिनकरजी ने लगभग खीजते हुए कहा, "उसे नहीं मालूम कि मैं जयपुर आ रहा हूँ और यहाँ 'रामकाव्य' पर मेरा व्याख्यान है।" इसके उत्तर में मैं तो क्या कहता? यही कहा, "हाँ, वे तो नहीं आए हैं।" इसके बाद उन्होंने हमें पुस्तकालय की महत्ता बताते हुए कहा था कि तुम्हें अधिक-से-अधिक पुस्तकालय का लाभ लेना चाहिए, बल्कि इससे पूर्व यह भी प्रश्न किया था कि तुम लोग पुस्तकालय में कितना बैठते हो? आज सोचता हूँ तो लगता है कि मैं कभी सोच भी नहीं सकता था कि मुझे अनायास राष्ट्रकवि डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' का स्वागत करने और इस तरह संवाद और सान्निध्य का कभी ऐसा सौभाग्य भी मिल सकेगा।

बाद में २६ फरवरी, १९७४ को रामलीला मैदान, जयपुर में आयोजित कवि सम्मेलन के लिए तो वे नहीं ठहर पाए थे। स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के कारण शायद वे दिन में ही दिल्ली लौट गए थे। लेकिन उस दिन मैंने यह अवश्य महसूस किया था कि राजस्थान विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग संकाय सदस्यों और जयपुर शहर के साहित्यकारों द्वारा समुचित सम्मान नहीं पाकर दिनकरजी किंचित् ही सही, लेकिन क्षुब्ध हुए थे। उस समय दिनकरजी राज्यसभा के विशिष्ट सम्मानित सदस्य भी थे। यही नहीं 'ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी पुरस्कार' प्राप्त और 'पद्मभूषण' से सम्मानित हिंदी के प्रख्यात कवि का जयपुर आगमन निस्संदेह जयपुर वासियों के लिए परम सौभाग्य का विषय था। कुछ ही दिनों बाद हिंदी काव्य-जगत् का यह प्रखर सूर्य २४ अप्रैल, १९७४ को सदा के लिए अस्त हो गया था। मुझे अच्छी तरह याद है, जयपुर के राजापार्क में एक परनामी होटल और ढाबा था। मैं और मेरा साथी श्री किशनलाल सुबह-सुबह वहाँ चाय-नाश्ते के लिए चले जाया करते थे। इस बहाने हमें अखबार भी पढ़ने को मिल जाता था। इसी तरह हम दोनों २५ अप्रैल, १९७४ को प्रातः इस होटल पर आए। टेबल पर पड़े दैनिक हिंदुस्तान अखबार के संपादकीय पृष्ठ पर एक बड़ा सा शीर्षक पढ़कर में चौंका, 'चढ़ा मैं रश्मिरथ पर आ रहा हूँ।' लगा, दिनकरजी नहीं रहे। उन दिनों समाचारों का मुख्य स्रोत समाचार-पत्र ही हुआ करते थे। यह लेख पढ़कर मेरी आँखें भीग गई थीं। बार-बार यही सोचकर रोमांच का अनुभव करता हूँ कि उस समय दिनकरजी के दर्शन सचमुच मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य था।

नंदभवन, काँवाखेड़ा पार्क, शिवाजी नगर
भीलवाड़ा-३११००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१३२११९००
balvatika96@gmail.com

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

गदराई गेहूँ की बाली

• सूर्यप्रकाश मिश्र

'छुईमुई सी सुबह', 'वफा के फूल मुसकराते हैं', 'भोर का तारा न जाने कब उगेगा', 'दरबान ऊँघते खड़े रहे', 'सुरीले रंग', 'सूख रहा पौधा सुराज का' (छह गीत-संग्रह), 'कौवा पुराण' (कुंडली-संग्रह)। अनेक पत्रिकाओं में गीत, कविता, कहानी, व्यंग्य प्रकाशित। संप्रति भारतीय स्टेट बैंक में प्रबंधक पद से सेवा-निवृत्त।

ऋतु बसंती

अनमनी थी सुबह फागुनी हो गई
प्रेम की कोई कविता गढ़ी जाएगी

गुनगुनाती हवा पंख सहला गई
पंछियों की उड़ानें बहकने लगीं
पक रहे खेत की गंध ऐसी उड़ी
दिन की काया ही पूरी महकने लगी

नेह की पाठशाला में तय हो गया
देह कवितावली है पढ़ी जाएगी

फूल सरसों के खिल आए तन प्राण में
मन के आँगन में सपने विचरने लगे
कुछ पखेरू खयालों के खोए हुए
ऋतु बसंती के संग ही उतरने लगे

छोड़कर आ गए थे, जिसे हम कभी
फिर वह फुरसत की सीढ़ी चढ़ी जाएगी

चित्र जिसने बनाया सुबह शाम का
भर दिया दूर तक रंग पीला हरा
तूलिका कितनी अलसाई-अलसाई है
रस के सागर में डूबा है हर इक सिरा

वे बसंती हुए, हम बसंती हुए
फिर ये तसवीर दिल में मढ़ी जाएगी।

मधुशाला

गदराई गेहूँ की बाली

लहलहा उठी हैं उम्मीदें
गुनगुना उठी है हरियाली

खेतों में यौवन झूम रहा
कर गया असर मधु का प्याला
चढ़ते फागुन ने खोल दिया
हर जगह प्यार की मधुशाला

कण-कण में मस्ती समा गई
बिछ गई मदभरी खुशहाली

छा गया क्षितिज तक रंग हरा
रस में डूबा है पोर-पोर
हर सुबह शाम महुवे जैसी
दिन-रात हुए सुख से विभोर

सूरज भर लाया कुमकुम से
चमकीली सोने की थाली

सेमर के रंग भरे डोरे
उन आँखों की पहचान हुए
जिनमें कुछ नव अंकुर फूटे
कुछ सपने अभी जवान हुए

कोयल की कूक से हूक उठी
भर उठी आह भोली-भाली।

नव सृजन

दिन ढले एकादशी के

भर गया शृंगार तन में
मन रमा आनंद वन में
नवल लय नव ताल नव सुर
प्रकृति रत है नव सृजन में

हो गए अवयव रसीले
आम्रपाली षोडशी के

गा रही हैं भावनाएँ
अनगिनत संभावनाएँ
रंग-बिरंगी मदन ऋतु से
झर रही हैं कामनाएँ

रमण करता पुष्पधन्वा
संग अपनी प्रेयसी के

सज गई फूलों की क्यारी
हो गये भौंरे पुजारी
रास रंग के देवता की
आरती सबने उतारी

बज उठे नूपुर भुवन में
मेनका के उर्वशी के

रच रही नूतन कहानी
कल्पना की बागवानी
पंक्तियाँ गढ़ने लगे हैं
शब्द पीले और धानी

मौन पढ़ता जा रहा है
अर्थ फूलों की हँसी के

मोर गाता है कबीरा
मोरनी का मन है मीरा
काक, पिक, शुक के हृदय में
बह रही है प्रेम नीरा

घुल गए हैं रंग बन के
बोल सुमधुर जायसी के।

बी २३/४२ ए के बसंत कटरा,
गांधी चौक, खोजवा, निकट दुर्गा कुंड,
वाराणसी-२२१०१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८३९८८८७४३

संत-साहित्य का वैभव और दादूपंथ

• नंद किशोर पांडेय

समरस समाज की स्थापना के आलोक में दादूपंथ को देखा जाना चाहिए। संपूर्ण भक्ति आंदोलन की मूल चेतना सामाजिक समरसता है। संतों ने अपने भ्रमण, अध्ययन, मनन, चिंतन और साधना के बल पर यह देख लिया था कि विशृंखलित होते जा रहे भारतीय समाज को समानता से अधिक समरसता की आवश्यकता है। एक ही समाज को दो लोग अनेक दृष्टियों से समान होकर भी समरस नहीं हो सकते। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक समानता भी मनुष्य की समरसता में बाधक है। अनेक संतों का संघर्ष धार्मिक दृष्टि से गैर बराबरी के विरुद्ध भी था। एक ही धर्म और संस्कृति के साधक होकर भी पूजा-स्थान और उपासना द्रव्य को लेकर भेदभाव उन्हें मंजूर नहीं था। वे धार्मिक धरातल पर बराबरी और स्वीकार्यता के लिए संघर्षरत रहे। इसमें उन्हें उनके जीवनकाल में ही सफलता मिली।

संत दादूदयाल का जन्म सन् १५४४ ई. में हुआ था। इनका देहांत सन् १६०३ में हुआ। संत दादूदयाल को कुल ५८ वर्ष की उम्र प्राप्त हुई। ग्यारह वर्ष की उम्र में अहमदाबाद के काँकरिया तालाब पर उनकी भेंट एक वृद्ध से हुई। उस वृद्ध ने दादू को आशीर्वाद दिया और उन्होंने उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया। इस वृद्ध ने ही उन्हें साधना-पद्धति भी बतलाई। बतलाते हैं कि वे स्वयं भगवान् थे। उन्हीं के आशीर्वाद और प्रभाव से दादूदयाल के व्यक्तित्व में संतत्व के लक्षण विकसित हुए। उनका संप्रदाय 'ब्रह्म संप्रदाय' के नाम से विकसित और प्रचलित हुआ। जनगोपाल ने 'श्री दादू जन्मलीला परची' में इस घटना का उल्लेख किया है—

तीजे पहर निकट ही संझा।
खेलत डोलै लड़कन मंझा॥
जब बीते एकादश बरसू।
बुड्ढे-रूप दियौ हरि दरसू॥

संत दादू दयाल के ५२ प्रमुख संतों की चर्चा की जाती है। इसकी सूची राघवदास के भक्तमाल में है। इनमें अनेक कवि हैं। 'दादू' नाम के साथ 'दयाल' शब्द उनकी विनम्रता, दयालुता, सहजता तथा सर्वसमावेशिता आदि गुणों के कारण मिला। संतों तथा आम जनता के बीच 'दयालपंथी' शब्द भी प्रचलित है। संत दादूदयाल के जन्म के साथ उनके अभ्युदय में ३० वर्ष जोड़ लें तो १५७४ ई. बनता है। इस समय तक हिंदीतर तथा हिंदी भाषी क्षेत्र में अनेक संत भारतीय समाज को उन्नत और परिष्कृत बनाने के लिए अपने-अपने ढंग से काम कर रहे थे। वाराणसी के संत कबीरदास और रैदास का यश उत्तर भारत में फैल चुका था। दादूदयाल ने तो कबीर के आराध्य को ही अपना आराध्य स्वीकार किया है। एक साखी में दादूदयाल ने कहा है—

जेथा कंत कबीर का, सोई वर वरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करिहूँ॥

संत कबीरदास अपनी रचनाओं में कर्मकांड का विरोध कर रहे थे। यह विरोध कहीं अधिक, कहीं कम सभी निर्गुण संतों के यहाँ दिखलाई पड़ता है। संत स्वभावानुसार दादूदयाल के पूर्ववर्ती संत दर्शन, योग, भक्ति और समाज की अनेक प्रकार की रीति-नीतियों को भी चर्चा कर रहे थे। संत दादूदयाल और दादूपंथ की जितनी चर्चा हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों और पाठ्यक्रमों में होनी चाहिए थी, उतनी हुई नहीं। संपूर्ण संत साहित्य और संत विचार का जितना प्रचार-प्रसार दादूपंथ ने किया उतना किसी भी पंथ ने नहीं किया। दिलचस्प बात यह है कि संतों ने पंथ-संप्रदाय का भी खूब विरोध किया और उन्हीं के अनुयायियों ने उनके जीवन में ही पंथ चलाया। कई ने बाद में अपने पूज्य संत के नाम पर पंथ प्रचलित किया। सगुण भक्त पंथ विरोधी नहीं थे, लेकिन न तो उनके नाम पर उनके जीवन में कोई पंथ स्थापित हुआ और न ही बाद में।

सगुणोपासक संतों की मूर्तियाँ भी कम बनी, मंदिर तो प्राय: नहीं ही बने। कुछ बने भी तो बहुत बाद में।

दादूपंथ को उनके साहित्य के माध्यम से समझने के साथ ही सामाजिक कार्यों से भी जानने की जरूरत है। १७वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मुगल सत्ता के समय संपूर्ण उत्तर भारत में जिस प्रकार का साहित्यिक-सामाजिक जागरण दादूपंथियों ने किया वैसा अन्य पंथ-संप्रदाय नहीं कर पाए। दादूपंथ के वे संत जो अल्पख्यात रह गए उनके कार्यों की चर्चा करना आवश्यक समझता हूँ। इस पंथ के संतों ने संग्रह ग्रंथों का निर्माण किया। संग्रह करने के लिए संपादन की पद्धति विकसित की। रागों के साथ अंगों में रचनाओं को निबद्ध किया। संत दादूदयाल के पंथ के प्रमुख तीन संतों ने 'सरबंगी' संग्रह ग्रंथ बनाया। यह हैं—संत रज्जब, गोपालदास और जगन्नाथदास। संत रज्जब की 'सरबंगी' का संपादन कई विद्वानों ने किया है। इसके लिए दादू द्वारा नारायणा, दादू महाविद्यालय जयपुर तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्राप्त पांडुलिपियों का उपयोग किया गया है। अलग-अलग संपादकों के संपादित ग्रंथों में अंगों की संख्या भी पृथक्-पृथक् है। सरबंगी में कितने रचनाकारों की रचनाएँ हैं, यह भी सुनिश्चित नहीं हो पाया है। इसका एक बड़ा कारण अलग-अलग पांडुलिपियों में प्राप्त संख्या और मिलते-जुलते नाम हैं। अरबी, फारसी और संस्कृत के रचनाकारों के नाम सम्मिलित करने पर लगभग १५० कवियों की रचनाओं का संग्रह रज्जब की 'सरबंगी' है। इस ग्रंथ के लिए 'सर्वंगी', 'सरबंगी' और 'सर्वांग योग' नाम मिलता है। संत रज्जब के नाम से तीन ग्रंथ प्राप्त होते हैं—

स्वामी नारायणदास ने लिखा है, "जगन्नाथजी महाराज दादूजी के सुयोग्य शिष्यों में हैं। आप महान् विचारक और अच्छे संत कवि महात्मा हुए हैं। आपकी वाणी बहुत है। आपकी रचनाओं का परिचय यहाँ 'महाग्रंथ' से दिया जाता है। उन रचनाओं के नाम जानने से ही सिद्ध होता है कि यह महान् विचारक थे। साखी भाग में २२१ अंगों में ६७३६ साखी हैं। पद भाग में २२ रागों में १२० पद हैं। २० लघुग्रंथ हैं।" 'गुणगंजनामा' ग्रंथ १७९ अंगों में विभाजित है। इसमें ५६०० पद्य हैं।

१. श्री रज्जब वाणी, २. सरबंगी, सर्वंगी या सर्वांग योग, ३. अंगबधू, अंगबंधी या अंगबंधू ग्रंथ। 'अंगबधू' संत दादूदयाल की रचनाओं का संग्रह है। यह वस्तुत: 'अंगबंधी' है। इसका अर्थ है—'अंगों में बँधी हुई रचनाएँ'। संत दादूदयाल की रचनाओं के संग्रह का पुराना नाम 'हरडे वाणी' था। संत रज्जब ने दादूदयाल के शिष्य संतदास तथा जगन्नाथदास द्वारा तैयार किए गए 'हरडेवाणी' के पाठ को शुद्ध करके उसे ३७ अंगों में बाँटकर संपादित किया। इसका नाम अंगवधू या अंगबंधी पड़ा। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इस पर चर्चा करते हुए उत्तरी भारत की संत परंपरा में लिखा है, "रजबजी की एक तीसरी कृति 'अंगबंधू' नाम से प्रसिद्ध है, जो वास्तव में दादूदयाल की रचनाओं का संग्रह है, जो सिखों के प्रसिद्ध पूज्यग्रंथ आदिग्रंथ से प्राय: दस वर्ष पहले संगृहीत हुआ था और जो इस कारण इस प्रकार के ग्रंथों का प्रथम आदर्श स्वरूप है।" 'रज्जब वाणी' रज्जब की रचनाओं का विशाल संग्रह है। इसमें साखी, पद, सवैया, लघुग्रंथ तथा छप्पय ग्रंथ है।

गोपालदास ने भी 'सर्वांग सरह चिंतामणि' नाम से संग्रह ग्रंथ तैयार किया है। इनके गुरु संतदासजी मारू थे। 'श्री दादूपंथ परिचय' में इस संग्रह में लिए गए १८३ कवियों की सूची दी गई है। संवत् १६८४, फाल्गुण, शुक्ल पूर्णिमा को यह ग्रंथ पूर्ण हुआ था। 'सर्वांग सरह चिंतामणि' में १३७ अंग हैं। इस ग्रंथ में संगृहीत प्रमुख कवि हैं—दादूदयाल, कबीरदास, गोरखनाथ, नामदेव, गुरु नानक, हरदास, टीला, बखना, गोपाल, फरीद, गरीबदास, सूरदास, जैदेव, पीपा, विद्यापति, वाजीद, माधवदास, जनगोपाल, रैदास, धना, क्षेमदास, जगजीवन, चैन, मच्छंद्रनाथ, श्रीभट्ट, त्रिलोचन, कील्हकरण, कणेरीपाव, दत्त, बहवलदास, सधना, शिव अवधू, सेन, नथमल, काजीमहमूद, लालगंज, मलिक आदि। कुल संख्या में कवियों की गिनती कुछ कम-अधिक भी हो सकती है।

जगन्नाथ आमेर में चुंगी विभाग में अधिकारी थे। ये संत दादूदयाल से प्रभावित थे और उनके प्रवचनों को सुनने के लिए आते थे। कुछ समय बाद उन्हें लगा कि विरक्त जीवन व्यतीत करना चाहिए। वे दादू दयाल के शिष्य हो गए। भक्तमालकार राघवदास ने भक्तमाल के दो पदों में उनके जीवन और लेखन के विषय में बतलाया है। जगन्नाथजी आमेर दादूधाम में ही अधिकांशत: रहे। ये भगवत-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हुए इस संसार में रहे। दैवी गुणों से युक्त थे। समझने की शक्ति भी प्रबल थी। ये शास्त्रज्ञ, तत्त्वज्ञ, शीलवान और सत्यवादी थे। उन्होंने 'गुणगंजनामा' नाम से संग्रह ग्रंथ तैयार किया। गीतासार तथा वसिष्ठसार के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं। भक्तमालकार राघवदास की पंक्तियाँ हैं—

दादू को शिष जगन्नाथ, जुगति जतन जग में रह्यो॥
प्रेमा भक्ति विशेष, ज्ञान गुन बुद्धि समझ अति।
शास्त्रज्ञ तत्त्वज्ञ, शील सतवादी मति गति॥
'गुण गंजनामा' किया, सर्व की कविता ता मधि।
गीता वसिष्ठसार, ग्रंथ बहु अवर साधु सिधि॥
चित्रगुप्त कुल में प्रकट, जो देख्यो सोई कह्यो।
दादू को शिष जगन्नाथ, जुगति जतन जग में रह्यो॥

इन्होंने 'गुणगंजनामा' संग्रह के अतिरिक्त स्वयं भी बहुत से पदों तथा

सुपरिचित लेखक। भारतीय साहित्य के प्रतिष्ठित अध्येता एवं मध्यकालीन हिंदी साहित्य के चर्चित विद्वान्। प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के कई वर्षों तक प्रधान संपादक। संत साहित्य की समझ, संत रज्जब, दादू पंथ के शिखर संत, रज्जब मोनोग्राम चर्चित पुस्तकें हैं।

साखियों की रचना की है। स्वामी नारायणदास ने लिखा है, "जगन्नाथजी महाराज दादूजी के सुयोग्य शिष्यों में हैं। आप महान् विचारक और अच्छे संत कवि महात्मा हुए हैं। आपकी वाणी बहुत है। आपकी रचनाओं का परिचय यहाँ 'महाग्रंथ' से दिया जाता है। उन रचनाओं के नाम जानने से ही सिद्ध होता है कि यह महान् विचारक थे। साखी भाग में २२१ अंगों में ६७३६ साखी हैं। पद भाग में २२ रागों में १२० पद हैं। २० लघुग्रंथ हैं।" 'गुणगंजनामा' ग्रंथ १७९ अंगों में विभाजित है। इसमें ५६०० पद्य हैं। ये साखी, शब्दी, चौबेला, श्लोक, गाथा, अरिल, रेखता, गूढा, चौमुखी, चौपाई, सिंधी साखी, सोरठा, गाहा तथा चौपाई आदि छंदों में हैं। इसमें १२२ संतों की रचनाएँ तो नाम के साथ संकलित की गई हैं। इसके अतिरिक्त अन्य संत कवियों की भी रचनाएँ हैं। 'गुणगंजनामा' में संगृहीत प्रमुख कवि हैं—दादूदयाल, कबीरदास, रज्जब, जगजीवनदास, जैमल, चैन, वाजीद, गुरुनानक, रैदास, बखना, अग्रदास, तुलसीदास, नामदेव, जैमल, गरीबदास, क्षेमदास, मोहनदास, पीपा, गोरखनाथ, मलूकदास, फरीद, रांका, श्यामदास, कमाल, धना, भरथरी, कणेरी आदि।

भारतीय विद्वानों में बड़े समीक्षकों या साहित्यकारों की दृष्टि दादूपंथ के साहित्यिक अवदान की ओर बहुत कम गई है। उन तक यह सूचना भी नहीं पहुँची की १७वीं शताब्दी में संत साहित्य के संग्रह का इतना बड़ा उपक्रम दादूपंथियों द्वारा किया गया। विशेष बात यह है कि जिन भारतीय विद्वानों का ध्यान इस ओर गया, वे हिंदी साहित्य के अध्येता नहीं हैं। अन्य भारतीय भाषाओं के विद्वान् हैं, इतिहासकार हैं या किसी पंथ-संप्रदाय में दीक्षित भक्त अध्येता हैं। विदेशी विद्वानों ने २०वीं शताब्दी में पूरे मध्यकाल को ध्यानपूर्वक पढ़ा है। इसमें से अनेक संत साहित्य के विद्वान् भी हैं। पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में कई विद्वानों ने विशेष रूप से हिंदी साहित्य के मध्यकाल पर काम करना प्रारंभ किया। इसमें डॉ. Winand M. Callewaert का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। Winand M. Callewaert बेल्जियम के रहने वाले हैं। इन्होंने भारत में १९६५ ई. में पढ़ने के साथ ही साहित्य पर काम करना प्रारंभ किया। संत रज्जब, संत रैदास, संत नामदेव, संत दादूदयाल और संत गोपालदास पर किया गया उनका कार्य उल्लेखनीय है। 'The Sarvangi of Gopaldas' की भूमिका में उन्होंने दादूपंथ के संग्रहकर्ताओं को आदर के साथ उल्लेख तो किया ही है, इस बात पर आश्चर्य भी व्यक्त किया है कि १७वीं शताब्दी में इस कठिन कार्य को उन लोगों ने कैसे किया होगा तथा संग्रह करने के इनके तरीके एवं स्रोत किस प्रकार के रहे होंगे। कैलवर्ट ने लिखा है, "It has taken me years to discard the notion that Gopaldas compiled his anthology from existing manuscripts lying on the floor in front of him. It was hard to imagine that without manuscripts a person could produce such a wonderful selection of pads and sakhis and classify them according to theme. But slowly, as I made progress in the wonderful world of performers rising before me from the manuscripts."

संत दादूदयाल के पंथ में विद्या-परंपरा को स्थापित करने में जगजीवन दास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ये काशी में रहते थे। मूलत: दक्षिण भारत के थे। संत दादूदयाल के शिष्य हो गए थे। इनके विषय में मैंने अनेक लेखों में तथा 'दादूपंथ के शिखर संत' पुस्तक में विस्तारपूर्वक लिखा है। दादूदयालजी के परलोकगमन के पश्चात् ये अनेक शिष्यों के साथ काशी आए। उन संतों की शिक्षा काशी में हुई। काशी के अस्सी घाट पर आज भी दादूमठ है। संत गरीबदास ऐसे संत हैं, जो दादूदयाल के बाद उनकी गादी पर आसीन हुए। उन्होंने वाणियाँ भी लिखीं और पंथ को व्यवस्थित करने का प्रयास किया। ये बहुत अच्छे वीणावादक थे। मसकीनदास दादूपंथ की आचार्यों की परंपरा में आते हैं। इन्होंने भी वाणियाँ लिखीं। दादूपंथ की आचार्य परंपरा में पंथ को मजबूत बनाने और प्रचारित करने की दृष्टि से जैतरामजी महाराज का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म नारायणा में ही हुआ था। ये फकीरदास के शिष्य थे। जैतराम को दादूजी का ही स्वरूप माना जाता है। इन्होंने दादूपंथ और निर्गुण परंपरा के प्रचार के लिए बहुत यत्न किया। इनके लिए संप्रदाय में पंक्ति प्रसिद्ध है—

जैता दादू दूसरा, दादू ही की देह।
रोम-रोम में रम रह्या, ज्यों बादल में मेह॥

जैतराम की रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। दादूपंथ का स्वरूप इन्होंने ही विकसित किया। पंथ के लिए कुछ मर्यादाएँ सुनिश्चित कीं। इस परंपरा के आचार्यों के लेखन पर स्वतंत्र रूप से कार्य करने की आवश्यकता है। प्रमुख शिष्यों के अतिरिक्त दादूदयाल की चौथी पीढ़ी तक के संतों ने बड़ी संख्या में वाणियों को लिखकर दादूदयाल के पंथ को तो समृद्ध किया ही, हिंदी साहित्य के भंडार को गुणात्मक ढंग से भरा। नाभादास का भक्तमाल चर्चित और प्रतिष्ठित हुआ। राघवदास के भक्तमाल की कम चर्चा हुई। राघवदास का भक्तमाल साहित्य के साथ इतिहास के लिए भी बहुत उपयोगी ग्रंथ है। राघवदास ने अपने भक्तमाल में पंथ और परंपरा की दृष्टि से कोई भेदभाव नहीं किया। प्रामाणिक सामग्री को कविता के रूप में प्रस्तुत करने का यत्न किया। इस कार्य में उन्हें सफलता और लोकप्रियता दोनों प्राप्त हुई।

दादूपंथ ने हिंदी साहित्य को विद्वान् संत दिए, कवि दिए और सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसे संग्रहकर्ता और संपादक दिए, जैसा किसी अन्य पंथ ने नहीं दिया। जहाँ संतों में सबसे पढ़े-लिखे कवि सुंदरदास (छोटे) हैं, वहीं संत दार्शनिक निश्चलदास हैं। इस परंपरा ने न केवल राजस्थान और हिंदी के साहित्य को अपितु भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। इस पंथ पर सैकड़ों शोध की जरूरत है। इन पर किया जाने वाला कार्य भारत के जनतांत्रिक मूल्यों, समरसता और सद्भाव को दृढ़ करने वाला होगा।

साअ
अधिष्ठाता, कला संकाय
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
nkpandey65@gmail.com

सिर्फ रोटियाँ

● **बलराम अग्रवाल**

"सुनिए सर, सुनिए प्लीज!" भीड़-भाड़ वाले मेट्रो मॉल में रिपोर्टर विमलेश माइक लेकर कभी इस, कभी उस आदमी के पीछे दौड़ रहा था, "छोटा सा एक सवाल सर!"

कैमरामैन हामिद बदस्तूर उसके दाएँ-बाएँ, आगे-पीछे था।

"छोटा सा एक सवाल सर! प्लीज!" कभी इसके तो कभी उसके मुँह की ओर माइक को घुमाता विमलेश रिपोर्टर की गरिमा के विरुद्ध रिरिया सा रहा था।

"पूछिए।" एक ने मेहरबानी की।

"हिजाब या पुस्तक?"

"राजनीतिक सवाल न करें।" कहकर वह खिसक गया।

तुरंत ही सामने से आती एक युवती से विमलेश ने सवाल दोहराया, "हिजाब या पुस्तक, मैम?"

"धर्म से जुड़ा सवाल है, नो कमेंट।" वह बोली और चली गई।

एक ही व्यक्ति पर अटके रहना उचित नहीं समझा विमलेश ने। अगले आदमी की ओर बढ़ गया, "सादा सा एक सवाल सर! हिजाब या पुस्तक?"

"सांप्रदायिक सवाल न करें, सॉरी।"

विमलेश ने एक अन्य का पीछा किया, उसके बाद एक और, एक और, कभी स्त्री, कभी पुरुष। एक से बढ़कर एक आधुनिक दिखने वाली युवती-युवक! हर शख्स कतराकर निकलता रहा।

"आजाद देश में यह कैसा कल्चर पनपा है यार!" भागता-हाँफता हामिद कह उठा, "एक भी शख्स जवाब नहीं दे रहा है!"

"यह देश आजाद कभी था ही नहीं, हामिद," रिपोर्टर ने व्यंग्यपूर्वक जवाब दिया, "सेक्युलर था और वही अब भी है। इसी वजह से नहीं मिल रहा है जवाब।"

"इसीलिए तो मिलना चाहिए जवाब।" हामिद ने प्रतिवाद किया।

"धर्म-निरपेक्षता के नाम पर सांप्रदायिक जिदों को बढ़ावा मिलता रहा है हामिद; समझा कर!" विमलेश ने सधे हुए स्वर में कहा, "बाहर निकलते हैं।"

हामिद ने कैमरे को कंधे पर लटका लिया। दोनों बाहर निकल आए। पार्किंग से गाड़ी नहीं उठाई। पैदल ही मॉल के बाईं ओर बढ़ चले।

"तूने सही सोचा यार," कुछ दूरी पर बने ढाबों की कतार पर नजर पड़ते ही हामिद बोला, "मेरे भी पेट में चूहे दौड़ने लगे हैं।"

"यहाँ मिलेगा जवाब," विमलेश ने कहा, "देखता जा।"

जाने-माने रचनाकार। 'चन्ना चरनदास', 'दूसरा भीम' (बालकथा-संग्रह), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी। अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद तथा कई संपादित पुस्तकें। १२ खंडों में प्रकाशित 'प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ' में संपादन सहयोग; हिंदी साहित्य कला परिषद्, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को अद्यतन संपादन सहयोग।

दोनों ढाबे के अंदर पड़ी कुरसी-मेजों के घटाटोप की बजाय बाहर, खुले में बिछी चारपाइयों में से एक पर जा टिके। 'अभी आया' कहकर विमलेश ने कनिष्ठा उठाई और लंबे डग भरता हुआ वॉशरूम की ओर भाग गया।

उसके लौटकर आने तक हामिद से ऑर्डर लिया जा चुका था। पानी के गिलास और थालियाँ लकड़ी के फट्टे पर सज चुकी थीं। तंदूर की ओर ताकता हामिद बार-बार अपने पेट पर हाथ घुमा रहा था। रोटियाँ निकलते ही ढाबेवाला लड़का कभी उस ओर उन्हें बाँट आता, कभी उस ओर! काफी देर बाद एक अन्य लड़का आकर सलाद की प्लेट और सब्जी के कटोरे रखकर जाने लगा।

"सब्जियाँ रूखी खानी हैं क्या बे!" हामिद उस पर तड़क उठा, "रोटियाँ भी साथ ला!"

"रोटियाँ लाने वाला लड़का दूसरा है, साहब!" लड़का लापरवाह अंदाज में बोला, "आपका नंबर लगते ही लाएगा।"

"अबे तो सब्जियाँ भी नंबर लगने पर ही लानी थीं न!" हामिद ने धमकाया, "उठा इन्हें।"

"मैं फौरन बुलाकर लाता हूँ, साहब।" धमकी से घबराकर लड़का बोला और भागा चला गया।

"इन बेचारों पर नाराज मत हो यार!" लड़के के चले जाने पर विमलेश हामिद से बोला, "ज्यादा कस्टमर होने से खाना सर्व करने में हो जाती देर, तू जानता है।" फिर हँसते हुए कहा, "जब तक रोटियाँ आती हैं, केबीसी खेलते हैं; बता—हिजाब या··· ?"

"रोटियाँ लाओ फटाफट!" भूख से बेचैन हामिद सवाल के बीच में ही इतनी जोर से फटा कि ढाबे पर मौजूद हर शख्स उसकी ओर देख उठा और विमलेश थोड़ा आगे झुककर फुसफुसाया, "यही है जवाब—ढाबे पर, नो हिजाब नो पुस्तक, सिर्फ रोटियाँ!"

एम-७०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ८८२६४९९११५

विवशताएँ

● चंद्रपाल मिश्र 'गगन'

विवशता सामर्थ्य की वह अवस्था होती है, जिसमें इनसान का साहस जवाब दे जाता है और उसको संकट से उबरने का कोई उपाय नहीं सूझता। चेतना में भी अंधकार गहराता चला जाता है, व्यक्ति के समक्ष 'गरम दूध न पीने का न उगलने का' वाली मुसीबत आकर खड़ी हो जाती है। कभी-कभी उसका जीवन उसे उस मोड़ पर लाकर खड़ा कर देता है कि न आगे जाने की गुंजाइश होती है और न पीछे लौटने की। आगे कुआँ पीछे खाई वाली कहावत चरितार्थ हो जाती है। उसके समस्त प्रयास मकड़जाल से निकलने जैसे होकर रह जाते हैं।

सभी प्रकार की विवशताएँ मनुष्य के सामने चुनौतियों के रूप में होती हैं, जो उसकी क्षमताओं को ललकारती हैं। कुछ का तो वह अपने बल पर मुकाबला कर लेता है और कुछ से पराजित होकर छटपटाता रह जाता है। कभी-कभी विवशताएँ उसके अस्तित्व से इतनी बड़ी हो जाती हैं, जो उसे जीने लायक नहीं छोड़ती हैं।

यह तो सर्वविदित है कि इनसान की विवशताओं का प्रारंभ माँ की कोख से ही हो जाता है। वह गर्भ में पूर्णत: माँ पर आश्रित होता है, उसकी साँसें माँ की साँसों से संचालित रहती हैं, हर व्यवस्था ही माँ के शरीर से संपन्न होना सुनिश्चित है। जन्म के उपरांत भी एक लंबे अंतराल तक दूसरों पर ही आश्रित बना रहता है। प्रारंभ में लेटे रहना ही नियति रहती है, इस काल में वह रोने-चीखने के अतिरिक्त और कुछ करने में असमर्थ होता है। उसमें शारीरिक, मानसिक, संवेदनात्मक व बौद्धिक किसी प्रकार की सामर्थ्य नहीं होती, जो स्वत: अपना कुछ कर सके। यह सिलसिला काफी समय तक रहता है।

यह मानते हैं कि उम्र के बढ़ने के साथ शिशु में शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक संवेदनात्मक विकास होने लगते हैं। उसमें सभी प्रकार की क्षमताएँ भी विकसित हो जाती हैं और वह आत्मनिर्भर भी होने लगता है। किंतु उसकी विवशताओं का अंत तो उसके जीवन काल में कभी नहीं होता। विभिन्न प्रकार की विवशताएँ उसे नागिन की तरह डँसती रहती हैं। कुछ विवशताओं के दंश तो आजीवन सहचर बनकर पीड़ित करते रहते हैं।

व्यक्ति के जीवन में अकसर ऐसी प्रतिकूलताएँ आती हैं। उनके साथ वह सहज नहीं हो पाता और उनको वह बेड़ियों के रूप में देखता है, जो उसे घुटन भरे जीवन का अहसास कराती हैं। सच तो यह है कि

जाने-माने कवि-लेखक। 'संकेत संभावनाओं के', 'हम ढलानों पर खड़े हैं' (काव्य-संग्रह), 'चेहरे पर चेहरा' (निबंध-संग्रह) तथा पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी मथुरा से रचनाएँ प्रसारित। देश के जाने-माने साहित्यकारों के साक्षात्कार लिये। संप्रति प्रधानाचार्य पद से सेवानिवृत्त होकर साहित्य-साधना में रत।

हर घटना समूचे ब्रह्मांड की नियोजित व्यवस्था का एक हिस्सा होती है। घटना का अनुकूल या प्रतिकूल होना उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। दृष्टिकोण परिवेश के द्वार अर्जित ज्ञान एवं संस्कारों के अनुसार निर्मित होता है। हर घटना व्यक्ति के दृष्टिकोण को प्रभावित करती है और जब उस घटना की प्रतिक्रिया प्रतिकूल होती है या घटना विपरीत होने का अहसास कराती हैं, तब व्यक्ति उससे टकराने का प्रयास करता है। जब उसकी सामर्थ्य लड़ने से मुकर जाती है, तब वह अपने को असहाय और विवश पाता है।

इस संसार में अपने हिसाब से चल पाना संभव नहीं हो पाता। व्यक्ति के समक्ष सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, पारिवारिक तथा कानूनों की निर्धारित सीमाएँ होती हैं। जिनको लाँघना हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं हो पाता। यही असमर्थता व्यक्ति की विवशता होती है, व्यक्ति की अपनी कुछ विशिष्ट इच्छाएँ हो सकती हैं। यदि वे किसी रूप में भी अवांछनीय हैं तो उनकी आपूर्ति की आजादी न समाज द्वारा स्वीकृत की जा सकती है और न उस देश के कानून द्वारा।

व्यक्ति धन के अभाव में अनेक विवशताओं के साथ जूझता है। आर्थिक संकट हर प्रकार से विकास को बाधित करता है। जहाँ पैसे का खेल चलता हो, वहाँ 'नंगी निहाय निचोरै क्या' की स्थिति वाला व्यक्ति क्या करेगा? बस वह खिसियाया सा हाथ मलता रह जाएगा। जहाँ दो जून की रोटी की समुचित व्यवस्था न हो, वहाँ और कौन सी सुविधाओं की कल्पना की जा सकती है। इनसान के हृदय में परिवार के साथ बहुत कुछ करने के अरमान होते हैं और जब वह अपने बच्चों को अच्छी परवरिश, उत्तम शिक्षा, हर प्रकार की खुशियाँ और न जाने क्या-क्या देने की हसरतें पालकर रात-दिन अथक परिश्रम करके भी पर्याप्त धन न होने के कारण

अपने को असफल पाता है, तब वह टूट जाता है। अधिकतर परिवारों में अस्सी प्रतिशत कलह के कारण आर्थिक स्थिति के कमजोर होने से होते हैं। आर्थिक तंगी के कारण व्यक्ति के अनेक सपने टूट-टूटकर बिखर जाते हैं और उसके मचलते अरमान उसके सीने में ही सदा-सदा के लिए दफन हो जाते हैं। संसार में जितने भी शोषण या उत्पीड़न प्रचलित हैं, उनका शिकार धन से पीड़ित इनसान ही होता है। भर्त्सना या अपमान की मार झेलने वाला और कोई नहीं, बस गरीब ही है। निर्धनता उसके लिए सबसे बड़ा अभिशाप होती है। विवशताएँ उसके भाग्य-पटल पर लिखी होती हैं। 'कंगाली में आटा गीला होना' उसकी रोजमर्रा की कहानी रहती है। चोट पर चोट से उसका घर दयनीय दशा में चलता है। गरीब के लिए मूक बनकर सबकुछ सहना विवशता है। वह धन की विपन्नता में, समुचित चिकित्सा के अभाव में अपने प्रियजन को दम तोड़ते देखकर भी मूक दर्शक बनने को विवश हो जाता है। धन के वैभव के आगे निर्धन की उच्च योग्यता भी घुटने टेकने को विवश हो जाती है।

धन की लाचारी में लड़के के घरवालों के दहेज की माँग को पूरा करने में पसीने छूट जाते हैं। जब लड़की के पक्षवाले हजार प्रयत्न करने पर भी वर पक्ष की माँग पूरी नहीं कर पाते तो तय संबंध विच्छेद होकर कन्या पक्ष की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। यदि किसी दबाव में विवाह संपन्न हो भी जाए तो ससुराल में लड़की को इतना प्रताड़ित किया जाता है कि वह घर से भागने या मरने को विवश हो जाती है या उसे मार दिया जाता है। गरीब लड़की के माता-पिता हर हाल में धनाभाव में लड़की को कष्ट झेलते देखने को विवश होते हैं।

रिश्वत के युग में निर्धनों को धनाभव में कदम-कदम पर विवशताओं का सामना करना पड़ता है, कभी उन्हें कार्यालयों में, कभी सुयोग्य पात्र होने पर भी नौकरी के लिए नियुक्ति-प्रक्रिया में। गरीबों को घरेलू अनिवार्य कार्यों के लिए ब्याज की उच्च दरों पर ऋण लेने को बाध्य होना पड़ता है और उनको आय के सीमित साधनों पर ब्याज सहित मूल का चुकाना असंभव रहता है। यहाँ तक कि ऋण चुकाते-चुकाते उनकी कई पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं किंतु ऋण से पीछा नहीं छूटता। धन की कंगाली मानसिक एवं शारीरिक रोगों की जड़ होती है। धनाभाव की विवशता अच्छे-अच्छों से अपराध करा लेती है। पेट की भूख बड़ी बुरी होती है। एक व्यक्ति न तो अपनी भूख लंबे समय तक सहन कर सकता है और न संतान की। मान-मर्यादा, सम्मान, पुण्य की भावनाएँ आवश्यकताओं के आगे निष्प्रभावी होकर मौन हो जाती हैं।

यह निर्विवाद है कि बुरे का परिणाम भी बुरा होता है किंतु जब कोई दायित्वों के बोझ और अभावों की मार से पीड़ित होता है और समाधान की संभावनाओं के सभी द्वार बंद दिखाई देते हैं, तब उसके लिए तीन ही विकल्प समझ में आसानी से आते हैं, अनुचित कार्य, आत्महत्या या मानसिक तनावों में घुट-घुटकर घुलते रहना। चुनाव उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। प्राय: अभावों से ग्रसित जन विवशताओं के साथ सोते हैं और विवशताओं के साथ जागते हैं। विवशताओं के साथ जीना उनकी अनिवार्य विवशता है। सही अर्थ में अभाव विवशता का पर्याय है, उसे झेलना गरीब की नियति। व्यक्ति के साथ कुछ इस प्रकार की विवशताएँ भी जुड़ जाती हैं, जिनको नितांत वैयक्तिक होने के कारण अधरों तक लाने का साहस संभव नहीं हो पाता।

पीड़ित को यथार्थ के प्रकट करने से जीवन में भूचाल आने का भय ही हृदय ही धड़कनों को तेज कर देता है। यथार्थ को छिपाए रखने की विवशता एक पल को घुटन भरी पीड़ा से विमुक्त नहीं होने देती। इस संदर्भ में कुंती-कर्ण की कथा बड़ी प्रासंगिक है; कुंती ने कर्ण को अविवाहित अवस्था में जन्म देकर लोक-लाज से भयभीत होकर उसी समय अपने से दूर कर दिया। एक माँ की विवशता तो देखिए, वह बालक बड़ा होकर उसकी आँखों के सामने रहा किंतु एक भय ने कभी उसे पुत्र न कहने दिया। महाभारत के युद्ध में कर्ण पांडवों के विपक्ष में थे और पांडवों के खून के प्यासे भी। ऐसी विषम परिस्थिति में कुंती को एकांत में कर्ण के समक्ष वर्षों से आच्छादित राज से परदा हटाने को विवश होना पड़ा। अभागे कर्ण का दुर्भाग्य! रहस्य जानकर भी वह अर्जुन को परास्त करके वध करने को बाध्य बना रहा। क्योंकि ऐसा करने को वह वचनबद्ध था।

संसार में जितने भी शोषण या उत्पीड़न प्रचलित हैं, उनका शिकार धन से पीड़ित इनसान ही होता है। भर्त्सना या अपमान की मार झेलने वाला और कोई नहीं, बस गरीब ही है। निर्धनता उसके लिए सबसे बड़ा अभिशाप होती है। विवशताएँ उसके भाग्य-पटल पर लिखी होती हैं। 'कंगाली में आटा गीला होना' उसकी रोजमर्रा की कहानी रहती है। चोट पर चोट से उसका घर दयनीय दशा में चलता है। गरीब के लिए मूक बनकर सबकुछ सहना विवशता है। वह धन की विपन्नता में, समुचित चिकित्सा के अभाव में अपने प्रियजन को दम तोड़ते देखकर भी मूक दर्शक बनने को विवश हो जाता है।

भीष्म की वचनबद्धता उनके जीवन की सबसे भयंकर विवशता रही। हस्तिनापुर के सिंहासन की सुरक्षा के उत्तरदायित्व ने उनको ऐसे संकट से बाँधकर रखा कि वह पांडवों के विरुद्ध कौरवों के अधर्म के साथ लड़े। कौरवों के साथ रहकर युद्ध करने की विवशता ने उनको कौरवों के अधर्म के कृत्यों पर भी मौन रहकर अपनी आत्मा की चीत्कारों को सहना पड़ा। कौरवों के दुराचरण का विष गले उतारना उनकी विवशता थी। भीष्म कर्तव्य और भावना के अंतर्द्वंद्व की व्यथा-कथा हैं। वह विवशताओं का एक जीवंत पुंज हैं।

पन्ना धाय ने भी ऐसी विवशता को जिया, जिसका उदाहरण विश्वभर के इतिहास में कहीं और देखने को नहीं मिलता। वह ऐसी विवशता की शिकार हुई कि अपनी कोख से जनमे पुत्र को राजकुल के चिराग को जलाए रखने के लिए मौत के हवाले कर दिया। यह बलिदान उसकी नैतिक विवशता थी। एक विषम परिस्थितिजन्य विवशता ने दशरथ को भी नहीं बख्शा। वचनबद्धता और पुत्र-मोह की कशमकश की विवशता ने

राजा को मृत्यु के मुख में धकेल दिया। विलियम शेक्सपीयर ने अंग्रेजी भाषा में लिखित 'Antony and Cleopatra' ड्रामा में विवशताओं की गहन पीड़ा को उभारा है। ओक्टाविया इस ड्रामा की एक ऐसी अभागिन पात्र है, जो ओक्टावियस सीजर की बहिन और एंटोनी की पत्नी है। उसका अपने भाई सीजर और एंटोनी (पति) दोनों से ही अगाध प्रेम है। सीजर और एंटोनी दोनों ही रोम एंपायर पर शासन करते हैं; दोनों अच्छे मित्र रहे हैं। गहरे मतभेद के कारण दोनों ही एक-दूसरे को शत्रु के रूप में देखते हैं और एक-दूसरे को मिटाना चाहते हैं। ओक्टाविया इससे व्यथित होकर अपने पति को शत्रुता समाप्त करने का आग्रह करती है किंतु विफल हो जाती है। उसकी विवशता की पीड़ा इस प्रकार मुखर हो उठती है—A more unhappy lady, If this division chance, Never stood between, Praying for both parts. The good gods will Mock me presently when I shall pray "o, bless my lord and husband" undo that prayer by crying out as loud "o, bless my brother" Husband win, win brother prays and destroys the prayer, No Midway twist these excremes at all. (अगर ये वर्तमान मतभेद आपके और मेरे भाई के मध्य युद्ध की ओर अग्रसर होते हैं, तब मेरी अपेक्षा कोई भी महिला मुझसे अधिक अप्रसन्न नहीं हो सकती है, जैसे कि दो जवरोधी पक्षों की भलाई के लिए प्रार्थना कर रही हूँ। देवता भी मेरी प्रार्थना पर हँसेंगे। अगर मैं उनसे अपने स्वामी और पति को आशीर्वाद देने की प्रार्थना करूँ और उसके शीघ्र ही बाद अपने भाई को आशीर्वाद देने की प्रार्थना करूँ। अपने पति की विजय के लिए प्रार्थना करूँ और पुन: अपने भाई के लिए, यह एक उत्कृष्ट प्रार्थना होगी और बाद में इसको निरस्त कर दिया जाएगा। मेरे लिए इन दो उग्रताओं के मध्य कोई बीच का रास्ता नहीं है।) यही बात अपने भाई की हठधार्मिता और गलत नीयत देखकर उसके समक्ष कहती है।

As me, most wretched, that my heart betwixt two friends that does affect each other.

(मैं पृथ्वी पर अत्यधिक दुखी महिला हूँ, मेरा प्रेम दो मित्रों में विभाजित हो गया है, जो एक-दूसरे को हानि पहुँचाने के लिए आमादा हैं।)

जब उसकी मन-स्थिति इस प्रकार की होती है कि वह एक विचित्र दुविधा में फँस जाता है, एक ओर वह अपना जीवन अपनी अभिरुचियों के अनुसार जीना चाहता है; दूसरी तरफ अन्य स्वजनों की अपेक्षाएँ। जब उसकी अभिरुचियों और स्वजनों के मध्य विरोध चरम तक पहुँचता है, तब उसके समक्ष 'हँस लो या गला फुला लो' वाली स्थिति होती है। वह आखिर किसे वरीयता दे, यह असमंजस की दशा न उसे जीने लायक छोड़ती है और न मरने लायक। बस वह एक निरीह प्राणी, केवल दया का पात्र बनकर रह जाता है।

व्यक्ति की कितनी निरुपाय विवशता होती है कि वह अपने अतीत से कभी पीछा नहीं छुड़ा पाता। यह जानते हुए भी कि वर्तमान में अतीत के साथ रहने का कोई औचित्य नहीं बनता, उसकी कोई सार्थकता भी नहीं, फिर भी अतीत की स्मृतियों की चपेट से व्यक्ति बच नहीं पाता। बीता समय लौटाया नहीं जा सकता और अतीत की स्मृतियों से हजार प्रयासों से भी अपने को बचा पाना असंभव रहता है। अनेक गीतकारों ने अतीत के प्रहारों को गाया है। हसरत जयपुरी का रेखांकित गीत इस परिप्रेक्ष्य में कितना सटीक एवं प्रासंगिक है—

जाने कहाँ गए वो दिन
कहते थे तेरी राह में
नजरों को हम बिछाएँगे
चाहे कहीं भी तुम रहो
चाहेंगे तुमको उम्र भर
तुमको न भूल पाएँगे।
तेरे कदम जहाँ पड़े
सजदे किए थे यार ने
मुझको रुला रुला दिया
जाती बहार ने।

'जिन्हें हम भूलना चाहें, वे अकसर याद आते हैं,' 'मुझे तुझसे कुछ न चाहिए, मुझे मेरे हाल पे छोड़ दे' ऐसे अनेक गीत हैं, जो अतीत की स्मृतियों से मर्माहत होने का संदेश देते हैं। और उनसे पीछा छुड़ाने की विवशता बयाँ करते हैं। समाज के अत्याचार और अन्याय इनसान को इस हद तक विवश कर देते हैं कि वह समाज के प्रति विद्रोह-भावना से भर जाता है, जब उसे देश के कानून से सुरक्षा एवं न्याय मिलने का भारोसा उठ जाता है, तब वह प्रतिशोध-भावना में बंदूक उठा लेता है। दस्यु-जगत् का इतिहास साक्षी है कि अधिकतर दस्युओं को समाज के जुल्मों ने डाकू बनने को विवश किया था।

संसार की कोई नारी ऐसी नहीं हो सकती, जो माँ बनने की आकांक्षा न रखती हो और शिशु को जन्म देकर समाज का हिस्सा न बनाना चाहती हो। कोई तो विवशता होती होगी, जो कुछ महिलाओं को गर्भपात के लिए राजी होना पड़ता है। यहाँ तक कि सरकार के गर्भपात रोकने के लिए लिंग-परीक्षण पर प्रतिबंध लगा रखा है। समय ऐसा भी रहा है कि अधिकतर परिवारों में कन्याओं को पैदा करना पसंद नहीं करते थे। इसके अनेक कारण हो सकते हैं किंतु प्रमुख कारणों में दहेज की व्यवस्था का भय, दूसरा पुत्र पाने की अनभिज्ञतापूर्ण घटिया सोच। किंतु अब कुछ परिवारों में जागरूकता आ रही है और बालिकाओं के प्रति दृष्टिकोण बदला है। पुत्र-पुत्री को समान रूप में देखना प्रारंभ कर दिया है। भारतीय संस्कृति के आदर्शों एवं संस्कारों को भुलाकर, पाश्चात्य सभ्यता में रँगकर नादान युवतियाँ प्रेम-धारा में बहती हुई सभी हदों को पार करके अपनी कोख में कलंक को स्थान दे बैठती हैं। संभावित अनेक प्रकार के भय उनको गर्भपात के लिए विवश कर देते हैं। एक माँ की ममता गर्भपात को रोक नहीं पाती।

आनंद सभी प्रकार के रागात्मक बंधनों से मुक्त होने की अवस्था

है, किंतु दुर्भाग्यवश इनसान सदैव ही आनंद से वंचित रहता है। मन के साथ असीमित शक्तियाँ हैं और मन इनसान को मालिक बनकर रहता है। मन के साथ अहं भाव होता है, जो संसार का सर्वस्व बटोरकर बड़ा बनकर रहना चाहता है। यदि सर्वस्व मिल भी जाए तो भी खाली-खाली का अहसास लेकर व्यक्ति को 'और' के लिए दौड़ाता रहता है, दूसरे शब्दों में आधिपत्य की प्रबल लालसा व्यक्ति को बंधनमुक्त नहीं होने देती।

अहं भाव के क्रोध, लोभ, मोह, काम, ईर्ष्या आदि मनोविकार सहचर बनकर व्यक्ति को फँसाए रखते हैं। यही कारण है कि इनके रहते व्यक्ति को दो पल का आराम नहीं, वह तो किसी पल सुकूँ की साँस नहीं ले पाता। बड़े-से-बड़े विवेकी अपने मनोविकारों से परास्त होते हैं। काम-भावना के आगे विश्वामित्र व नारद जैसे ऋषि तक टिक न सके, आम आदमी की औकात ही क्या। दुर्वासा ऋषि तो क्रोध का पर्याय कहे जा सकते हैं। व्यक्ति की विवशता है कि सांसारिक मोहपाश एवं मनो-विकारों से आसानी से विमुक्त होकर आनंदित नहीं हो सकता। यह अलग बात है कि कोई कुछ क्षण के लिए ऐंद्रिक सुख का आनंदाभास कर ले किंतु सुख के साथ संयुक्त दु:ख भी अपना काम देर-सबेर प्रारंभ अवश्य करता है।

मानव के जीवन में अकसर ऐसे भी पल आते हैं कि प्रिय से प्रिय भी इस संसार को छोड़कर एक अज्ञात लोक के लिए प्रस्थान करता है और हम इतने विवश होते हैं कि कुछ नहीं कर पाते और कोई भी सहयोग नहीं दे पाता। कोई सोर्स, शक्ति साधन उस समय सार्थक नहीं होता। जानेवाला चला जाता है और हम रोते-बिलखते, देखते रह जाते हैं। जानेवाला भी जाने को विवश होता है, उसकी भी एक नहीं चलती। मिलने के बाद बिछुड़ने की विवशता को झेलना ही पड़ता है। व्यक्ति के लिए विवशताएँ पीड़ादायक होती हैं, किंतु वह अपना दृष्टिकोण या सोच परिवर्तित करके पीड़ाओं को निष्क्रिय कर सकता है। एक उत्तम समझ उसकी पीड़ाओं की कथा का समापन करने में कारगर हो सकती है। यदि व्यक्ति घटित स्थिति को नियति की इच्छा एवं जीवन को एक खेल का हिस्सा स्वीकार कर ले तथा अपने नैतिक दायित्वों के प्रति सहृदय तत्पर बना रहे तो कोई विवशता मानव को आहत नहीं कर पाएगी। उसका हर साहसिक प्रयास उसे आनंदित करेगा, उसकी सोच व उसके हर निर्णय का यशोगान होता रहेगा जैसा कि पन्ना धाय का।

२११/१, आवास विकास कॉलोनी,
कासगंज-२०७१२३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७०१७७३०६१८

अवधारणा

लघुकथा

● भगवान वैद्य 'प्रखर'

सुबह की ड्यूटी थी। मुँह पर मॉस्क लगाए सलीला कोठी के गेट पर पहुँच गई। सेक्योरिटी गार्ड ने माथे के सामने थर्मो मीटर-गन पकड़कर तापमान जाँचा। कुछ आशंकित हुआ। दोबारा गन माथे के सामने पकड़ी।

"सलीला तुम जरा वहाँ···बाजू में खड़ी हो जाओ, मैं तुम से फिर बात करता हूँ।" सेक्योरिटी गार्ड बोला।

सलीला के बाद आकर पंक्ति में खड़े दो कर्मचारियों की जाँच के बाद सेक्योरिटी गार्ड ने इशारे से सलीला को बुलाकर कहा, "सलीला, तुम्हें बुखार है। तुम जाकर अपनी कोरोना जाँच करा लो। सर्टिफिकेट लेकर आना, तब ड्यूटी पर अलाऊ किया जाएगा।"

सलीला की तो जैसे साँस फूल गई। बोली, "भैयाजी, शनिवार-रविवार छुट्टी थी। आगे त्योहार आ रहे हैं, यह सोचकर घर में पुताई का काम कर लिया। बड़ी मेहनत का काम था। देर रात तक करती रही। उसी से जरा हरारत है। कोई बीमारी-विमारी नहीं है। आप मुझे काम पर जाने दें···मेहरबानी होगी।"

''नहीं सलीला, ऐसा नहीं चलता। सर्टिफिकेट तो लाना ही पड़ेगा।''

''वह तुरंत तो मिलेगा नहीं। मेरी आज की रोजी··· ?''

''आज की ही नहीं, कल की भी जा सकती है। प्राइवेट में चली जाओ। आज रात तक सर्टिफिकेट मिल जाएगा।''

''वहाँ तो बहुत पैसा लग जाएगा, भैयाजी!''

"तो क्या···दे देना।'' कहकर सेक्योरिटी गार्ड फिर अगले कर्मचारी का तापमान जाँचने लगा।

सलीला को जैसे साँप सूँघ गया था। वह रेलिंग थामकर खड़ी हो गई।

फुरसत पाकर सेक्योरिटी गार्ड ने कहा, ''क्या हो गया···जाओ न प्राइवेट में। थोड़े अधिक पैसे देने पर तुरंत भी मिल जाएगा सर्टिफिकेट। ···बारह बजे तक भी आ जाओ तो मैं हाजिरी लगा दूँगा। आज की रोजी बच जाएगी।'' कहते हुए सेक्योरिटी गार्ड सलीला को घूरने लगा।

''आप मेरी साड़ी पर न जाओ भैयाजी, यह इस कोठी से ही मिली हुई है। माँ जी ने दी थी, दीवाली पर···।''

सलीला ने कहा और मुँह पर बंधा मॉस्क सँवारते हुए कोठी की सीढ़ियाँ उतरकर 'शासकीय कोरोना जाँच-सेंटर' की दिशा में आगे बढ़ गई।

३०, गुरुछाया कॉलोनी,
साईंनगर, अमरावती-४४४६०७ (महा.)
दूरभाष : ९४२२८५६७६७
vaidyabhagwan23@gmail.com

इस रिश्ते को क्या नाम दूँ?

• विपिन पवार

उस समय मैं छठवीं कक्षा में था, जब जुलाई माह की भीषण बारिश में नए मास्साब हमारे रेलवे स्कूल में आए। हिंदी प्रदेशों में मास्टर साहब को अपनी सुविधानुसार मास्साब कर लिया गया है। जब मुझे पता चला कि नए मास्साब हिंदी पढ़ाएँगे, तो मैं खुशी से उछल पड़ा, क्योंकि हिंदी मेरा प्रिय विषय था। बाल कविताएँ एवं बाल कहानियाँ लिखना मैंने पाँचवीं कक्षा से ही प्रारंभ कर दिया था। नए मास्साब जुलाई के अंत में आए थे, तब तक छठवीं की हिंदी एक ऐसे मास्साब को दी गई थी, जो न तो हिंदी में बी.ए. थे और न ही उनकी हिंदी पढ़ाने में कोई रुचि थी। उनकी रुचि तो छात्र-छात्राओं को मुर्गा बनाने एवं उन्हें कूटने में अधिक थी। मुझे उस समय और भी अधिक खुशी हुई, जब यह पता चला कि नए मास्साब को छठवीं कक्षा का क्लास टीचर बनाया गया है। किशोरावस्था मनुष्य के जीवन का वसंत कहलाती है। मेरे जीवन में वसंत का आगमन बस हुआ ही था। वसंत का प्रथम साक्षात्कार होने पर किशोर मन सबके प्रति स्नेह से भर जाता है, बारिश की बूँदों के प्रति, घास के जंगली फूलों के प्रति, उफनते नदी-नालों के प्रति, शायद इसलिए उस आयु में मेरे मन में उस अनदेखे एवं अनजाने व्यक्तित्व के प्रति स्नेह के भाव प्रस्फुटित हो चुके थे। मैं बड़ी बेसब्री से कक्षा में उनके आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

सोमवार को पहला पीरियड था—हिंदी का। चतुर्भुज जाटव मास्साब ने कक्षा में प्रवेश किया। कद पाँच फुट से कुछ इंच ही ज्यादा, सिर पर बाल कम, रंग गोरा, साफ धुले हुए तथा लोहा किए हुए कपड़े, चमचमाते काले जूते, हाथ में कक्षा की उपस्थिति पंजिका। उनके व्यक्तित्व में कुल मिलाकर अधिक प्रभावित करने वाली कोई बात नहीं थी। लेकिन चालीस-पैंतालीस मिनट के उस हिंदी के पीरियड के बाद पूरी कक्षा उनकी दीवानी बन चुकी थी।

"माई सेल्फ सी.बी. जाटव, हिंदी का अध्यापक हूँ, आपका क्लास टीचर। मेरा परिचय आपको मिलता रहेगा, मैं चाहता हूँ कि आप लोग पहले मुझे अपना परिचय दें।"

यह था जाटव मास्साब से मेरा पहला परिचय। खंडवा जैसे छोटे से कस्बे का रेलवे स्कूल, सारे बच्चे रेलवे वालों के, अभिभावक रेलवे में छोटे-मोटे पदों पर काम करने वाले। कुछ बच्चे आसपास के गाँवों से भी आते थे, जहाँ शिक्षा की कोई सुविधा नहीं थी। हम सबका अंग्रेजी से कोई लेना-देना नहीं था। यह वह जमाना था, जब मध्य प्रदेश में छठवीं कक्षा से एबीसीडी की शुरुआत होती थी। मैं पहली पंक्ति में बीच में बैठता था। आधे हिस्से में लड़कियाँ, आधे हिस्से में लड़के। लड़कियों की तरफ से परिचय की शुरुआत हुई—

'मास्साब, मेरा नाम, सरिता कुशवाहा'

'मास्साब, मेरा नाम, परवीन अंसारी'

'मास्साब, मेरा नाम, शांति कुदेसिया'

'मास्साब, मेरा नाम, मीरा दुसाने'

फिर लड़कों का नंबर आया—

'मास्साब, मेरा नाम, दिनेश सिंह ठाकुर'

मैं अपनी जगह से उठकर खड़ा ही होने वाला था कि मास्साब ने हाथ के इशारे से मुझे रोक दिया—

'न···न···न···बात कुछ जमी नहीं। परिचय देने के अनेक तरीके होते हैं। अब तुम कुछ दूसरे तरीके से अपना परिचय दो।'

मास्साब ने मुझे खड़े होने का इशारा करते हुए कहा।

'मुझे विनोद मसीह कहते हैं।' मैंने अपना परिचय कुछ दूसरी तरह से दिया, जैसा वे चाहते थे। जाटव मास्साब के चेहरे पर चमक आ गई। उन्होंने कहा, 'शाब्बास, यह हुई न कुछ बात।'

मेरे बाद रचनात्मकता का एक सिलसिला शुरू हुआ। शकील ने कहा था, 'मुझे शकील के नाम से जाना जाता है।'

स्वरूप सिंह ने कहा था, 'रेलवे कॉलोनी के अखाड़े में स्वरूप सिंह पहलवान को कोई नहीं हरा सकता और वह स्वरूप सिंह मैं हूँ।'

देर तक तालियाँ तब बजी, जब सबने सुना, 'हुजूर, शाहीन बानू आप की खिदमत में आदाब बजा लाती है।'

सुपरिचित लेखक। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में दर्जनों लेख, कविताएँ, कहानियाँ, रिपोर्ताज, यात्रा-वृत्तांत एवं साक्षात्कार प्रकाशित। आकाशवाणी भोपाल, इंदौर एवं नागपुर से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति उप महाप्रबंधक (राजभाषा), मध्य रेल, मुंबई। हिंदी अकादमी, मुंबई का प्रतिष्ठित वरिष्ठ हिंदी सेवी सम्मान।

कक्षा छह की उम्र बचपन एवं किशोरावस्था की दहलीज पर खड़ी वह उर्वर अवस्था है, जिसमें यदि सही खाद एवं पानी मिले, तो पौधा पंद्रह साल में आयु में महँगे एवं रसीले आमों से लदा वृक्ष बन जाता है। अनुकरण की तीव्र ललक, सृजनात्मकता की चाह और रचनात्मकता की खोज, मन कल्पना के पंख लगाकर ऊँचे आसमान में उड़ने लगता है। जाटव मास्साब का एक वाक्य—'परिचय देने के अनेक तरीके होते हैं।' हम सब में एक नई चेतना जगा गया।

जाटव मास्साब के पढ़ाने का तरीका कुछ अलग हटकर था। जैसे सुभद्रा कुमारी चौहान की सुप्रसिद्ध कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' पढ़ानी है, तो दो-तीन पीरियडों में तो न उनके हाथ में कोई पुस्तक है और न ही हमें अपने बस्ते में से बालभारती निकालने की इजाजत है। वे धाराप्रवाह रूप से सुभद्रा कुमारी चौहान एवं झाँसी की रानी के बारे में कहानी की शैली में हमें बताते जा रहे हैं और हम सब चुपचाप सुन रहे हैं, कोई शोर नहीं, कोई हलचल नहीं, बस मंत्रमुग्ध ठगे हुए से। घंटी के रूप में रेल की पटरी के एक टुकड़े को बड़ी बहनजी के कमरे के सामने तार से लटका दिया गया था, जब उस पर वैगन की टूटी कपलिंग के हत्थे से चपरासी नानाजी जोर से प्रहार करता, तब कहीं जाकर हमारा ध्यान भंग होता। एक पीरियड में प्रश्नोत्तरों की तैयारी करा दी जाती। कविता सबको रटा दी जाती। नींद में से उठाकर भी किसी को कहीं से भी कुछ भी पूछ लो, वह बता देगा। पता नहीं यह सब उन्होंने कहाँ से सीखा था, क्योंकि बी.टी.सी. या बी.एड. तो सभी शिक्षक करते हैं, लेकिन कितने होते हैं, जो इस तरह पढ़ा पाते हैं। बिना डाँट डपट किए, मारना तो बहुत दूर की बात हो गई, कक्षा में कठोर अनुशासन बनाए रखने का राज बच्चों के मनोविज्ञान में छिपा हुआ था। यह बात हमें बरसों बाद तब समझ में आई, जब उन्होंने स्वयं इस रहस्य से पर्दा उठाया। भरी कक्षा में वे जोर से बस इतना ही कहते थे—

"भैया, हम सब देख रहे हैं।"

"क्या हो रहा है उधर, हमें सब पता है।"

"कौन सी लड़की खुसुर-पुसुर की शुरुआत करती है, हमें पता है।"

किसे कहा जा रहा है। किसी को पता नहीं चलता था। सबको लगता था कि कहीं उसे तो नहीं कहा जा रहा है। सब सतर्क एवं अनुशासित हो जाया करते थे। और वाकई में कहा किसी को भी नहीं जाता था।

"क्या नजर है यार इस मास्साब की!" बस ग्यारहवीं तक हम यही सोचते रहे। बाद में पता चला कि यह सब उन्होंने जीवन की पाठशाला में पढ़ा था।

एक कक्षा से दूसरी कक्षा के सफर में बीच में गरमी की छुट्टियाँ पड़ती थीं। इस पड़ाव में बहुत से साथी पीछे छूट जाते थे। रेलवे में होने के कारण कई लोग तबादले पर चले जाते थे। गाँव के लड़के फेल होने पर पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते थे। जिन लड़कियों की बचपन में ही शादी हो चुकी थी, उनका गौना हो जाता था, लिहाजा अगली जुलाई में पता चलता था कि सफर में कुछ साथी पीछे छूट गए हैं।

समय मुट्ठी से रेत की तरह फिसलता रहा। हम नौवीं में पहुँच गए। धीरे-धीरे हमें जाटव मास्साब के बारे में बहुत सी बातें पता चल चुकी थीं। अब हम उन्हें 'जाटव सर' कहने लगे थे। पश्चिमी निमाड़ में स्थित एक छोटे से गाँव के स्कूल में पढ़ने वाले ग्यारह वर्षीय लड़के की शादी खंडवा में रेलवे के फाटकवाले की छह वर्षीय लड़की से हो जाती है। मैट्रिक की परीक्षा पास होते ही गौना हो जाता है और पंद्रह साल की दुलहन को लेकर लड़का खंडवा जाकर नीलकंठेश्वर महाविद्यालय में दाखिला ले लेता है और प्रारंभ हो जाता है, जीवन के अपरिमित संघर्षों का एक अंतहीन सिलसिला। पढ़ाई एवं आजीविका के खर्च के लिए जो भी काम मिलता, वह करता रहता था। रेलवे का वह फाटक उसके कॉलेज के नजदीक ही था, जिस पर उसके ससुरजी तैनात थे, लिहाजा वह उस फाटक की गुमटी में ही रहने लगा। सुविधा हो जाती थी। ससुरजी का खाना आता तो साथ में उसका भी खाना आ जाता था। फाटक घने जंगलों के बीच मथेला सिरे पर था। एक सुबह जब ड्यूटी समाप्त होने पर ससुरजी उसे उठाने आए तो देखा, उसके साथ कंबल की गरमी में घुसकर एक काला भुजंग नाग भी सो रहा है। वे बिना कोई आहट किए चुपचाप दूर जाकर खड़े हो गए। नाग कब निकल गया, उन्हें पता ही नहीं चला। बी.ए., बी.टी.सी. करने के बाद मास्साब की नौकरी खंडवा के रेलवे स्कूल में लग गई।

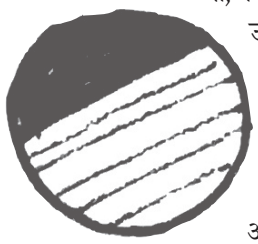

हमारे समय में रेलवे स्कूल में केवल आर्ट संकाय ही था, अर्थात् आठवीं के पश्चात संकाय चुनना होता था, जिन्हें साइंस या कॉमर्स लेना था, वे खंडवा के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में चले गए और अब रेलवे स्कूल की नौवीं में रह गए, केवल सात लड़के एवं छह लड़कियाँ। हमारी क्लास प्राइवेट ट्यूशन की तरह चला करती थी। और यह वह समय था, जब हम सब जाटव सर के निकट आते चले गए। हम सब लोग सर के घर पर मार्गदर्शन हेतु भी जाने लगे थे। मार्गदर्शन के साथ बिना पेट पूजा के कभी नहीं लौटे। खंडवा के कुम्हारबेड़ा मोहल्ले में एसबेस्टस की छत वाले कुल तीन कमरों के छोटे से मकान में जाटव सर अपने परिवार के साथ रहते थे। पत्नी और तीन बेटियाँ, राधा, गीता और मीता।

स्कूल में जाटव सर के साथ अन्य शिक्षकों का रवैया पक्षपातपूर्ण था। फिर वह कक्षाएँ एवं विषयों के आबंटन का मामला हो, पदोन्नति का मामला हो या फिर बच्चों के अनुशासन से जुड़ा कोई मसला हो। लेकिन फिरंगियों के स्कूल की पढ़ी-लिखी हमारी बड़ी बहनजी हेडमिस्ट्रेस मिस रिबेका एडवर्ड स्कॉट के सामने किसी की कुछ नहीं चलती थी। वे सख्त अनुशासन बनाए रखती थीं—बच्चों के बीच भी और शिक्षकों के बीच भी। जब जाटव सर की पदोन्नति होनी थी तो हम ग्यारहवीं मैट्रिक में थे। उनके खिलाफ एक षड्यंत्र रचकर हिंदी के मास्टर को मैट्रिक की अंग्रेजी दे दी गई। सब जानते थे कि अंग्रेजी वे पढ़ा नहीं पाएँगे। सर बड़े परेशान हुए,

लेकिन हार नहीं मानी। हमारे साथ वे भी विद्यार्थी बन गए। यह एक अनूठा अनुभव था, प्रयोग था। उस साल अंग्रेजी में कोई भी फेल नहीं हुआ, जबकि कुछ तो मातृभाषा हिंदी में फेल हो गए थे। मेरे तो अंग्रेजी में शत-प्रतिशत नंबर आए थे। सेवा में रहते-रहते अब तक सर तीन-चार विषयों में एम.ए. कर चुके थे। मैट्रिक के बाद मैंने नीलकंठेश्वर महाविद्यालय में बी.ए. में प्रवेश ले लिया। अब जाटव सर के यहाँ आना-जाना बढ़ गया। सर साहित्यिक प्रतिभा के धनी थे। शहर की कवि-गोष्ठियों में उनकी उपस्थिति अनिवार्य थी। वैसे शालेय जीवन से ही उन्होंने मेरे अंदर के साहित्यकार को पहचान लिया था तथा वे लगातार उसे प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते रहते थे।

धीरे-धीरे सर के व्यवहार में परिवर्तन आने लगा, अब उनसे बात करते समय मुझे ऐसा नहीं लगता था कि मैं अपने शिक्षक से बात कर रहा हूँ। कॉलेज की पढ़ाई के अलावा पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दों पर चर्चा के दौरान उनके स्वर में मित्रता के भाव अधिक रहते थे। आखिर एक दिन राधा दीदी ने कह ही दिया कि अब वे तुम्हारे शिक्षक नहीं रहे, क्योंकि तुम हमारे भाई हो। राधा दीदी मुझसे दो वर्ष बड़ी थीं। जब तक मेरी पढ़ाई चलती रही, तब तक मैं खंडवा में रहा और जाटव सर के पितृत्व की छाया में पढ़ाई के अलावा पत्रकारिता भी करता रहा। एम.ए. करते ही मेरा चयन रेलवे में यातायात प्रशिक्षु के पद पर हो गया और मैं अपना पदभार ग्रहण करने इंदौर चला गया। उधर मेरे पिताजी भी रेल सेवा से निवृत्त होने के पश्चात् गृह नगर नागपुर में बस गए। इंदौर से खंडवा निकट होने के कारण मैं रविवार को खंडवा ही जाता था, जब लंबी छुट्टी होती थी, तो घर नागपुर जाना हो पाता था। जब मैं कुम्हारबेड़े में घर पहुँचता, तो सर की पत्नी श्रीमती जाटव, जिन्हें मैं मम्मी कहता था, मेरी सेवा में जुट जाया करती थीं। राधा दीदी की शादी हो चुकी थी। दोनों छोटी बहनें अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहतीं। मूली के पराँठे, गोभी का अचार, मूँग का हलवा, दाल बाटी पर मैं टूट पड़ता था। इंदौर में होटल का खाना खाते-खाते मैं ऊब जाता था। सामने के कमरे में मैं और सर, बीच का दरवाजा बंद हो जाता, अंदर मम्मी और छोटी बहनें अपने कामधाम, पढ़ाई आदि में व्यस्त हो जाती और हम अपनी चर्चाओं में। एक रात मैंने कहा, "सर, इंदौर से एक लघु पत्रिका निकलती है, विशुद्ध साहित्यिक एवं अव्यावसायिक, जिसमें आजकल मेरी लघुकथाएँ छप रही हैं, यह रहे उसके दोनों अंक—पावस एवं शरद।" मेरे स्वर में उत्साह था।

"देखो भैया," पहले वे मुझे विनोद कहा करते थे, लेकिन जब मैं अपनी नौकरी पर खंडवा से निकल गया, तो वे प्राय: मेरा नाम नहीं लेते थे।

"लघु पत्रिकाओं का कोई भविष्य नहीं होता है, वे अपने स्वरूप एवं कलेवर दोनों में ही लघु होती हैं, क्योंकि उनका आर्थिक पक्ष बहुत कमजोर होता है और किसी भी प्रकाशन के लिए अर्थ की जमीन का पुख्ता होना नितांत जरूरी है। तुम्हारी यात्रा लघुता से विराट् की ओर है, अपने पथ से विचलित मत होना।" सर जब गंभीर बातें करते थे, तो उनकी आँखें स्वयमेव बंद हो जाती थीं और वे गुरु गंभीर वाणी में बहुत धीरे-धीरे बोलते थे।

उन दिनों मैं क्षणिकाएँ एवं लघु कथाएँ ही लिखता था। अगली बार जब आया, तो मेरे साथ अपनी कुछ ताजा क्षणिकाएँ थीं। उन्होंने क्षणिकाओं की प्रशंसा की, लेकिन कहने लगे, "क्षणिकाओं की मारक शक्ति बड़ी जबरदस्त होती है। क्षणिका सीधे मर्म पर चोट करती हैं।"

सतसैया के दोहरे जो नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर॥

क्षणिका वर्षा की बूँदें हैं, जो सीप के आगोश में समाकर मोती बनती हैं, चातक की प्यास बुझाती हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम उदात्त भावों से भरी हुई कहानियाँ लिखो, समसामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक लेख लिखो।

जब मैं पैसेंजर से खंडवा स्टेशन पर उतरता, तो पहले लालाजी की जलेबी खरीदता, तब घर जाता। रात में कभी हम स्टेशन के सामने वाले हलवाई की दुकान पर दूध पीने चले जाते तो मास्साब कहते, "भैया, थोड़ा और देरी से आया करेंगे, ग्यारह-बारह बजे। दूध गाढ़ा मिलता है, एकदम बढ़िया।" सर की आवाज में युवाओं सा उत्साह होता।

"यार मास्साब, रात एक बजे आएँगे और दूध की बजाय पेड़े खाकर ही जाएँगे।" मैं मजाक करता। सर कब यार मास्साब में बदल गए, मुझे पता ही नहीं चला। जब हम दूध पीने नहीं जाते थे, तो प्रकाश टॉकीज में देर रात का शो देखने पहुँच जाते थे। पिक्चर कोई भी हो—बेताब, खूनी रात, शराबी या फिर जलती जवानी, हमें इससे कोई मतलब नहीं होता था, क्योंकि हम दुनिया जहान के उन सभी विषयों पर चर्चा करते थे, जिन पर दो युवा मित्र कर सकते हैं। कुछ वर्षों बाद इंदौर से प्रमोशन पर मेरा तबादला रतलाम हो गया। उस समय मोबाइल तो थे नहीं, फोन भी आम बात नहीं थी। हमारे बीच संपर्क का एक माध्यम रेलवे फोन था, लेकिन जब मैं फोन करूँ, तो मास्साब कक्षा में और जब वे फोन करें तो मैं दौरे पर। फोन पर कभी-कभी ही बात हो पाती थी। हाँ, पत्र-व्यवहार जरूर होता रहता था। उनके पत्र मेरी धरोहर हैं, जो आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं।

उन दिनों मैं अपनी बात को प्राय: बढ़ा-चढ़ाकर कहा करता था, शायद अपरिपक्वता थी एवं आयु की अल्हड़ता का तकाजा था। मैंने इंदौर छोड़ते समय उन्हें एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें कुछ बातें अतिरंजनापूर्ण थी। जो शायद उन्हें ठीक नहीं लगीं, लेकिन अपने जीवन काल में शायद ही उन्होंने किसी को पीड़ा पहुँचाई हो या चोट पहुँचाने का प्रयास किया हो। उन्होंने जवाब में सिर्फ इतना लिखा, "प्रिय भैया, तुम्हारा पत्र पढ़कर अच्छा लगा। भवानी दादा की प्रसिद्ध पंक्तियाँ भेज रहा हूँ। बाकी तुम खुद समझदार हो।"

कलम अपनी साध
और अपने मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध
यह कि तेरी भर न हो तो कह,
और बहते बने सादे ढंग से तो बह।
जिस तरह हम बोलते हैं उस तरह तू लिख,
और इसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख।
चीज ऐसी दे कि स्वाद सर चढ़ जाए
बीज ऐसा बो कि जिसकी बेल बन बढ़ जाए।
फल लगे ऐसे कि सुख रस, सार और समर्थ
प्राण-संचारी कि शोभा-भरन जिनका अर्थ।

उन्हें पता था कि मैं एम.ए. के बाद लब्ध प्रतिष्ठित कवि भवानी प्रसाद मिश्र पर पी.एच-डी. करने का मन बना चुका था और एक दिन हम दोनों भवानी दादा के जन्मस्थल टिगरिया, जिला होशंगाबाद (म.प्र.) भी हो आए थे। इस पत्र ने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया, जो आज तक मेरे काम आ रहा है।

रतलाम से प्रतिनियुक्ति पर मैं दिल्ली चला गया। सर से पत्राचार चलता रहा। सर साहित्य सेवा के अलावा सामाजिक गतिविधियों में भी सक्रियता से भाग लेते थे। समाज से कुरीतियाँ दूर करने तथा समाज के सर्वांगीण विकास के लिए पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेखों के माध्यम से जन-जागृति फैलाने के अलावा व्याख्यान आदि भी देते रहते थे। जिस प्रकार उन्होंने मुझे भवानी दादा की कविता के माध्यम से समझाया था कि जैसे हम हैं, वैसे ही हमें दिखना भी चाहिए। उन्होंने दोनों बेटियों गीता एवं मीता की शादी एक के बाद एक समाज के सामूहिक विवाह समारोह में कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया था। राधा दीदी की शादी में तो मैंने खूब उत्साहपूर्वक भाग लिया था, लेकिन बाद में दोनों बहनों की शादी में मैं अपनी व्यस्ततावश नहीं आ पाया था। समय पाते ही आया, तो बीमार पड़ गया। सर मुझे तुरंत खंडवा के प्रसिद्ध और बेहद पुराने डॉ. चौधरी के पास ले गए और मैं हफ्ते भर में ठीक होकर दिल्ली लौट गया।

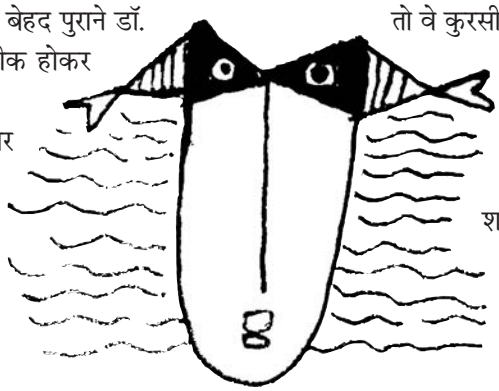

प्रेम में असफलता प्राप्त होने पर मैंने सर को बड़ा लंबा-चौड़ा पत्र लिखा। अपनी सारी कुंठा, उदासी, पीड़ा, क्षोभ एवं खीझ अपने पत्र में उतार दी। अपने मित्र को सबकुछ बताकर मैं कुछ राहत महसूस कर रहा था कि सर का पत्र आ गया—

प्रिय भैया,

ओशो को पढ़ो। वे कहते हैं कि जिनके प्रेम सफल हो गए हैं, उनके प्रेम भी असफल हो जाते हैं। इस संसार में कोई भी चीज सफल हो ही नहीं सकती। बाहर की सभी यात्राएँ असफल होने को आबद्ध हैं। क्यों? जिसको तुम तलाश रहे हो बाहर, वह भीतर मौजूद है। इसलिए बाहर तुम्हें दिखाई पड़ता है और जब तुम पास पहुँचते हो खो जाता है। मृग-मरीचिका है, दूर से दिखाई पड़ता है।

पुस्तक साथ में भेज रहा हूँ। अपना खयाल रखना। जल्दी-जल्दी आते रहना। बस।

इस बार दीवाली पर लंबी छुट्टी मिल गई। दिल्ली से पहले खंडवा पहुँचा, हालाँकि दिल्ली से नागपुर सीधा रास्ता है। सबके लिए यथायोग्य उपहार लेता आया था तो देखा कि मेरे लिए शानदार चिकन का लखनवी कुर्ता-पाजामा पहले से ही तैयार है। दो दिन रहकर फिर नागपुर के लिए रवाना हुआ। उन दो दिनों में खूब सारी बातें हुईं। मैंने सर से कहा कि आप हमेशा मुझसे कहा करते थे कि आई.ए.एस. की परीक्षा क्यों नहीं देते? लेकिन मैंने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया, हालाँकि आप हमेशा मुझे प्रेरित करते रहे। अब दिल्ली जाकर मन हुआ है सिविल सर्विसेज की परीक्षा की तैयारी करने का, जब ओवर एज होने में कुल ५ साल ही रह गए हैं। खैर, मैं तैयारी में जुट गया। कोचिंग में भी प्रवेश ले लिया। सुना था कि दिल्ली की कोचिंग सबसे बढ़िया होती है। कभी प्रीलिम्स में फेल तो कभी मेन में तो कभी इंटरव्यू में। इसी तरह दो चांस बीत गए। मैं निराश हो गया, लेकिन सर के पत्र धीरज बँधाते रहते थे। पाँच साल तक न तो मैं खंडवा गया और न ही नागपुर। मैंने भी ठान लिया था कि कुछ कर दिखाना है। अब मोबाइल फोन आ चुके थे, इंटरनेट था, लिहाजा सर से संपर्क जल्दी-जल्दी होता था। अब ओवर एज होने में दो साल बाकी थे।

एक दिन अचानक सुबह पाँच बजे घबराए हुए स्वर में मम्मी का फोन आया, "बेटा! पता नहीं पापा को क्या हो गया है? उठ नहीं पा रहे हैं, मुँह टेढ़ा हो गया है, मुँह से लार बह रही है, शरीर ऐंठता जा रहा है।"

मैं समझ गया, सर को पैरालिसिस का दौरा पड़ा है। मैंने तुरंत राधा दीदी के पति आकाश जीजाजी को फोन किया, जो अब तबादले पर खंडवा आ चुके थे। खंडवा में दो दिन के इलाज के बाद उन्हें इंदौर शिफ्ट कर दिया गया। सिविल सर्विसेज की परीक्षा का फॉर्म भरने की औपचारिकताओं के चलते मैं नहीं जा पाया, लेकिन एक महीने अस्पताल में भरती रहने के बाद जब वे खंडवा आ गए, तब मैं पहुँचा। जब मैं पहुँचा तो वे कुरसी पर बैठे थे। उन्होंने मुझे देखते ही अपने बाएँ हाथ से मुझे पकड़ा, अपने गले से लगा लिया और बेतहाशा रोने लगे।

"भैया! तुम्हें देखना था, इसलिए बच गया।" मैं नि:शब्द···कुछ भी कहते नहीं बना, शब्द जैसे मुँह में दही बनकर जम गए थे। ऐसे समय जब शब्द बाहर नहीं निकलते, तो भावनाओं का उद्रेक तो कहीं-न-कहीं से फूटेगा ही, लिहाजा मेरी रुलाई फूट पड़ी, फिर पता नहीं हम कितनी देर तक रोते रहे। आँसुओं के निर्मल प्रवाह में मेरी यात्रा की सारी थकान और सर की सारी उदासी बह गई। अब हम दोनों काफी राहत महसूस कर रहे थे।

मैंने अपने जीवन में कई पत्नियों को देखा है, जिनकी पति सेवा का उदाहरण गाहे-बगाहे सबको दिया जाता है, लेकिन मैंने मम्मी जैसी महिला नहीं देखी, जिनका जीवन ही पति की सेवा के लिए बना था। उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य ही अपने व्यक्तित्व को भुलाकर सर की सुख-सुविधा का ध्यान रखना था, उनके व्यक्तित्व में घुल-मिल जाना था। यह मैंने तब देखा था, जब सर पूरी तरह से स्वस्थ थे, नौकरी पर थे और अब तो बात ही निराली थी। मुझे अड़ोसी-पड़ोसी बताया करते थे कि मम्मी की सुबह, दोपहर, शाम मास्साब के साथ होती है। वे उनकी पत्नी है, माँ है, बहन है, आया है, महरी है, बरौनी है, महराजिन है, धोबन है, नर्स है, लाठी है, धूप है, छाँव है, यानी सबकुछ है। यह मम्मी की अथक सेवा का परिणाम ही था कि जिनके बारे में लोग कहते थे कि अब तो मास्साब बिस्तर से कभी उठ नहीं पाएँगे, वे मास्साब एक साल में बिना किसी सहारे के चलने-फिरने लगे।

जब मैंने मेंस पास कर लिया तो किसी को नहीं बताया। मिठाई लेकर सीधा खंडवा पहुँचा। देखा, घर के आँगन में मास्साब बिना किसी

सहारे के अकेले ही टहल रहे हैं। उन्होंने मुझे देख लिया था, पर शायद पहचाना नहीं, क्योंकि हम दोनों में काफी परिवर्तन आ चुका था। वे बहुत अधिक दुबला गए थे तो मैं बहुत अधिक मोटा हो गया था। फाटक खोल सीधा उनके सामने जाकर खड़ा हो गया। उन्होंने मुझे देखा और कहा, "कौन? कौन है भाई? अरे मेरे विनोद भैया!"

और मुझे गले लगाकर जोर-जोर से रोने लगे, इतनी जोर से कि किसी अनहोनी की आशंका से सारे पड़ोसी हमारे आँगन की ओर दौड़ पड़े। रिक्शा वाले ने, जो अब तक पैसों के लिए वहीं खड़ा था, यह कहकर माहौल को हलका बना दिया कि बाबूजी, राम-भरत मिलाप पूरा हो गया हो, तो मुझे किराए का पैसा दे दो, मैं चला जाऊँ। खूब जी भरकर बातें हुईं। बातों-बातों में ही इंटरव्यू के लिए मेरी तैयारी हो गई। मैं एक सप्ताह रहकर नागपुर चला गया।

इंटरव्यू ठीक-ठाक रहा। मुझे सफलता मिल गई। आई.ए.एस. तो नहीं बन पाया, क्योंकि नंबर कम पड़ गए। मुझे भारतीय रेल यातायात सेवा आबंटित की गई। मैं रेलवे के परिचालन (यातायात) विभाग में ही कार्यरत था और विभागीय परीक्षा पास कर क्लास २ के सहायक परिचालन प्रबंधक के पद पर तैनात था। इस पद पर रहते हुए मैं सेवानिवृत्ति तक वरिष्ठ मंडल परिचालन प्रबंधक के पद तक ही पहुँच सकता था। मुझे अपने वर्तमान पद से तकनीकी रूप से इस्तीफा देना पड़ा, उसके पश्चात् मेरी तैनाती सीधी भरती वाले क्लास १ सहायक वाणिज्य प्रबंधक के पद पर हो गई और मैं प्रशिक्षण हेतु रेलवे स्टाफ कॉलेज, वडोदरा रवाना हो गया। मेरी प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही नहीं थी, क्योंकि अब मैं महाप्रबंधक स्तर के सर्वोच्च पद पर भी पहुँच सकता था। जब मेरी तैनाती नागपुर में थी तो मैं दिल्ली जाते हुए एक दिन इटारसी में रुककर कुछ समय के लिए खंडवा पहुँचा। काफी लंबा अंतराल बीत चुका था। इस बार सर को मुझे पहचानने में देर नहीं लगी। गले लगाकर रोने लगे। जितनी देर तक मैं रहा, मैंने महसूस किया कि अब सर बात-बात में बहुत ही ज्यादा भावुक हो जाते हैं। रह-रहकर उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। बात खुशी की हो या दु:ख की, उनका मन करुणा से भर उठता है। अब मुझसे मित्रवत् व्यवहार नहीं करते। कोई चुटकुला नहीं सुनाते और न ही किसी प्रकार का हँसी-मजाक करते हैं। मुझसे फिल्मी कलाकारों की मिमिक्री करने की माँग भी नहीं करते।

इस बार जब मैंने मास्साब से विदा ली, तो मन कुछ उदास था। पता नहीं यह आशंका मन में क्यों बार-बार घर कर रही थी कि जब मैं अगली बार आऊँगा तो शायद मुझे इससे खराब स्थिति का सामना करना पड़ेगा। शरीर से तो वे टूट ही चुके थे, लेकिन व्यक्ति पूरी तरह से टूटता तब है, जब वह मन से टूट जाता है। मन के दरकने का कुछ-कुछ एहसास लेकर मैं पंजाब मेल से दिल्ली रवाना हो गया।

समय की नदी जीवन के कूल-किनारों-कछारों से टकराती आगे बढ़ रही थी। उन दिनों मैं मुंबई में पदस्थ था। एक दिन मम्मी का फोन आया, "बेटा, पापा को पता नहीं कौन सा रोग हो गया है? शायद बुढ़ापा है। कुछ याद नहीं रहता। अब तो कभी-कभी मुझे भी नहीं पहचानते। खाना रख दो, तो खा लेते हैं।" सुनकर मैं सातवें आसमान से गिर पड़ा।

"अरे! ऐसा कैसे हो गया?" मैं चिंता के सागर में डूब गया। मुझे लगा, कहीं डिमेंशिया (मनोभ्रंश) की शुरुआत तो नहीं?

"क्या बताएँ? तुम्हें तो कई बार फोन किया, फोन ही नहीं लगता तुम्हारा।" मम्मी की आवाज में मुझे किसी हारे हुए सिपाही का दर्द महसूस हो रहा था, जबकि पहले वे हमेशा विजयी मुद्रा में रहती थीं और यह उनकी आवाज से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। अपराध-बोध से मेरी आवाज रुँध गई, क्योंकि क्लास वन अफसर बनने के बाद मेरा फोन नंबर बदल गया था और पुराने सिम से कुछ नंबर भी निकल गए थे, उनमें शायद मास्साब का नंबर भी था।

"क्या यह अचानक हो गया?" मैं बड़ी मुश्किल से ही कह पाया था।

"नहीं···पहले किसी का फोन नंबर भूल जाते थे तो बहुत याद करने पर भी याद नहीं आता था। आज कौन सी तारीख है? दस बार पूछते थे। कुछ दिन बीते, अखबार पढ़ने के बाद कहते थे कि क्या आज अखबार नहीं आया? फिर कुछ दिनों बाद यह स्थिति हो गई कि खाना खाने के बाद पूछते थे कि आज खाना नहीं बनाया क्या? बाद में तो गुमसुम से रहने लगे। किसी से भी बात नहीं करते थे। कारण हमें बहुत दिनों के बाद पता चला, जब तुम्हारे जीजाजी मास्साब को बड़े डॉक्टर साहब के पास भोपाल लेकर गए। भोपाल के बड़े डॉक्टर साहब ने बताया कि वे अब किसी को भी नहीं पहचानते, इसलिए गुमसुम रहते हैं। उनकी बीमारी आखिरी स्टेज पर है। अब मैंने घर के काम के लिए महरी, महराजिन और धोबन रख ली है। पूरे समय इनके पास बैठी या लेटी रहती हूँ। लेकिन अब मुझे भी नहीं पहचानते।" सिसकियाँ धीरे-धीरे करुण क्रंदन में बदल गईं। मैं अंदर तक काँप गया। इतना ही कह पाया, "कल सुबह पहुँच रहा हूँ।"

सर्दियों के दिन थे। सुबह की गुनगुनी धूप में मास्साब को कुरसी पर बैठाया गया था। मम्मी पास ही दरी पर बैठकर कुछ बीन रही थीं। मैंने फाटक पर पहुँचकर धीरे से आवाज दी, "मम्मी!"

"अरे वाह! आ गए बेटा। आँखों में अचानक भर आए आँसुओं को पल्लू से पोंछते हुए मम्मी लगभग दौड़ते हुए फाटक तक आईं, फिर तेजी से घर के अंदर चली गईं। मुझे कुछ समझ में नहीं आया कि यह हो क्या रहा है? फिर चाबी से फाटक पर लटका बड़ा सा ताला खोलती हुई बोली, "पूरे समय फाटक पर ताला लगाकर रखती हूँ। एक दिन निकल गए थे, जान पर बन आई थी।"

जाटव मास्साब एकटक आँगन में खिले गुलाब के फूल की ओर अपलक देखे जा रहे थे। पता नहीं गुलाब के फूल में किसका अक्स खोज रहे थे? संपूर्ण घटनाक्रम से एकदम अनजान बने हुए। मैंने धीरे से झुककर आहिस्ता से उनके पैरों को छुआ। जैसे ही उन्हें छुअन का एहसास हुआ, उन्होंने तेजी से पलटकर मेरी ओर देखा, बस कुछ क्षणों के लिए···और दोनों हाथ फैलाकर मुझे अपने आगोश में भर लिया। मेरे कानों में जैसे किसी गहरी अँधेरी सुरंग से निकलती हुई धीमी सी आवाज आ रही थी, "विनोद भैया!"

१, बेरिल हाउस, वुड हाउस रोड,
कुलाबा, मुंबई-४०००००१ (महा.)
दूरभाष : ८८२८११००२६
vipkum3@gmail.com

जीवन सपना है

• आर.सी. शुक्ला

लोगों को मरते देखा है

यों तो मैंने बहुत बार
लोगों को मरते देखा है
आज मृत्यु को देख
बहुत वितृष्ण
हुआ है मेरा मन

न जाने क्यों लोग
गर्व करते हैं
उस शरीर पर
जो क्षणभर में
छिन्न-भिन्न हो जाता है
एक साँस कहती है
जीवन उत्सव है
एक साँस कहती है
जीवन सपना है
बहुत देर तक
खड़ा रहा मैं मरघट में
बहुत वितृष्ण हुआ है
दु:ख से मेरा मन

तुम मेरे सम्मुख आईं
फिर आकर चली गईं
रूप तुम्हारा
आकर्षण से खाली था
सारे पत्ते विलग
हो गए पादप से
सारा सावन
अल्प समय में बीत गया
मौसम का अवसाद
बहुत ही दु:ख प्रद था
बहुत वितृष्ण हुआ है
दु:ख से मेरा मन।

स्त्री

स्त्री
उस तरह से नहीं सोचती
जैसे पुरुष सोचता है
उसकी बायोलॉजी
भिन्न होती है
पुरुष की बायोलॉजी से
इसीलिए
उसका मनोविज्ञान भी
अलग होता है
पुरुष के मनोविज्ञान से

जब स्त्री
पुरुष की अपेक्षाओं के
विपरीत कार्य करती है
वह उस पर दोषारोपण करता है
यह दोषारोपण आमतौर से
गलत होता है

स्त्री जल्दबाजी नहीं करती
पुरुष की तरह
वह विख्यात है अपने धैर्य के लिए
वह पुरुष से कहीं ज्यादा
चिंतित रहती है नैतिकता के लिए

कुछ अमान्य करने के बाद
स्त्री प्रायश्चित् करती है
पुरुष नहीं करता

इन्हीं कुछ तथ्यों में
छिपी हुई है कहानी
पुरुष तथा स्त्री के बीच
होने वाले संघर्ष की।

सुपरिचित कवि। अंग्रेजी व हिंदी दोनों भाषाओं में कविता लेखन। अब तक अंग्रेजी कविताओं की दस पुस्तकें एवं हिंदी की पाँच पुस्तकें प्रकाशित।

निज घर वापस आने को तैयार रहो

अगर तुम
ठहर नहीं सकते हो अपने पास
और प्रवंचना
अच्छी लगने लगी है तुम्हें
तो कर सकते हो प्रणय
किंतु भ्रमों की नगरी में जाकर
निज घर
वापस अपने को तैयार रहो

मकड़ी के जाले को बुनकर
सोच रहे हो
बहुत सुरक्षित हो
कुछ भी नहीं मिलेगा
अर्पण के बदले
पाओगे तुम
सिर्फ विमोहित हो
भ्रामक सुख ही रहता
सूनी बस्ती में
निज घर
वापस आने को तैयार रहो

ईश्वर रहता नहीं
गगन के आँगन में
सोच-सोचकर
हम थक जाते हैं
मंजिल का जब कुछ भी
होता पता नहीं
चलते-चलते
बस थक जाते हैं
नीर नहीं मिलता
रेतीली धरती पर
निज घर
वापस आने को तैयार रहो

मोह बहुत भाता है
मानव के मन को
तब तक जब तक
भंग नहीं होता
खाली है संसार
प्रेम की बस्ती का
जाकर देखो
कोई वृंद नहीं होता
थक जाओगे
घूम-घूमकर सूनी गलियों में
निज घर
वापस आने को तैयार रहो।

एम.आई.जी. ३३, रामगंगा विहार,
फेस-२, मुरादाबाद-२४४१०५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४११६८२७७७

महुआ डबर

● कादंबरी मेहरा

नहीं यह कोई अर्थहीन शब्द नहीं है। यह एक स्थान विशेष का नाम है, जो भारत के इतिहास का साक्षी है। जिसका साक्ष्य नहीं छोड़ा गया।

कहते हैं जलियाँवाला बाग में जब मासूम नागरिकों का पूर्ण संहार हुआ तो यह खबर पूरी तरह दबा दी गई और देश के कर्णधारों तक पहुँचने में छह महीने लग गए। मगर 'महुआ डबर' के नरसंहार की खबर किसी-किसी को शायद पता हो, वह भी पिछले तीस वर्षों से—दुर्घटना के पूरे डेढ़ सौ साल के बाद।

पाप छुपता नहीं है। कहीं-न-कहीं कोई निर्दोष आत्मा भटकती रहती है अपनी कहानी सुनाने के लिए।

श्री मुहम्मद लतीफ अंसारी मुंबई में रहनेवाले एक कपड़ा व्यापारी हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला के एक गाँव बहादुरपुर में सन् १९४५ में हुआ था। इनके पिता का नाम मुहम्मद अली अंसारी था और इनकी माँ बशीरुन्निसा वहीं उनके अपने गाँव बहादुरपुर की लड़की थीं। मुहम्मद अली रोजी की तलाश में रंगून चले गए, मगर कुछ वर्षों के बाद बंबई आ गए और एक ढाबा खोल लिया। बशीरुन्निसा भी अपने पुत्र मुहम्मद लतीफ को लेकर वहीं आ गईं। दसवीं तक शिक्षा लेने बाद मुहम्मद लतीफ ने दरजी का काम सीखा और अपना खुद का कारोबार शुरू कर लिया। १९ वर्ष की अवस्था में उनकी शादी माँ-बाप ने अपने ही गाँव बहादुरपुर की एक लड़की से तय कर दी। अत: वह घाघरा के किनारे बसे हुए गाँव बहादुरपुर गए। रास्ते में वह एक सुनसान स्थान से गुजरे, जहाँ एक जली हुई मस्जिद के खँडहर अभी भी विद्यमान थे। लतीफ के चाचा मुहम्मद रज्जाक ने बताया कि यहाँ जुलाहों का एक गाँव हुआ करता था, जिसे अंग्रेजों ने समूल जलाकर खाक में मिला दिया। लतीफ के मन में यह कहानी एक फाँस बनकर बैठ गई। उसको यह तो पता था कि उसके पुरखे भी जुलाहे थे और बंगाल से आए थे। मुहम्मद अब्दुल लतीफ इस जगह के इतिहास को जानने के लिए उत्सुक हो गए।

करीब तीस वर्ष और बीत गए। लतीफ ने अपने दूसरे पुत्र के लिए बहादुरपुर से ही लड़की लाने का निश्चय किया। साथ ही उसके मन में हमेशा एक बेचैन करनेवाला अहसास घुमड़ता रहता था उस टूटी हुई मस्जिद और उजड़े हुए गाँव को लेकर। वह केवल दसवीं कक्षा तक पढ़े थे और इतिहास के विषय में बहुत कम जानते थे। उन्होंने दिल हिला

सुपरिचित कथाकार। 'कुछ जग की', 'पथ के फूल', 'रंगों के उस पार' (कहानी-संग्रह) के अलावा हिंदी पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित। 'भारतेंदु हरिश्चंद्र सम्मान' तथा कथा यू.के. का 'पद्मानंद साहित्य सम्मान'।

देनेवाली अनेक कहानियाँ अपने बाप और चाचा से सुनी थीं, परंतु इनका कोई साक्ष्य नहीं था। यह केवल किंवदंतियाँ थीं, जो एक मुँह से दूसरे तक जाते-जाते बदल जाती थीं। पता चला कि यहाँ महुआ डबर नाम का एक गाँव था, जिसको सन् १८५७ के गदर में जला डाला गया था और उसके सारे निशान मिटा डाले थे। उसका सरकारी दस्तावेजों से नाम और पंजीकरण संख्या भी मिटाकर वहाँ से करीब ५० मील दूर एक छोटे से कसबे को महुआ डबर नाम से पंजीकृत कर दिया था।

लतीफ ने इस कथा की पूरी खोज की और अपने पूर्वजों की असली कहानी को उजागर किया, जो भारत के इतिहास का एक अत्यंत दारुण अध्याय है। मोहम्मद लतीफ बस्ती डिस्ट्रिक्ट के जिलाधीश आर.एन. त्रिपाठी से जाकर मिला। त्रिपाठीजी ने बहुत सहृदयता दिखाई और इस विषय पर खोज करने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के इतिहासकारों की एक कार्यकारिणी स्थापित की। इन लोगों ने १३ वर्ष के शोध के बाद आखिरकार सन् १८२३ का एक मानचित्र उत्तर प्रदेश का निकाला, जिसमें महुआ डबर की सही-सही स्थिति चिह्नित थी। सन् १८५७ के बाद अंग्रेजों द्वारा बनाए गए नक्शों में महुआ डबर को महज एक खेत बताया गया था।

सन् २०११ में श्री जगदंबिका पाल, जो लोकसभा के सदस्य थे, के नेतृत्व में इस स्थान को राष्ट्रीय पहचान दी गई और इस पर एक चिह्न-पट लगाया गया, जिस पर राष्ट्रध्वज फहराकर महुआ डबर के अमर स्वतंत्रता सेनानियों को सम्मानित किया गया। अंग्रेजों ने उनको बागी और विद्रोही बताकर फाँसी पर चढ़ा दिया था। उनके शहर को, जिसकी जनसंख्या ५००० थी, पहले बुरी तरह लूटा और बरबाद किया, फिर चारों तरफ से घेरकर जला डाला था। कहते हैं, तीन हफ्ते तक यह आग जलती रही थी और कोई भी बचकर भाग नहीं पाया था। बाद में अंग्रेजों ने इस समूचे इलाके को 'गैर चिरागी' घोषित कर दिया, यानी वहाँ कोई रिहाइशी घर

नहीं बन सकेगा, न ही कोई मृतकों के नाम का दीया जलाएगा।

इस घेराव से पहले ही दो चार लोग भाग निकले थे, जिनमें मुहम्मद लतीफ के परदादा भी थे। और जैसा कि अनेक बार हुआ है, कोई भटकी हुई आत्मा अन्याय की कहानी कहने के लिए जिंदा हो उठती है। उनको इस कहानी की सच्चाई उजागर करने में पूरे १४ वर्ष लगे।

तो क्या थी यह सच्चाई, जो डेढ़ सौ सालों तक अज्ञान के अँधेरों में सोई रही ?

बात अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैंड की है। यूरोप के जाँबाजों ने गरीबी और बीमारी से तंग आकर विद्रोह कर दिया। जो अपार धन उपनिवेशों से आ रहा था, वह अंग्रेज अब अपने देश को नहीं भेजते थे। वहीं अन्य देशों में नए-नए नगर अपने नाम से बनाकर स्वयं राजा बने बैठे थे। इंग्लैंड का पैसा इंग्लैंड के युवाओं को नहीं लग रहा था। उनमें असंतोष था, जो औद्योगिक क्रांति के रूप में फूटा। अंग्रेज अन्य देशों की उपज और उद्योगों पर हर सही-गलत तरीके से अपना एकाधिकार कायम कर लेते थे। भारत का केवल एक राजा नहीं था। अनेक समृद्ध राज्य थे, जो एक-दूसरे से नदियों, जंगलों आदि से कटे हुए थे। बाद के मुगल शासक कमजोर और एय्याश थे। अत: अंग्रेजों के लिए भारत की आर्थिक और सांस्कृतिक संपदा की लूट करना बहुत आसान था।

सन् १८५७ में भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया। मेरठ की छावनी से शुरू हुआ तो ब्रिटिश सेना में काम करनेवाले सिपाहियों ने अंदर ही अंदर आजादी की मशाल पूरे उत्तर भारत में जला दी। जून महीने की आठ तारीख को फैजाबाद में भारतीय सेना ने विद्रोह कर दिया। उधर से अवध की सेना भी उनसे आ मिली। उन्होंने अंग्रेज अफसरों को पकड़कर जेल में डाल दिया। वह निहत्थे थे, इसलिए बहुत रोए-गिड़गिड़ाए।

शक्कर, चाय, नील, कपास, औषधियाँ, पुरानी मजबूत टीक और सागवान की लकड़ी एवं सुगंधित वनस्पतियों पर और धातुओं पर इन लोगों ने बड़ी मात्रा में कब्जा कर लिया था। जनता के प्रयोग से अधिक उत्पादित शक्कर शराब बनाने के काम आ रही थी। इसको वह भारत में ही बेचना चाहते थे, अत: व्यापार भी अपने हाथ में कर लिया था। शक्कर की खँडसारें बंद कर दी थीं। शराब की मिलें लगा दी थीं। इसी तरह कपास की उपज, यह सारी की सारी खरीदकर इंग्लैंड की मिलों में भेज देते थे। हमारे धन से यह यूरोप में मशीनें बना रहे थे। कारखाने लगा रहे थे, ताकि उनके अपने देश में सबको रोजगार मिले। सूत कातने की एक नई मशीन बनाई, जो एक हजार रीलें एक साथ चला सकती थी। इस मशीन के आ जाने से सूती कपड़े की भरमार हो गई। अंग्रेजों को यह कपड़ा भारत में बेचना था, अत: उन्होंने जुलाहों को तंग करना शुरू किया। वह लोग निरीह शांतिप्रिय लोग थे। बाजार में सस्ता माल आ जाने से उनकी रोजी पर बुरा असर पड़ने लगा, फिर भी वह लोग सिर झुकाकर सहते रहे। मध्य एशिया के गरम देशों में अभी भी उनके महीन मुलायम कपड़े की माँग थी। अंग्रेजों ने नृशंसता से उनके गाँव और घर उजाड़ दिए। बुनकरों के हाथ और अँगूठे काट दिए। अत: वह लोग जान बचाकर भागे। पूर्वी बंगाल में अफगान जाति के मुसलमान रहते थे। ये लोग मेहनती और ईमानदार थे। प्लासी की लड़ाई के बाद बंगाल का मुगल शासक अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया था। वह जुलाहों को अंग्रेजों की बेहद लोभी, चूसक नीतियों से बचा नहीं सका। जब उन पर ईस्ट इंडिया कंपनी के कारिंदों ने अमानुषिक अत्याचार किए तो वह लोग जान बचाकर अवध और अन्य प्रदेशों की तरफ भागे।

बीस परिवारों का एक काफिला सन् १८३० के लगभग अवध के नवाब की शरण में आया। नवाब ने उनको घाघरा नदी के किनारे एक बेहद छोटे से गाँव में बसा दिया। यह तराई का क्षेत्र था और यहाँ चावल की खेती होती थी। इन परिवारों में कटे हुए हाथों वाले कई लोग थे। मगर अपनी मेहनत से उन्होंने जल्दी ही इसको एक समृद्ध कस्बा बना दिया, जिसमें ५००० की आबादी थी। शीघ्र ही यह एक औद्योगिक बस्ती में बदल गया। यह जगह 'महुआ डबर' के नाम से प्रसिद्ध हुई। कारण, यहाँ एक तलैया के चारों ओर महुआ के पेड़ थे। तलैया को स्थानीय भाषा में डबर कहते हैं।

सन् १८५७ में भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम छिड़ गया। मेरठ की छावनी से शुरू हुआ तो ब्रिटिश सेना में काम करनेवाले सिपाहियों ने अंदर ही अंदर आजादी की मशाल पूरे उत्तर भारत में जला दी। जून महीने की आठ तारीख को फैजाबाद में भारतीय सेना ने विद्रोह कर दिया। उधर से अवध की सेना भी उनसे आ मिली। उन्होंने अंग्रेज अफसरों को पकड़कर जेल में डाल दिया। वह निहत्थे थे, इसलिए बहुत रोए-गिड़गिड़ाए। अत: सिपाहियों ने उनको अपनी निगरानी में चार नावें देकर पानी के रास्ते पटना के पास दानापुर की छावनी में जाने को कहा। २२ अफसर दानापुर के लिए रवाना हुए। अयोध्या के पास पहुँचकर ये लोग दो हिस्सों में बँट गए, दो नावें वहीं पर रुक गईं और दो आगे बढ़ गईं। मगर बेगमगंज के पास इनको गाँव वालों ने पकड़ लिया। फैजाबाद के कमिश्नर कर्नल गोल्डने और मेजर मैथ्यूस मारे गए। बाकी अपनी जान बचाकर भागे, मगर उनकी नावें छिछले में अटक गईं। फिर भी वह भागते रहे। गाँववालों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। जंग में जान बचाने के लिए नदी में कूद पड़े, मगर डूब गए। चार अफसर एक गाँव में जा पहुँचे, जहाँ उनको खाना-दाना मिला, यहीं उनके तीन अन्य साथी भी मिले। गाँववालों ने अपने संरक्षकों के संग इनको नावें दीं और कैप्टनगंज की तरफ भेज दिया। ये सात अफसर महुआ डबर पहुँच गए। दो-चार गाँववालों ने उनको बस्ती की तरफ जाने से रोका, क्योंकि वहाँ क्रांतिकारी पहुँच चुके थे। अत: खाना आदि खाने के बाद उनको खच्चरों पर बैठाकर गायघाट की ओर भगा दिया। यहाँ से वह नाव लेकर दानापुर जा सकते थे, मगर महुआ डबर के लोग अपनी त्रासदी भूले नहीं थे। शहर के बाहर आते ही, मनोरमा नदी के किनारे उनपर नगरवासियों ने हमला कर दिया। सात में से छह मारे गए। केवल सार्जेंट बुशर नामक व्यक्ति बचकर निकल गया। हमलवारों का नेता जाफर अली था, जिसके पूर्वज मुर्शिदाबाद से आए थे। जफर अली भाग निकला और कभी पकड़ा नहीं गया।

अंग्रेजों के लिए यह एक अनोखी घटना थी। १८५७ की क्रांति सैनिक विद्रोह था, जिसका राजाओं ने भी समर्थन किया और युद्ध लड़े। मगर इस घटना में अंग्रेजों के जानी दुश्मन गाँव वाले थे, अत: यह जन विद्रोह था। अंग्रेज समझ गए थे कि यह जनक्रांति थी, जो एक सैलाब की तरह होती है। इस घटना ने पूरे उत्तर भारत में यह संदेश दिया था कि बिना गोला-बारूद के, केवल लाठी-डंडे और तलवार से अंग्रेजों को नाकाम किया जा सकता है। अंग्रेजों पर आस-पास के जमींदारों ने भी शिकंजा कसना शुरू कर दिया। उनके द्वारा बंदी बनाए गए निरीह किसानों को जेलों से मुक्त कर दिया। बनारस से गोरखपुर तक अनेक तहसीलों में ब्रिटिश सेना के सिपाहियों ने बगावत कर रखी थी। इस संहार ने अंग्रेजों की साख मिट्टी में मिला दी थी। वे लोग डरे बैठे थे और गोरखपुर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के घर में छुपे बैठे थे।

इसी जगह से १५ किलोमीटर दूर बर्डपुर में एक अंग्रेज जमींदार को इंग्लैंड से शक्कर से शराब बनाने की मिल लगाने के लिए भेजा गया था। इसका नाम विलियम पेपे था। मिल तो चली चलाई नहीं, मगर उसने एक विधवा जमींदारिन की नौकरी कर ली। वह नील की खेती करने लगा, जिसको काला सोना कहा जाता था। शक्कर पूरे विश्व में बनाई जा रही थी, अत: उसका दाम बहुत कम रह गया था। अत: लाभांश भी कम था। नील का व्यापार अधिक कमाई दे रहा था, विश्व में और अंग्रेजों ने इसपर भी अपना एकाधिकार कर लिया था। विलियम पेपे कुख्यात नृशंस जमींदार था और उसके पास घुड़सवारों का एक दस्ता था। फैजाबाद के सुपरिंटेंडेंट ने उसको रातोरात बस्ती जिले का डिस्ट्रिक्ट मजिट्रेट बना दिया और उसे घुड़सवारों की एक पूरी फौज दे दी, महुआ डबर को सबक सिखाने के लिए। उसकी घुड़सवारों की फौज ने नगर को चारों तरफ से घेर लिया। पहले लूटपाट की, फिर आग लगा दी। तारीख थी ३ जुलाई, १८५७। महुआ डाबर हमेशा के लिए गारत हो गया। तीन हफ्ते तक नगर जलता रहा। धुआँ और चीखें मीलों दूर तक सुनाई देती रहीं, मगर अंग्रेजों की नाकेबंदी से डरे अन्य गाँवों के नागरिक बचाने न आ सके। गदर के दिनों में जिन जमींदारों ने अंग्रेजों की खिलाफत की थी, उनको भी मौत के घाट उतार दिया गया। कई लोगों को पेड़ों से लटकाकर फाँसी दे दी गई और वहीं टँगा रहने दिया, ताकि अन्य लोग आँखें दिखाने की जुर्रत न करें।

कहने को तो यह नरसंहार महुआ डबर को सबक सिखाने के लिए किया गया था, मगर असलियत में यह अंग्रेजों की चाल थी भारत के व्यापार को नष्ट करने की। मुर्शिदाबाद से पंगु और प्रताड़ित जुलाहे यहाँ इस तराई के खेत में, जहाँ दलदल था और मच्छरों के कारण भयंकर मलेरिया था, जैसे-तैसे शरण पा गए थे। उन्होंने इस स्थान को गोरखपुर इलाके का सबसे उन्नत नगर बना दिया था। तीन दशकों में ही यह कपड़ा बुनाई, रँगाई और छपाई का केंद्र बन गया था। धूर्त और लालची अंग्रेज इनसे जले-भुने बैठे थे। उनकी नजर इस जमीन पर भी थी, जो बढ़िया चावल उगलती थी। विलियम पेपे ने इस चावल का नाम 'पटना राइस' रख दिया और उसको अपने नाम से पेटेंट करा लिया। बाद में सौ सालों के बाद उस पेटेंट को 'अमेरिकन लौंग ग्रेन राइस' के नाम से बेच दिया है। अब यह इसी नाम से विश्व भर में उगाया जाता है और भारत को पता ही नहीं।

इसलिए मौका मिलते ही उन्होंने महुआ डबर को नेस्तनाबूद कर दिया। अब वह इंग्लैंड की मिलों का कपड़ा बेच सकते थे। महुआ डबर की राख पर हल चलवा दिए और भूमि को समतल करवा दिया। उस जगह एक चिह्न-पट लगवा दिया, जिस पर लिखा था—'गैर चिरागी'। इसका तात्पर्य यह था कि यहाँ कोई आवास या मजार या मस्जिद नहीं बनाई जा सकती। इस जगह पर केवल खेती की जा सकती थी, जिससे अंग्रेजों को लगान की आमदनी होती।

इस जघन्य कृत्य के लिए विलियम पेपे को बर्डपुर के चारों तरफ ५० वर्ग मील तक की जमीन का मालिक बना दिया गया और यह 'बर्डपुर एस्टेट' कहलाने लगा। इसका मकान अभी तक मौजूद है। सन् १८५८ में अंग्रेजों ने पाँच व्यक्तियों को इसी कांड के तहत १८ फरवरी को फाँसी दे दी। इनके नाम थे गुलजार खान, निहाल खान, घीसा खान और बदलू खान महुआ डबर से और भैरोंपुर से गुलाम खान। चौकीदार रूदा खान का भी नाम है, जिसने अंग्रेजों को बहकाकर फँसाया था, बागियों के जाल में। शायद उसका यह इरादा नहीं था, चूँकि गाँववालों ने उनको मार डाला, उसको अपराधी मानकर फाँसी दे दी।

अफसोस यह है कि इनमें से किसी का भी नाम २०१९ की 'डिक्शनरी ऑफ मार्टियर्स ऑफ इंडिया' में दर्ज नहीं है।

मजहर आजाद नामक, बस्ती जिले के एक लेखक कहते हैं कि इस स्थान पर जाते ही एक अजीब किस्म का बेचैन करने वाला मौत का अहसास हवा में महसूस होता है। ऐसा लगता है कि हजारों दबी-घुटी चीखें कानों में फुसफुसा रही हों। बाद में अपनी काली करतूत पर परदा डालने के लिए अंग्रेजों ने असली महुआ डबर से १५ मील दूर मनोरमा नदी के किनारे एक और छोटे से डबर को महुआ डबर का नाम देकर पंजीकृत कर दिया। मगर १८२३ का पुराना नक्शा असली स्थान की स्थिति सिद्ध करने के लिए काफी था।

लखनऊ विश्वविद्यालय की पुरातत्त्व विभाग की एक टीम ने इस स्थान की खुदाई करने का निर्णय लिया, परंतु खोजबीन के बाद इस प्रस्ताव को बंद कर दिया। तीन-चार सुरंगें अलग-अलग जगहों पर खोदी गईं और उनमें घुसकर छानबीन की गई तो जले हुए बरतन-भांडे, काठ किवाड़, जली हुई मानव अस्थियाँ आदि निकलीं, जिससे इस हत्याकांड की पुष्टि हुई। मानव संसाधन मंत्रालय के आदेश पर इस स्थान को ऐतिहासिक महत्त्व का घोषित करके वहाँ एक नाम-पट्ट लगवा दिया गया है।

श्री मुहम्मद अब्दुल लतीफ अंसारीजी के १४ वर्षों के अथक प्रयास के कारण भारत के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय उजागर हो सका और एक खुशहाल उद्यमी समाज अपनी पहचान वापिस प्राप्त कर सका। श्री अंसारी को राष्ट्रपति अबुल कलामजी द्वारा सम्मानित भी किया गया।

३५ द एवेन्यू, चीम, सरे,
एस.एम. २, ७ क्यू.ए., यू.के.
दूरभाष : ००४४-२०८६६१२४५५
kadamehra@googlemail.com

डॉ. भीमराव आंबेडकर

डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म १४ अप्रैल, १८९१ को महाराष्ट्र में महार जाति के एक साधारण परिवार में हुआ।

इनके पिता का नाम श्री रामजीराव सकपाल और माता का नाम श्रीमती भीमाबाई था। भीमराव आंबेडकर के पिता रामजीराव भी सेना में थे। बालक भीमराव जब मात्र ६ वर्ष के थे, तभी उनकी माता का देहांत हो गया।

भीमराव की प्रारंभिक शिक्षा महाराष्ट्र के डापोली कस्बे में और उसके बाद सतारा में हुई। भीमराव व उनके भाई को विद्यालय में प्रवेश अत्यंत कठिनाई से मिल पाया था।

कुछ दिनों बाद भीमराव अपने पिता के साथ बंबई आकर रहने लगे।

बंबई में रहते हुए ही भीमराव ने एल्फिंस्टन हाई स्कूल में दाखिला ले लिया था। पढ़ने में उनकी विशेष रुचि थी। सन् १९०७ में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

मैट्रिक पास करते ही १७ वर्ष की आयु में भीमराव का विवाह हो गया। रमाबाई नाम की ९ वर्षीया कन्या के साथ उनका विवाह हुआ। विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी। धीरे-धीरे उन्होंने बी.ए. पास कर लिया। उसके बाद वे संस्कृत पढ़ना चाहते थे। नीची जाति का होने के कारण उन्हें संस्कृत की शिक्षा देने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

बी.ए. पास करने के बाद भीमराव को बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ की सेना में नौकरी मिली। उन्हीं दिनों उन्होंने विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन किया। इसी दौरान उनके पिता का देहांत हो गया। पढ़ाई में रुचि से प्रभावित होकर राजा ने इन्हें पढ़ने के लिए अमेरिका भेज दिया। वहाँ न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में इनका दाखिला हो गया। अमेरिकी लोगों के व्यवहार और रहन-सहन से भीमराव बहुत प्रभावित हुए।

भीमराव ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास की। उन्होंने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था पर एक शोध-प्रबंध तैयार किया। सन् १९२४ में उन्हें पी-एच.डी. की उपाधि मिली। उसके बाद उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय छोड़ दिया और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में दाखिला ले लिया। इसी बीच बड़ौदा के राजा द्वारा दी जानेवाली सहायता की अवधि समाप्त हो गई, जिसके कारण इन्हें बंबई वापस लौटना पड़ा।

बंबई में इन्हें सीडेनहोम कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया। यहाँ भी उन्हें छुआछूत और भेदभाव की उसी समस्या का सामना करना पड़ा। वे अपने विषय के विद्वान् थे। पढ़ाने की उनकी शैली भी उत्तम थी। इस कारण शीघ्र ही वे छात्रों के बीच लोकप्रिय होने लगे।

उनके सहयोगियों ने भीमराव का विरोध करना शुरू कर दिया। इन सबसे भीमराव के दिलो-दिमाग में फिर से लंदन घूमने लगा। जल्दी ही वह समय आ गया, जब डॉ. भीमराव आंबेडकर दोबारा लंदन गए। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से एम.एस-सी. की। इसके बाद उन्होंने 'बार एट लॉ' की उपाधि भी प्राप्त की। तत्पश्चात् वे बंबई लौट आए। बंबई में रहकर डॉ. भीमराव आंबेडकर ने वकालत शुरू कर दी। वकालत के साथ-साथ डॉ. आंबेडकर ने समाज-सुधार का कार्य भी आरंभ कर दिया। उन्होंने महाद और नासिक के अछूतों के सत्याग्रह का नेतृत्व किया। सन् १९३० में अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन गए। वहाँ भी उन्होंने समाज में अछूतों की दशा को प्रभावी ढंग से सामने रखा।

लंदन से लौटकर डॉ. आंबेडकर ने अहमदाबाद में गांधीजी से मुलाकात की। दोनों ने अछूतों की समस्या के संबंध में विचार-विमर्श किया। परंतु दोनों के विचारों में असमानता थी।

डॉ. आंबेडकर अछूतों को अलग से राजनीतिक अधिकार दिए जाने के पक्ष में थे। जबकि गांधीजी इनको हिंदू समाज का ही अंग मानते हुए समान अधिकार दिलाना चाहते थे।

कांग्रेस के विचार से अछूतों को संयुक्त चुनाव में भागीदारी मिलनी चाहिए थी। गांधीजी अछूतों को अलग से प्रतिनिधित्व देने के सर्वथा विरुद्ध थे। लेकिन डॉ. आंबेडकर चाहते थे कि केंद्रीय विधानमंडल के चुनावों में अछूतों को अलग से प्रतिनिधित्व मिले। इस संबंध में ब्रिटिश सरकार से बात करने के लिए वे लंदन भी गए। वहाँ उन्होंने अछूतों की समस्या पर विस्तार से प्रकाश डाला। डॉ. आंबेडकर के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत से ब्रिटिश पदाधिकारी इनके समर्थक बन गए।

अंतत: डॉ. आंबेडकर अपने प्रयत्नों में सफल हुए। अछूतों को अलग मतदान करने और अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया।

गांधीजी और डॉ. आंबेडकर के प्रयासों से अछूतों की स्थिति में काफी सुधार आने लगा।

भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण डॉ. आंबेडकर का हिंदू धर्म के प्रति विश्वास डगमगाने लगा। अब बौद्ध धर्म की ओर उनका झुकाव बढ़ने लगा।

सन् १९४२ में डॉ. आंबेडकर ने नागपुर में 'भारतीय अछूत महासभा' का अधिवेशन बुलाया। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि अछूत हिंदू समाज के अंग नहीं हैं। सामाजिक रूप से अलग होने के कारण उन्हें भी अन्य हिंदुओं के समान ही अधिकार और सुविधाएँ मिलनी चाहिए। उन्हीं दिनों उन्होंने 'भारतीय अनुसूचित जाति संघ' की स्थापना की।

डॉ. आंबेडकर की विद्वत्ता से तत्कालीन वाइसराय प्रभावित हुए। वाइसराय ने उन्हें अपनी कार्यकारिणी का सदस्य घोषित कर दिया। इससे उनको अछूतों की सेवा का एक उचित अवसर प्राप्त हो गया। इनके प्रयासों से ही अब अछूतों को अनेक सुविधाएँ मिलने लगी थीं। सरकारी नौकरियों में भी उनके लिए स्थान आरक्षित कर दिए गए।

९ दिसंबर, १९४६ को नई दिल्ली में संविधान सभा का अधिवेशन शुरू हुआ। इसका प्रमुख कार्य स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाना था। डॉ. राजेंद्र प्रसाद को इसका सभापति चुना गया था। इन्हीं दिनों डॉ. आंबेडकर ने 'राज्य और अल्पसंख्यक' शीर्षक से एक निबंध तैयार किया। और मार्च, १९४७ में इसे संविधान सभा में पेश कर दिया।

डॉ. आंबेडकर कानून के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने अनेक देशों के संविधानों का गहन अध्ययन किया था। इस कारण उन्हें संविधान सभा की प्रारूपण समिति का अध्यक्ष चुना गया। इस बात की उन्हें खुशी थी कि अंतत: उन्हें देश की सेवा करने का अवसर मिला।

डॉ. आंबेडकर ने अछूतों के लिए कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना की थी। इसी दौरान कानून मंत्री के रूप में उन्होंने हिंदू कोड बिल पास करवा लिया था। पर उन्होंने स्वयं बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था।

उनकी अवस्था अब ढलने लगी थी। वे ८० वर्ष से अधिक के हो चुके थे। उनके मन में अभी भी अपार उत्साह था। वे नित नए कार्यों की योजनाएँ बनाते रहते थे, ताकि अछूतों की दशा सुधर सके।

अंतत: यह देशभक्त महापुरुष ५ दिसंबर, १९५६ को चिरनिद्रा में लीन हो गया। □

मदाम भीकाजी कामा

मदाम भीकाजी कामा एक तेजस्वी, निर्भीक तथा ठोस विचारोंवाली क्रांतिकारी महिला थीं। उनका जन्म २४ सितंबर, १८६१ को बंबई के एक प्रतिष्ठित पारसी व्यापारी सोहराबजी फ्रामजी पटेल की पुत्री के रूप में हुआ था। भीकाजी के आठ भाई-बहन और थे। माता-पिता ने भरे-पूरे परिवार में भीकाजी कामा का लालन-पालन बड़े ही लाड़-प्यार से किया। घर पर सभी लोग प्यार से उन्हें 'मुन्नी' कहकर पुकारते थे।

भीकाजी बचपन से ही बहुत होशियार तथा तेज थीं। बहुत कम आयु में ही उन्हें प्रारंभिक शिक्षा के लिए 'एलेक्जेंड्रा पारसी गर्ल्स स्कूल' में दाखिल करा दिया गया। अपनी कक्षा में वे सभी विषयों में प्रथम आती थीं। वे अपना गृहकार्य पूर्ण करने से पहले रात का भोजन कभी नहीं करती थीं। पढ़ाई के प्रति उनकी लगन और प्रतिभा के कारण स्कूल के सभी अध्यापक उन्हें बहुत प्यार करते थे।

उस समय हमारा देश अंग्रेजों के अत्याचारों से त्रस्त था। देश को आजाद कराने के लिए कई तरह के आंदोलन भारत भर में चलाए जा रहे थे। छोटी सी उम्र होते हुए भी भीकाजी के मन में आजादी को लेकर काफी उथल-पुथल रहती थी। वे देश के लिए प्राण न्योछावर करनेवाले देशभक्तों की पूजा करती थीं और आजादी के लिए काम करनेवाले सभी लोगों का आदर-सम्मान करती थीं।

उसी समय बंबई में प्लेग फैल गया। प्लेग के रोगियों की सेवा करते-करते मैडम कामा को भी संक्रमण हो गया। उनके प्राण तो बच गए, परंतु काफी समय बाद तक भी उन्हें खोया हुआ स्वास्थ्य प्राप्त न हो सका। स्वास्थ्य-सुधार के लिए वे सन् १९०२ में यूरोप चली गईं। वहाँ विभिन्न देशों की यात्रा करते हुए वे सन् १९०५ में लंदन पहुँचीं। वहाँ उनकी मुलाकात भारत के महान् राष्ट्रवादी नेता दादाभाई नौरोजी से हुई। मैडम कामा ने लगभग डेढ़ वर्ष तक उनके निजी सचिव के रूप में कार्य किया। इस बीच उनका संपर्क कई देशभक्तों तथा क्रांतिकारियों से हुआ, जिनका उनके जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इन क्रांतिकारियों में श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर तथा सरदार सिंह राणा प्रमुख थे।

लंदन में मैडम कामा ने श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा प्रकाशित 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक समाचार-पत्र के लिए अनेक लेख लिखे। इसके पश्चात् उन्होंने श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित 'इंडियन होमरूल सोसाइटी' के लिए काम करना प्रारंभ कर दिया।

सन् १९०५ में ही मैडम कामा ने वीर सावरकर तथा कई अन्य

देशभक्तों से मिलकर प्रथम भारतीय राष्ट्रीय ध्वज 'तिरंगा' का प्रारूप तैयार किया, जिसे उसी वर्ष पहली बार बर्लिन में तथा दूसरी बार सन् १९०७ में बंगाल में फहराया गया। उस तिरंगे झंडे में हरे, केसरिया तथा लाल रंग की तीन पट्टियाँ थीं। हरे रंग की पट्टी सबसे ऊपर थी और उसपर आठ कमल पुष्प बने थे, क्योंकि उस समय भारत आठ प्रांतों में बँटा हुआ था। वे आठ कमल पुष्प इन्हीं आठ प्रांतों का प्रतिनिधित्व करते थे। बीच की केसरिया पट्टी पर देवनागरी लिपि में 'वंदे मातरम्' लिखा था। सबसे नीचे लाल रंग की पट्टी थी, जिस पर दाईं ओर अर्धचंद्र तथा बाईं ओर उगता हुआ सूर्य बना था। लाल रंग शक्ति, केसरिया विजय तथा हरा निर्भीकता और जोश का प्रतीक था। मैडम कामा ने इस राष्ट्रीय ध्वज के निर्माण का श्रेय कर्तव्यनिष्ठ तथा निर्भीक देशभक्त वीर सावरकर को दिया।

सन् १९०७ में अगस्त के तीसरे सप्ताह में जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में आयोजित अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में मैडम कामा ने दुनिया भर के विभिन्न देशों से आए हजारों प्रतिनिधियों के समक्ष भारतीय पक्ष को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से रखा।

मैडम कामा विश्व के अनेक देशों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में विदेशी भूमि पर भारतीय ध्वज फहरानेवाली प्रथम महिला थीं। उन्होंने कहा था, ''मैं अपने देश का ध्वज फहराने के बाद ही बोलना प्रारंभ करती हूँ।''

लंदन में जब भारतीय क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ बढ़ने लगीं तो उनके विरुद्ध पुलिस की हलचल भी बढ़ गई। अब लंदन इन क्रांतिकारियों के लिए सुरक्षित नहीं रह गया था। इसी कारण श्यामजी कृष्ण वर्मा लंदन छोड़कर फ्रांस चले गए और उन्होंने पेरिस में रहकर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन शुरू कर दिया।

जर्मनी में सम्मेलन की समाप्ति के बाद मैडम कामा अमेरिका चली गईं। वहाँ रहकर उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए लोगों का समर्थन जुटाना शुरू कर दिया।

उधर लंदन में लगातार क्रांतिकारी गतिविधियों में संलग्न रहने के कारण वीर सावरकर का स्वास्थ्य काफी गिर चुका था। स्वास्थ्य सुधार के लिए वे पेरिस में मैडम कामा के पास आ गए। वहाँ मैडम कामा तथा श्यामजी, राणा डे, हरदयाल, वीरेंद्र नाथ एवं अन्य साथियों की देख-रेख में उनका स्वास्थ्य बेहतर हो गया। इसके साथ-साथ भारतीय क्रांतिकारियों से लगातार संपर्क बनाए रखने, उनको एकजुट करने तथा उनके लिए हथियारों की आपूर्ति का कार्य निरंतर चलता रहा।

सन् १९०७ में वीर सावरकर ने १८५७ के विद्रोह की स्वर्ण जयंती मनाने का कार्यक्रम बनाया। उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम पर एक पुस्तक लिखी, जिसमें विद्रोह का विस्तार से वर्णन किया गया था। मैडम कामा 1857 के संग्राम में मारे गए शहीदों के परिवारों को भी कुछ धन लगातार भिजवाती थीं। उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरोध के बावजूद सावरकर द्वारा लिखी गई पुस्तक 'द फर्स्ट वार ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस ऑफ १८५७' प्रकाशित की तथा कुछ गुप्त माध्यमों के द्वारा इस पुस्तक की प्रतियाँ लोगों तक पहुँचाईं। यह पुस्तक भारतीयों के बीच बड़ी लोकप्रिय हुई।

मई १९१२ में ऑक्सफोर्ड से भारत भेजी गई 'वंदे मातरम्' तथा अन्य पत्रिकाओं की प्रतियाँ ब्रिटिश सरकार के हाथों लग गईं और भारतीय क्रांतिकारियों तक नहीं पहुँच सकीं। इन विपरीत परिस्थितियों में भी मैडम कामा ने किसी-न-किसी तरह पत्रिकाएँ भारतीय क्रांतिकारियों तक पहुँचाईं।

सन् १९१४ में प्रथम विश्वयुद्ध के समय मैडम कामा के मन में स्वतंत्रता की लालसा तीव्र होने लगी। उन्होंने भारतीय सैनिकों से युद्ध में भाग न लेने के लिए कहा। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा, ''भारत माता के सपूतो! तुम्हें धोखा दिया जा रहा है। तुम इस युद्ध में भाग मत लो। तुम अपने प्राण भारत के लिए नहीं बल्कि उन अंग्रेजों के लिए न्योछावर करने जा रहे हो, जिन्होंने तुम्हारी भारत माता के हाथों में हथकड़ियाँ पहना रखी हैं। उन्हें वहाँ से हटाने के बारे में सोचो। यदि तुम अंग्रेजों की सहायता करोगे तो भारत माता के हाथों की हथकड़ियों को और कड़ा कर दोगे।''

उन्होंने स्वयं भी मार्सीलिस में सेना के कैंप का दौरा किया और भारतीय सैनिकों से मुलाकात की। उन्होंने उनसे प्रश्न पूछा, ''क्या आप उन्हीं लोगों के लिए लड़ने जा रहे हैं, जिन्होंने तुम्हारी माँ को कैद कर रखा है?''

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस की सरकार ने उनके देश छोड़कर जाने पर पाबंदी लगा दी तथा उन्हें पेरिस से बाहर भेज दिया। युद्ध समाप्त होने पर उनपर से यह पाबंदी हटा ली गई और वे फिर से स्वतंत्रतापूर्वक क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने लगीं। अब तक उनकी प्रसिद्धि इतनी फैल चुकी थी कि चीन, तुर्की आदि पूर्वोत्तर के अनेक देशों के लोगों द्वारा उनकी प्रशंसा की जाने लगी। इन देशों के क्रांतिकारी उनसे सलाह लेने के लिए उनके पास आने लगे।

इधर स्वास्थ्य पर बिलकुल ध्यान न दिए जाने के कारण मैडम कामा का स्वास्थ्य जब-तब खराब रहने लगा। उनका शरीर भी कमजोर हो चुका था, क्योंकि अब तक उनकी उम्र लगभग ७० वर्ष से अधिक हो चुकी थी। उस अवस्था में उन्होंने अपनी मातृभूमि भारत वापस आने की इच्छा जताई। लेकिन भारत आने के लिए उन्हें भारतीय ब्रिटिश सरकार से अनुमति लेना आवश्यक था। सर कोवासजी जहाँगीर के अथक प्रयास के बाद मैडम कामा को भारत आने की अनुमति सशर्त मिल गई, परंतु उन्होंने उन शर्तों को मानने से इनकार कर दिया। बाद में मित्रों तथा रिश्तेदारों के आग्रह पर उन्होंने उन शर्तों को मान लिया।

जब उन्हें भारत लाया जा रहा था तब रास्ते में ही वे अधिक बीमार पड़ गईं और बिस्तर से उठने की स्थिति में भी न रहीं। बंबई पहुँचने पर उन्हें अपार खुशी हुई, परंतु उन्हें बंदरगाह से सीधे ही 'पेटिट अस्पताल' ले जाया गया, जहाँ वे आठ महीने तक जीवन और मृत्यु के बीच झूलती रहीं। अंततः १३ अगस्त, १९३६ को यह महान् क्रांतिकारी महिला चिर निद्रा में लीन हो गई।

□

अमेरिका का हिंदू समाज, पहचान की तलाश

• रेणु 'राजवंशी' गुप्ता

हम भारतवंशी आज से नहीं, सदियों से विश्व के कोने-कोने में फैले हुए हैं। सुदूर अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, फिजी, मॉरीशस, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा एवं अमेरिका में भारत से हिंदू समाज भिन्न-भिन्न परिस्थिति एवं समय में जाकर विस्थापित हुए हैं। बँधुआ मजदूर से लेकर घनिष्ठ-बुद्धिजीवी के मध्य लंबी सूची है तो विस्थापना का अंतराल भी तीन सौ वर्षों से लेकर तीस वर्ष के मध्य है।

बहुधा हम भारतवंशी स्वयं को भारतीय, हिंदुस्तानी या इंडियन कहकर संबोधित करते हैं, परंतु मैं यहाँ हिंदू समाज की बात कर रही हूँ। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है कि भारत के बाहर बसे भारतीयों में ९५ प्रतिशत से ऊपर हिंदू हैं, जैसे सिख भाइयों को भी मैं हिंदू वाङ्मय का भाग मानती हूँ।

प्रथम पीढ़ी के लोगों से जब पूछा जाता है कि आप कौन हैं या कहाँ से आए हैं? हमारा उत्तर होता है, "हम इंडिया से हैं, हम इंडियन हैं या भारतीय हैं।"

दूसरे चरण में हमारा उत्तर होता है, "हम पंजाबी, गुजराती, मराठी या दक्षिण भारतीय हैं।" और अधिक कुरेदने पर तीसरे चरण में कहते हैं, "हिंदू हूँ, परंतु उससे भी मुखर होता है आर्य समाज, स्वामीनारायण या हरे-कृष्णा का अनुयायी हूँ।"

हिंदू समाज के स्वपरिचय में 'हिंदू' शब्द अति गौण होता है। यह तो रही हिंदू समाज की विडंबना। यही हमारे आलेख का मुख्य विषय है।

दूसरी ओर धर्मेतर भाई-बहनों से उपर्युक्त प्रश्न पूछा जाता है तो उनका बेबाक उत्तर होता है—

"मैं मुसलमान हूँ एवं इंडिया से हूँ।"

"मैं इंडियन मुसलिम हूँ।"

"मैं इंडियन क्रिश्चियन हूँ।"

"भारतीय ईसाई हूँ या भारतीय क्रिश्चियन हूँ।"

यहाँ मैं विशेषकर अमेरिका के संदर्भ में बात कर रही हूँ। यहाँ प्रवासी भारतीयों को इंडियन, एशियन इंडियन या फार-ईस्ट एशियन कहकर संबोधित किया जाता है। मैं 'फार-ईस्ट एशियन' संबोधन एक सुनियोजित षड्यंत्र की भाँति देखती हूँ, इसमें हिंदू तो है ही नहीं, इंडिया भी निकल गया। इस प्रकार तो हमारी आगामी पीढ़ी अपने मूल से पूरी तरह छिटक जाएगी।

सुपरिचित लेखिका। अभी तक दो कविता-संग्रह, तीन कहानी-संग्रह, उपन्यास तथा स्तन कैंसर पर एक शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। साहित्य के अतिरिक्त समाज-सेवा में पूरी तरह संलग्न।

अमेरिका में हिंदू समाज ने गत पचास वर्षों से आकर बसना आरंभ किया है। इससे पूर्व भारतीय अमेरिका आते थे, परंतु वापस लौट जाया करते थे। सत्तर के दशक से बहु संख्या में हिंदू समाज ने अमेरिका को अपना घर बनाया है। आज तो हिंदुओं की दूसरी-तीसरी पीढ़ी भी तैयार हो गई है।

यदि आप दूसरी पीढ़ी के हिंदू से उसका परिचय पूछेंगे तो उत्तर मिलेगा, "मैं अमेरिकन हूँ।" अधिक-से-अधिक नगर या प्रांत का नाम बता देगा कि "मैं ओहियो से हूँ या न्यूयॉर्क में पला-बड़ा हूँ।" और अधिक कुरेदने पर आपको उत्तर मिलेगा कि "मेरे माता-पिता इंडिया से हैं या गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब से आते हैं।" यह जानकारी आपको मिल जाएगी।

यहाँ आप पूरे वार्त्तालाप पर गौर करें तो पाएँगे, यहाँ 'हिंदू' नाम का कोई उल्लेख नहीं है एवं 'भारत' भी तिरोहित हो गया है।

दूसरी ओर धर्मेतर व्यक्ति का बेबाक उत्तर होगा—

"मैं मुसलिम हूँ।"

"मैं क्रिश्चियन हूँ या मैं हैदराबाद का मुसलिम हूँ।"

"मैं केरल का ईसाई हूँ।"

कोई हिंदू आपको यह कहते नहीं मिलेगा—

"मैं गुजराती हिंदू हूँ।"

"मैं पंजाबी हिंदू हूँ।"

दूसरी ओर भारत से बाहर आने वाला मुसलिम स्वयं को सदा 'मुसलिम' ही कहेगा। एक मुसलिम पहचान बनते ही, उसके साथ प्रत्येक देश के, प्रत्येक रंग के, अनेक भाषाभाषी मुसलिम समुदाय खड़े मिल जाएँगे। इसी प्रकार ईसाई समाज भी अपनी पहचान के लिए सजग होता रहा है, वह स्थानीय चर्च में जाता है और स्थानीय ईसाई समाज का अभिन्न अंग बन जाता है।

एक हिंदू प्रथम पीढ़ी में तो इंडियन बना रहता है, परंतु दूसरी एवं तीसरी पीढ़ी के आते-आते न हिंदू पहचान रखता है और न ही इंडियन

पहचान रह पाती है। एक सही पहचान खोने का दंश हम हिंदू झेल रहे हैं एवं कई पीढ़ी बहुधा भटकी हुई दिखाई देती है। आइए, एक दृष्टि अमेरिका के हिंदुओं की संख्या पर डालें—

अमेरिका में हिंदू धर्मावलंबी की संख्या लगभग पाँच से छह करोड़ है। इसमें दस लाख के लगभग वे हिंदू हैं, जो अन्य धर्म से धर्मांतरित होकर आए हैं। इसके अतिरिक्त एक बहुत अहम बात की जो औपचारिक रूप से हिंदू नहीं कहलाता है, परंतु अपनी जीवन-चर्चा, जैसे योगाभ्यास, ध्यान, अध्यात्म, स्वाध्याय, शाकाहारी भोजन एवं दर्शन द्वारा हिंदू धर्म का अनुशरण करता है, इन्हें हम प्रैक्टिसिंग (व्यवहारशील) हिंदू कहते हैं। इनकी संख्या तीन से पाँच लाख है। हिंदू जनसंख्या में एक अहम संख्या उन लोगों की है, जिनके पूर्वज भारत से बाहर अन्य देशों में बस गए थे। आज अनेक हिंदू ऐसे हैं, जो भारत कभी गए ही नहीं हैं। हिंदू वोट यदि एकजुट हो तो चुनाव में अहम भूमिका निभा सकता है।

अमेरिकन हिंदू परिवार की औसत वार्षिक आय अस्सी हजार डॉलर के लगभग है, जो सभी समुदायों से अधिक है एवं यहूदी समाज के समक्ष है। अमेरिकन हिंदू शिक्षा, मेडिकल, कॉरपोरेट एवं व्यवसाय क्षेत्र में सर्वोच्च पदों पर आसीन हैं। गूगल, माइक्रोसॉफ्ट, फेसबुक, ट्विटर, एयरलाइंस, विश्वविद्यालय अध्यक्ष, डीन, अस्पताल के अध्यक्ष आदि पदों को हिंदू समाज ने सुशोभित किया है। अमेरिका में १५ प्रतिशत से अधिक डॉक्टर्स हिंदू हैं। होटल क्षेत्र में ७०-८० प्रतिशत हिंदू समाज के आधिपत्य में है। यदि हम अमेरिकन हिंदुओं की सब लक्ष्मी को एकत्र करें तो वह एक देश की पूरी आर्थिक-व्यवस्था के बराबर हो सकती है।

शिक्षा, संस्कृति, वैभव-सामर्थ्य एवं संसाधनों से सरोबार हिंदू समाज राजनैतिक रूप से सक्रिय एवं सशक्त संगठित नहीं है। अमेरिका में हिंदुओं के धर्म एवं संस्कृति के बीज तो बिखेरे हैं, परंतु उन्हें पल्लिवत करने एवं सुरक्षित रखने के विशेष प्रयास नहीं किए हैं। सामाजिक-राजनैतिक एवं मीडिया के क्षेत्र में वह पहचान एवं प्रभुत्व स्थापित नहीं किया है, जो समय आने पर हिंदू समाज के साथ खड़ा रह सकें।

अमेरिका के हिंदू समाज ने अपने बच्चों को डॉक्टर, इंजीनियर एवं व्यवसायी तो बनाया है, परंतु एक गौरवशाली दृढ़ हिंदू नहीं बनाया है। सर्वधम, सर्वभाव, नकली धर्म-निरपेक्षता, हिंदू धर्म के इतिहास के सही ज्ञान का अभाव के कुप्रभाव से अमेरिका के हिंदू इंडियन या गुजराती, मराठी, बंगाली, तेलुगू, तमिल या पंजाबी बनकर रह गए हैं, हिंदू नहीं।

आगामी पीढ़ी कितनी हिंदू बनी रह पाएगी, यह तो समय बताएगा। एक कटु सत्य भी ध्यान रखने योग्य है कि अमेरिका में व्यक्ति की पहचान में धर्म की विशेष भूमिका रहती है।

अमेरिका में प्रवासी भारतीयों का इतिहास ५०-६० वर्ष पुराना है। अभी तक अमेरिकन हिंदू एक सुरक्षित, सशक्त, संसाधनों से पूर्ण एक सीमित परिधि में रहे हैं। युवा हिंदू पीढ़ी को किसी स्थानीय समाज से किसी सुनियोजित विरोध का सामना नहीं करना पड़ा है। हिंदुओं की संख्या भी बहुत अधिक नहीं थी एवं अमेरिकी समाज को हिंदू धर्म एवं भारतीय संस्कृति का अधिक परिचय नहीं था। अधिकतर हिंदू शिक्षित एवं समृद्ध थे, अत: उनकी पैठ भी उसी तरह के समाज में थी, परंतु गत दस वर्षों से स्थिति बहुत बदल गई है। २०१४ में मोदीजी के प्रधानमंत्री बनने के बाद एवं भारत में हिंदू समाज के बढ़ते प्रभुत्व एवं सशक्तीकरण के बाद से अमेरिका में हिंदू धर्म एवं अमेरिकन हिंदुओं पर निरंतर लगातार प्रहार हो रहे हैं एवं उनके विरुद्ध सोचा-समझा षड्यंत्र चल रहा है।

वर्ष १९८४ में इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात् खालिस्तानी आंदोलन विफल तो हो गया था, परंतु उसके बीज अभी भी थे। खालिस्तानी समर्थक बड़ी संख्या में कनाडा, अमेरिका एवं इंग्लैंड में जाकर बस गए थे। कालांतर में कनाडा सरकार में सिख अति प्रभावशाली हो गए हैं। सरकार में ५ सिख मंत्री हैं। कुछ मंत्री तो खुल्लम-खुल्ला खालिस्तानी समर्थक रहे हैं।

इसके अतिरिक्त एशिया, मिडिल-ईस्ट एवं अफ्रीका में विस्तार के पश्चात् इसलाम धर्म ने कनाडा, यूरोप एवं अब अमेरिका में अपने पैर फैलाए हैं। सर्वविदित इसलाम की धर्मांतरण, विस्तारवादी एवं आक्रामक नीतियों के कारण आज पूरा पश्चिमी जगत् इसलाम के शिकंजे में जकड़ा हुआ है। अकेले ह्यूस्टन में सौ से अधिक मसजिद हैं। वर्ष २०२१ के चुनाव में राष्ट्रपति बाइडन की जीत में अमेरिका के मुसलिम समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। मुसलिम समाज ने डेमोक्रेट पार्टी को अपनी शर्तों को मनवाने के लिए बाध्य किया।

वर्तमान में वामपंथी, खालिस्तानी एवं मुसलिम धर्मावलंबी संयुक्त होकर यूरोप, कनाडा एवं अमेरिका में हिंदू धर्म, संस्कृति को अपमानित एवं बदनाम करने में लगे हुए हैं। अमेरिका स्कूल-कॉलेज कैंपस में एक घिनौना षड्यंत्र भारत एवं हिंदुओं के विरुद्ध चलाया जा रहा है। इससे हिंदू युवा पीढ़ी का मनोबल टूटता है, उनकी आस्था डगमगा जाती है। यदि यह कुचक्र ऐसे ही चलता रहा तो समय आएगा कि हमारी संतानें स्वयं को हिंदू कहने में संकोच करने लगें।

वर्तमान में वामपंथी, खालिस्तानी एवं मुसलिम धर्मावलंबी संयुक्त होकर यूरोप, कनाडा एवं अमेरिका में हिंदू धर्म, संस्कृति को अपमानित एवं बदनाम करने में लगे हुए हैं। अमेरिका स्कूल-कॉलेज कैंपस में एक घिनौना षड्यंत्र भारत एवं हिंदुओं के विरुद्ध चलाया जा रहा है। इससे हिंदू युवा पीढ़ी का मनोबल टूटता है, उनकी आस्था डगमगा जाती है। यदि यह कुचक्र ऐसे ही चलता रहा तो समय आएगा कि हमारी संतानें स्वयं को हिंदू कहने में संकोच करने लगें।

एक आठ वर्ष का बालक स्कूल से घर आकर अपनी माँ से कहता है, "माँ मोदी तो तानाशाह एवं आततायी है।" ऐसा ज्ञान उसके साथ पढ़ रहे बालक ने दिया है।

हाईस्कूल में पढ़ रही हमारी भानजी की धारणा बन रही है कि "हिंदू महिलाओं को प्रताड़ित किया जाता है, उन पर अत्याचार होता है।" यह कल्पित विचार उसे अपने साथ पढ़ रही एक मुसलिम छात्रा ने दिया है।

डॉक्टर बेटा अपनी माँ से शिकायत करता है, "CAA कानून भारत के संविधान के विरुद्ध है। भारत सरकार अफगानिस्तान से मुसलमानों को आश्रय नहीं दे रही है, मात्र हिंदू-सिख लोगों को आने दे रहे हैं। क्या यह सांप्रदायिक नहीं है?"

अपने पुत्र को बाल-विहार एवं शारता में भेजने वाली माँ अपना सिर धुन रही है।

डॉक्टर पुत्र को यह ज्ञान अपने कार्यक्षेत्र में मिला है। आज अमेरिका के हिंदू माता-पिता बहुत असमंजस में हैं कि अपनी संतान को घर में मर्यादित-सर्वधर्म सम्मान से शिक्षित किया था, परंतु आज वह कार्यक्षेत्र एवं स्कूल-कॉलेज से उलटा ज्ञान एवं संदेश लेकर अपने घर में माता-पिता वयस्क बच्चों को समझाना चाहें, हिंदू इतिहास को बात करना चाहें तो माता-पिता सांप्रदायिक करार कर दिए जाते हैं।

भारत में पारित CAA विधेयक के विरोध में एवं तदुपरांत किसान बिल के विरोध में भारत विरोधी शक्तियों ने एकजुट होकर नगर-नगर अमेरिकन सिटी काउंसिल में विधेयक पारित कराए गए। कैसी हास्यास्पद स्थिति है। अमेरिका के इमिग्रेशन बिल के विरोध में भारत की नगरपालिका में विधेयक लाया जाए? ऐसे तमाशों का कोई औचित्य है? इसका एक मात्र लक्ष्य हिंदू समाज को तोड़ना एवं भटकाना है।

इसके अतिरिक्त न्यूयॉर्क टाइम्स, वाशिंगटन पोस्ट, यू-ट्यूब एवं व्हाट्सएप में निरंतर भारत एवं हिंदुओं पर आक्रमण होते रहते हैं। यहाँ मैं पाठकों को स्मरण करा दूँ कि यह वही गैंग है, जिन्होंने श्री नरेंद्र मोदीजी को अमेरिका का वीजा नहीं मिलने दिया था।

ऐसे दुष्कर, चुनौतीपूर्ण एवं कठिन वातावरण में अमेरिका का हिंदू समाज वैभवशाली एवं समर्थ होते हुए भी स्वयं को हतबल एवं असमंजस में खड़ा दिख रहा है। यदि हमने अपनी आगामी पीढ़ी को उसकी सही पहचान नहीं दिलवाई एवं अमेरिका में हिंदू धर्म को सम्मानजनक स्थान नहीं दिलवाया तो अमेरिका में हिंदू समाज का भविष्य अंधकारमय हो जाएगा। उनका ज्ञान, धन, शक्ति एवं संसाधनों का उपयोग हिंदुओं के विरुद्ध होगा, संभवत: हमारी संतान स्वयं को हिंदू कहना ही बंद कर दे।

यहाँ हमें हिंदू मूलभूत मानसिकता पर चिंतन करना होगा। जिस प्रकार अन्य धर्मावलंबी बहुत समय तक उदार एवं सहिष्णु नहीं रह सकता है, उसी प्रकार एक हिंदू लंबे समय तक कट्टर नहीं रह सकता है। हिंदू धर्म की नीति-आदर्श हमें सर्वधर्म-समभाव, सर्वधर्म-सम्मान का ऐसा उदार दृष्टिकोण देते हैं कि कट्टरता हिंदू मानस में है ही नहीं। इस उदारमना का लबादा ओढ़े हिंदू समाज अपने पर हो रहे अत्याचार एवं अन्याय को नजरअंदाज कर देता है। इसका एक जीवंत उदाहरण आपके समक्ष प्रस्तुत करती हूँ—

गत वर्ष अमेरिका के चुनाव के बाद उपराष्ट्रपति कमला हैरिस ने दो-दो बाइबिल पर हाथ रखकर शपथ ली थी। उनकी माँ हिंदू थीं, इस नाते कमला भी आंशिक हिंदू तो हैं ही, क्या वे एक बाइबिल एवं एक भगवद्गीता पर हाथ रखकर भी शपथ नहीं ले सकती थीं? मेरे द्वारा यह पीड़ा व्यक्त करने पर हमारे दिखावटी निरपेक्ष मित्र ने यह सीख दी, "यह कोई बड़ी बात नहीं है। हम हिंदू तो उदारवादी हैं, हमें अपना दिल बड़ा रखना चाहिए।"

सारी उदारता, हृदय विशालता हम हिंदुओं की झोली में ही क्यों आती है? हमारे अनदेखा करने वाली मानसिकता हमें हिंदू धर्म की रक्षार्थ अडिग खड़े होने नहीं देती है। हिंदू ही एकमात्र समाज है, जो अपने आक्रांताओं का लंबे समय तक महिमा-मंडन करता है।

"अपने शहीदों को बहुत जल्दी भूल जाता है, उनके बलिदान, त्याग पुस्तकों में ही रह गया है।"

मेरी दृष्टि में इसका एकमात्र कारण है, हिंदू धर्म एवं हिंदू समाज पर सदियों से हो रहे आक्रमण एवं अत्याचार का सही ज्ञान का अभाव। आदिकाल से हिंदुओं ने कितना संघर्ष, त्याग एवं बलिदान किया है, उसकी पूर्ण जानकारी नहीं होना।

हमारे बच्चों को यह तो पता है कि होलोकॉस्ट क्या था, परंतु कालापानी की सजा क्या होती थी, यह नहीं ज्ञात। हिंदू बांधवों की दृष्टि में एलेक्जेंडर तो महान् था, जिसने भारत पर आक्रमण किया, परंतु उसके विरुद्ध युद्धरत राजा पोरस, चंद्रगुप्त एवं चाणक्य जैसे युगदृष्टा को नहीं पहचानते।

हिंदुओं की दृष्टि में अकबर महान् था, जिसने चित्तौड़ का जौहर करवाया एवं मुगलों के शासन को भारत में सुदृढ़ किया। महराणा प्रताप कितने वीर एवं महान् थे, इसका कितना ज्ञान हम हिंदुओं को है?

आम हिंदू को सही-सही यह भी नहीं ज्ञात कि चाणक्य, वीर सावरकर, डॉ. हेडगवार, अहिल्या बाई होलकर या गुरुजी (गोलवलकर) कौन थे।

९/११ के आतंकी हमले के पश्चात् एक अमेरिकी मित्र ने अपनी पीड़ा व्यक्त की कि "अमेरिका इस समय पूरी तरह आंतकी शिकंजे में जकड़ा हुआ है।"

अमेरिकी मित्र को मैंने सूचित किया, "अमेरिका पर तो आज आक्रमण हुआ है। भारत तो पिछले दो हजार वर्ष से भी अधिक काल से आंतकवादी आक्रमण झेल रहा है।"

भारत पर प्रथम आतंकी आक्रमण ३०० ईसा पूर्व हुआ था, इसका ज्ञान कितने लोगों को है?

ऐसा नहीं है कि वर्तमान आघातों के चलते हिंदू समाज पूरी तरह हतबल या निराश है। प्रत्येक आक्रमण के साथ उससे बचने के भी उपाय भी सामने आते हैं एवं सशक्तीकरण के अवसर भी मिलते हैं। इसका एक ज्वलंत एवं नवीनतम उदाहरण ९-११-२०२१ को हुए एक वेबिनार से मिलता है।

हिंदू विरोधी शक्तियों 'Dismantling Global Hindutva' वेबिनार का आयोजन किया, जिसमें विश्व भर के चालीस विश्वविद्यालयों ने सहयोग दिया था। इसका एकमात्र लक्ष्य हिंदू समाज की कमर तोड़ना था, विश्वविद्यालय परिसर में हिंदू छात्रों को बदनाम करना एवं उन्हें नीचा दिखाना था। हिंदू समाज की आस्था पर सीधा प्रहार करना था।

इस वेबिनार से अमेरिका का हिंदू समाज तिलमिला उठा। बहु संख्या में इसका विरोध हुआ, विश्वविद्यालयों के अध्यक्षों को बड़ी संख्या में पत्र लिखे गए। इस कार्य में वे हिंदू भी सम्मिलित हुए, जो बहुधा हिंदू-संघर्षों से दूर रहते हैं। इस वेबिनार का इतना विरोध हुआ कि यह वेबिनार पूरी तरह प्रभावहीन रहा।

इस प्रकार के घृणास्पद कुचक्रों से हिंदू समाज और एकत्र संगठित सशक्त हुआ है। यह हिंदुओं के आशावान भविष्य की ओर संकेत हैं। आलेख से पूर्व हमने यह प्रश्न उठाया था कि अमेरिका के हिंदू समाज की पहचान क्या है?

"American Hindu from Indian Origin"

"भारतीय मूल के अमेरिकन हिंदू।"

6070 Eaglet Drive
West Chester, OH-45069 (USA)
renurajvanshigupta@gmail.com

जेब कतरे महान् होते हैं

• गोपाल चतुर्वेदी

हमें आज भी याद है। पिताजी देवास नामक एक शहर में टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज के प्राचार्य पद पर नियुक्त थे और हमें सिंधिया स्कूल ग्वालियर भेज दिया गया था—'जीवन बनाने के लिए।' अपने आज तक पल्ले नहीं पड़ा। किसी स्कूल विशेष में और जीवन बनने में क्या ताल्लुक है? संभव है कि पिताजी के पद और सम्मान के कारण दूसरे प्राध्यापक हमारा विशेष ध्यान रखते हों, पर हमें होमवर्क भी सबके समान मिलता था और क्लास में हल्ला करने पर सजा भी। फर्क केवल इतना था कि होमवर्क की जाँच पर कुछ अधिक ध्यान दिया जाता। जाहिर है कि गलतियाँ भी अधिक पकड़ में आती। उसी अनुपात में डाँट भी पड़ती।

जब हमें 'घर निकाले' का दंड मिला तो हम खासे दुःखी थे। अकेली संतान होने के कारण माँ-बाप का लाड़-प्यार भी कुछ अधिक था और हमारा लगाव भी। तेरह-चौदह वर्ष की आयु में दर छोड़ना कुछ खला भी ज्यादा। आज जब हम स्कूल का सोचते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि वहाँ रहकर जीवनपर्यंत के दोस्त अवश्य बने पर जीवन बना या नहीं, यह कहना कठिन है।

हमें उस आयु में जेब कटने की दुर्घटना का कष्टप्रद और उत्पीड़क स्मरण है। हुआ यों कि पिताजी किसी कार्यवश ग्वालियर आए थे, स्कूल की छुट्टी का भी यही समय था। उन्होंने वहीं, एक सेकेंड हैंड हिलमैन नामक ब्रांड की गाड़ी खरीदी थी। उन्हें कार्यवश ग्वालियर रुकना था। निर्णय हुआ कि हम गाड़ी के साथ देवास भेज दिए जाएँ। इस जिम्मेदारी से हम भी प्रसन्न थे। ड्राइवर रास्ते से परिचित था, हमें बस कार में सवार होकर देवास पहुँचना भर था। रास्ते में खर्च के लिए पिताजी ने हमें दस रुपए की शाही रकम इस निर्देश के साथ दी थी कि "भूख लगे तो रास्ते में कुछ खा लेना और ड्राइवर को भी खिला देना।" दस का नोट जेब के हवाले कर हम स्कूल के दोस्तों को विदा करने रेलवे स्टेशन गए, कार में बैठकर। साथियों से हमने शेखी बदारी कि हम अपनी नई कार में सवार होकर दर जा रहे हैं। इसके पश्चात् देवास के प्रस्थान का कार्यक्रम था। गाड़ी में पेट्रोल वगैरह पहले ही भरवाया जा चुका था। बात उन्नीस सौ पचास-पचपन की है। हम अपने जेब के खजाने से गद्गद थे और अकेले गाड़ी को देवास ले जाने की जिम्मदारी और भूमिका से स्वयं को कुछ कुछ वयस्क भी अनुभव कर रहे थे।

प्रारंभ में, उत्साह वश, सड़क के दोनों ओर की निर्जन हरियाली ने हमें आकृष्ट किया। हम उसी आकर्षण में खोए, दोनों तरफ ताकते, सजग बैठै यात्रा का आनंद उठाते, जागते रहे। इस बीच कब पलक झुकी, कब नींद आई, हमें ध्यान ही नहीं है। गाड़ी के रुकने से आँख खुली तो पाया कि हम एक ढाबे के सामने खड़े हैं। वाहन चालक हमसे पूछ रहा है कि "भैयाजी! कुछ खाइएगा? आलू-बौंडा ताजा तला जा रहा है और गरमा-गरम चाय है।" उसे उत्तर देने के पहले हमने जेब में हाथ डालकर अपनी दौलत 'चैक' की। नोट की जगह रूमाल मिला। दूसरी जेब भी खाली निकली। अपना खजाना गायब था। हमें खयाल आया कि हम स्टेशन गए थे और वहाँ की भीड़-भाड़ में किसी ने कब जेब साफ कर दी, पता ही नहीं चला।

जेबकतरी का यह अपना पहला क्षुधावर्धक अनुभव था। पेट में चूहे कूद रहे थे और मन में संत्रास। जेब कटी तो कटी कैसे? भीड़-भाड़ हो स्टेशन की तो धक्का लगना स्वाभाविक है। हमें भी दो-तीन बार लगे। कौन कहे, इसी दौरान हम कब लूट गए? इस समय और आयु में न व्रत का अनुभव रहता है, न भूख का। जीवन में पहली बार हमें भूखे रहने की पीड़ा महसूस हुई। अपनी विवश स्थिति में हमने ड्राइवर से तो कह दिया कि अभी खाने की इच्छा नहीं है पर मन भारी था। आत्म सम्मान ड्राइवर के पैसे पर कुछ खाने-पीने से रोक रहा था और पेट के चूहों की उछल-कूद उसी ओर आकृष्ट कर रही थी। भूख की दुर्दशा में हमें लगा कि ओठ कुछ सूख रहे हैं, आँखें कुछ नम हो रही हैं और आवाज कुछ कमजोर। यह जीवन में भूख का अपना पहला कटु अनुभव था। तब तो हमने खून के आँसू पिए, पर हम सोचते हैं कि नतीजतन इसी वजह से क्या हमारी संवेदना का दायरा बढ़ गया? आज दुनिया के हर भूखे से हमें दमदर्दी है। अब कभी-कभी खयाल आता है कि हर त्रासदी में सीखने का कुछ तत्त्व है, बस इनसान में झेलने और सीखने की कुछ चाह और लगन होनी चाहिए। पर उस समय तो भविष्य कुछ अंधकारमय और नैराश्यपूर्ण लग रहा था।

रास्ते में एक और ढाबे पर कार रुकी। हमें लगा कि ढाबे का खान-पान हमारी अकाल-पीड़ित दशा पर केवल नमक छिड़कने की साजिश है। ड्राइवर ने फिर लालच दिया। इस बार ढाबे की उपलब्धता सूची, पूड़ी-आलू, समोसे, गुलाबजामुन से और अधिक, आकर्षक और

स्वादिष्ट लग रही थी। यों भूख में हर प्रकार का भोज्य पदार्थ, दिव्य और अलौकिक से शायद कम न हो। बहरहाल, जब तक देवास में देवी की टेकरी के नीचे बने दर पहुँचे, तो भूख-जनित स्थिति से इतने बेहाल थे कि माँ को देखते ही उनसे लिपट कर रोने लगे। उस समय हमारी दु:खी स्थिति देखकर माँ कार के आगमन की खुशी तक न मना पाई। दर में कुछ खाने को मिला तो चैन पड़ा। माँ ने सुझाया कि रास्ते में कुछ खा लेते, ड्राइवर के साथ। उसे पैसे यहाँ दे देते। हम उन्हें कैसे बताते कि भूखे इनसान की अक्ल काम नहीं करती है। भूख जो है, वह पेट को ही नहीं सताती, अक्ल को भी कुंद करती है।

अपनी दूसरी जेब कतरी की दुर्घटना सेवानिवृत्त के बाद की है। जब तक नौकरी में थे, बिजली के बिल के भुगतान जैसे काम बिना व्यक्तिगत प्रयास के, 'व्यक्तिगत सहायक' नामक कर्मचारी द्वारा संपन्न हो जाते थे। बस, हमें उसे बिल और चैक देने की जहमत उठानी पड़ती। दो-तीन दिन बाद भुगतान की रसीद मिल जाती, जो दर जाकर हम पत्नी को सौंप देते। रिटायरमेंट के बाद ड्राइवर यह दायित्व निभाने लगा। एक बार वह छुट्टी पर था तो हमने सोचा कि जब पूरा देश आत्म-निर्भरता की बात कर रहा है तो हम इन छोटे-छोटे कामों के लिए दूसरों पर निर्भर क्यों रहें? हमने बिल की नकदी जेब के पर्स में डाली (तकरीबन चार हजार) और बिजली के दफ्तर में लाइन में लग लिये।

अपनी दूसरी जेब कतरी की दुर्घटना सेवानिवृत्त के बाद की है। जब तक नौकरी में थे, बिजली के बिल के भुगतान जैसे काम बिना व्यक्तिगत प्रयास के, 'व्यक्तिगत सहायक' नामक कर्मचारी द्वारा संपन्न हो जाते थे। बस, हमें उसे बिल और चैक देने की जहमत उठानी पड़ती। दो-तीन दिन बाद भुगतान की रसीद मिल जाती, जो दर जाकर हम पत्नी को सौंप देते। रिटायरमेंट के बाद ड्राइवर यह दायित्व निभाने लगा। एक बार वह छुट्टी पर था तो हमने सोचा कि जब पूरा देश आत्म-निर्भरता की बात कर रहा है तो हम इन छोटे-छोटे कामों के लिए दूसरों पर निर्भर क्यों रहें? हमने बिल की नकदी जेब के पर्स में डाली (तकरीबन चार हजार) और बिजली के दफ्तर में लाइन में लग लिये।

हम सोचते हैं तो पाते हैं कि "क्यों भारत की अनियंत्रित आबादी की देन है। जहाँ एक था, वहाँ अब दस दर हैं और उतने ही बिजली के बिल।" आधे घंटे की प्रतीक्षा के पश्चात् अपनी बारी आई। हमने काउंटर पर बैठे सज्जन को बिल देकर भुगतान के लिए जेब में हाथ डाला तो पर्स नदारद। हड़बड़ाहट में हमने हर जेब की तलाशी ली। नतीजा वही सिफर का सिफर। पर्स किसी भलेमानुस के हाथ की सफाई का शिकार बन चुका था और यदि होता तो शर्तिया बरामद होता। अब तक वह किसी और जेब की शोभा बढ़ा रहा होगा। हम काउंटर से तब हटे, जब बैठे बाबू ने याद दिलाया कि "कहाँ खो गए, साहब? पैसे नहीं हैं तो यह लीजिए बिल। बाद में जमा करवा दीजिएगा। आप कहीं लेखक-कवि तो नहीं हैं? हमारे एक सहयोगी कविता लिखते हैं और ऐसे ही खयालों की दुनिया में खोए रहते हैं।"

लेखक-कवि उसने इस हिकारत के अंदाज में कहा जैसे वह हमें गंजेड़ी को गाली दे रहा हो। हम उसे कैसे बताते कि हम अफसर नामक ऐसे जंतु हैं, जो सरकारी जीवन में पी.ए. नामक संस्था पर ऐसा निर्भर रहता है कि जिंदगी के हर रुटीन काम से अनभिज्ञ हो जाता है। उसकी टिप्पणी से हमें लगा कि यह ऐसा व्यक्ति है, जिसे लेखक-कवि नामक प्राणी से नफरत है। क्या पता अफसर के विषय में भी उसकी यही धारणा हो? हमें यह अहसास भी हुआ कि लेखक-कवि की आज के समाज में इतनी प्रतिष्ठा है, कि लोग उन्हें गंजेड़ी-भंगेड़ी की श्रेणी में रखते हैं?

गिरहकटी की इस त्रासद वारदात से हमें लगा कि पॉकेटमारी, अपराध तो है, पर यह एक अहिंसक कला भी है। जरूर इसका कोई प्रशिक्षण केंद्र होगा? पर ऐसा नहीं है, यदि होता तो कोई-न-कोई विज्ञापन जरूर किसी-न-किसी अखबार या आभासी माध्यम में आता, जमाना ही अपना ढोल पीटने का है। पर हो तो आए? कहीं जेबकतरी जन्मजात प्रतिभा तो नहीं है? इधर हमने किसी जेबकतरे की गिरफ्तारी की खबर भी नहीं पढ़ी है। कौन कहे, यह पुलिस की जेब से गिरफ्तारी का वारंट ही उड़ा लेते हो? यों हमारी जेब कटना एक अपवाद है। सामान्य तौर पर इधर अहिंसक गिरहकटी की तादाद में कमी आई है। इसके विपरीत हिंसक अपराधों जैसे अपहरण, डकैती, बलात्कार, हत्या वगैरह का जोर बढ़ा है। यह इनकी संख्या-वृद्धि से स्पष्ट है।

हमें लगता है कि सरकार भी गिरहकटी की शांतिमय कला से प्रभावित है। यह ऐसा अपराध है, जिसमें जीवन पर नहीं, सिर्फ जेब पर बीतती है। यही क्या कम है कि जान बची है? जेब तो, जिंदगी रही, तो फिर भर सकती है? हत्या या बलात्कार में ऐसी संभावना शायद ही संभव हो। हत्या के बाद जीवन का प्रश्न ही कहाँ है? बलात्कार, अपहरण भी मानसिकता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। इनका शिकार शायद ही सामान्य जिंदगी बिता पाता हो। हमें कभी-कभी संदेह होता है कि दूसरे जानलेवा, जघन्य और गंभीर अपराधों के मुकाबले जेबकतरी, बढ़ती बेरोजगारी के दिनों में एक सभ्य, शरीफ और सैक्युलर धंधा है।

इधर देखने में आया है कि कट्टर और धर्मांध अपराधी भी गुनाह मजहब देखकर करते हैं। नाम देखकर शक हुआ तो अन्य धर्म वाले की दुकान जला दी। यदि बैर या दुश्मनी ज्यादा पनपी तो पूरी बस्ती ही आग के हवाले कर दी। यों देखा जाए तो कोई भी धर्म हिंसा की न पैरवी करता है, न सीख देता है। जैसे बेगुनाहों को सजा न्याय व्यवस्था का मखौल है, वैसे ही कट्टरता धर्म का। हमारे एक मित्र की मनोरंजक टिप्पणी है, "कट्टरता की पहचान दाढ़ी में झलकती है। चाहे वह मुल्ला, कठमुल्ला हो या दाढ़ी सज्जित मठाचार्य अथवा संत-महात्मा। क्यों न हम दाढ़ी पर ही बैन लगा दें? जब से पड़ोसी देश के प्रयत्नों से आतंकी भारत के सीमावर्ती क्षेत्र में पनपे हैं, गुनाहों का मजहबीकरण भी बढ़ गया है। उस मुल्क की इकलौती आकाँक्षा आतंक को कोरोना सा पूरे भारत में फैलाना है। इसे भारतीय प्रजातंत्र की सिफत ही कहेंगे कि इसके बावजूद सामाजिक समरसता में आँच नहीं आई है।

गिरहकटी में जेबकतरा न आदमी का धर्म देखता है, न जात। उसका

पूरा ध्यान निशाने पर आए व्यक्ति की जेब तक सीमित होता है। गनीमत है कि सिर की टोपी भले हो, जेब किसी संप्रदाय या जाति की पहचान अभी तक नहीं बनी है। इस नजरिए से देखें तो जेबकतरी या गिरहकटी पूरी तरह से एक धर्म-निरपेक्ष और अहिंसक धंधा है। कौन कहे, इसीलिए, देश के दलों को दूसरी पार्टी के दल-बदलुओं को अपने सियासी गठजोड़ में शामिल करने से परहेज नहीं है? सबको पता है कि भारत एक ऐसा सैक्युलर देश है, जहाँ सत्ता कब्जाने के अलावा किसी भी दल का कोई सिद्धांत नहीं है।

दलों का दावा है कि भारत की हर प्रजातांत्रिक सरकार जनकल्याण की नीति से संचालित है। कहने को उसकी सर्वोच्च प्राथमिकता हर वर्ग का हित है। हमारे विशाल प्रजातंत्र में अपराधियों का भी एक वर्ग है। सरकार का लक्ष्य उन्हें जघन्य और हिंसक अपराधों से दूर करना है।

कभी-कभी हमें लगता है कि सरकार इस दिशा में उचित कदम उठा चुकी है। नहीं तो सरकार में अनिवार्य रूप से एक वित्तमंत्री क्यों होता? यदि कोई वित्तमंत्री के पद और कार्य का गहन अध्ययन करे तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि वित्तमंत्री का मुख्य काम जनता से आयकर वसूलकर सरकार का खजाना भरना है। जहाँ जेब है और उसमें पैसा है, वित्तमंत्री कर के माध्यम से, उसे काटने को अधिकृत है। वह इसे उचित और न्यायोचित यों ठहराता है कि इस गिरहकटी के धन से विकास होगा, नई योजनाएँ सड़कें, पुल, बाँध बनेंगे। रोजगार, नौकरी के अवसर उपलब्ध होंगे। रिक्त जेबें भरी जाएँगी।

दीगर है कि शासकीय जेबकतरी का पैसा आता तो जनता की जेब से है, जाता कहाँ है, यह किसी को नहीं पता है, किंतु जन-कल्याण के गजदंती आदर्श के प्रदर्शन से परहेज क्यों हो? वह भी ऐसे नेता को जिसका पूरा जीवन ही परोपकार के डैंचर की नुमाइश में बीतता है। असल में परनिंदा, स्वार्थ, भ्रष्टाचार, महत्त्वाकांक्षा के असली दाँत उखड़वाकर, आदर्शों के डैंचर लगवाना, नेता बनने की प्राथमिक शर्त है। अब उसके पास सत्य, अहिंसा, नैतिकता, उपदेश, जनकल्याण की खाली-पीली बातों के विभिन्न डैंचरों का भंडार है। वह सुविधानुसार इनके सार्वजनिक प्रयोग से जनता-श्रोता को उल्लू बनाने की महारत रखता है। कमाल तो यह है कि अब उसके पत्नी, बच्चों को ही नहीं, उसे स्वयं भी डैंचर के नुमायशी आदर्श अपने जीवन-मूल्यों में समाहित लगने लगे हैं। उसे भ्रम है कि वह इन्हीं मूल्यों का जीता-जागता उदाहरण है। जैसे हिरण्यकशिपु को मुगालता था कि वह अमर है? सरकार खुले आम कहती तो नहीं है, पर उसका मूल उद्देश्य जघन्य और हिंसक अपराधियों का हृदय-परिवर्तन है। ऐसे सब आदर्श सरकार के उदाहरण का अनुकरण करें और जेबकतरी जैसे नायाब धंधे में लगें।

इसी तर्ज पर कुछ वित्तमंत्रियों को विश्वास है कि वह सिर्फ अधिकृत सरकारी गिरहकट न होकर, देश के भविष्य के निर्माता भी हैं। मुल्क की तरक्की, बेरोजगारी का उन्मूलन, मूल्यों की आकाशीय प्रवृत्ति की रोकथाम, उद्योगों की उड़ान, वह सब नियंत्रित करने में समर्थ हैं।

कोई सोचे। यदि यह वाकई सच होता तो उन्हें सरकार के सर्वोच्च और कुशल जेबकतरे न होकर अर्थशास्त्र की कुशल और ज्ञानी हस्ती के रूप में न जाना जाता? पर सबके अपने-अपने महानता के मुगालते हैं। वित्तमंत्री खजाना भरने की गिरहकटी ही को अपनी महानता मानता है।

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC-BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

जीवाणु सम्मेलन

● कर्नल पी.सी. वशिष्ठ

"क्या मानव जगत् में शादियों का मौसम चल रहा है?" एक जीवाणु ने दूसरे से पूछा, दूसरे जीवाणु ने प्रतिप्रश्न किया, "यह शादी क्या होती है।" पहले ने जवाब दिया, "यह वंशवृद्धि तथा साथ-साथ रहने का सामाजिक अनुबंध जैसा होता है।" दूसरे ने फिर प्रश्न किया, "हमारे समाज में यह अनुबंध और शादियाँ तो नहीं होतीं, परंतु फिर भी हम वंशवृद्धि करते हैं और साथ-साथ रहते भी हैं।" "हममें और उनमें यही अंतर है," पहले ने कहा। "पहले ने फिर दूसरे से पूछा, "यह शादी के मौसम से क्या अभिप्राय है, आपको यह कैसे पता चला कि मानव जगत् में शादियों का मौसम चल रहा है।" "साफ सी बात है, हमारे भोजन का स्रोत नालियाँ, कूड़े के ढ़ेर, गड्ढे, गंदगी का समूह आदि ही तो हैं, और इनमें आजकल अच्छे-अच्छे पकवानों, मसालेदार सब्जियों, फलों के छिलके, अवशेष, मिठाई खाए हुए दौने, कई प्रकार के सॉसेज, कुछ खाली मैदा से बने भोजनों के अवशेष के आधे खाए हुए बरतन, पत्तल आदि बहुतायत में आते हैं, इसी से अनुमान लगाया।" "अच्छा अपनी वंशावली के बारे में कुछ और बताओ।"

"क्या बताएँ, बस इतना जान लो कि हमारी दुनिया परमाणु बंबों वाली मानव की दुनिया से कम शक्तिशाली नहीं।"

"वो कैसे?"

"इसलिए कि हमारे कुछ वंशज हड्डियों को गलाने, खाकर नष्ट करने की कला में माहिर हैं। पोलियो, दाँतों के जीवाणु, रक्त विकार जीवाणु, त्वचा रोगवाले रोगाणु; आँख, नाक, कान, बाल, नाखून, गला इन सबको निष्प्रभावी करने में हम सक्षम हैं और हमारे कई वंशज कितने ही मानवों को अपंग बना चुके हैं। एक बार हम किसी जीवधारी को अपंग बना दें तो कोई भी इलाज उसे ठीक नहीं कर सकता। हम तो पौधों और फसलों को समूल नष्ट करने में सक्षम हैं। मानव द्वारा विकसित सभी चिकित्सा अनुसंधान हमारे वंश को पूरी तरह नष्ट नहीं कर सकते। हम किसी-न-किसी रूप में पुनः प्रकट हो जाते हैं। यहाँ तक कि हम तो

सेना में शिक्षा अधिकारी के पद पर ३४ वर्षों की सेवा के बाद सेवानिवृत्त। सैन्य सेवा काल में हिंदी-अंग्रेजी, अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद कार्य तथा रेजिमंटल मैगजींस में हिंदी सेक्शन का संपादन कार्य। वर्तमान में जिला बुलंदशहर के विकास कार्य तथा सामाजिक सेवा में संलग्न; दोहा लेखन तथा कहानी लेखन में व्यस्त। सैन्य शिक्षा प्रशिक्षण में विशेषता।

आनुवंशिक वृद्धि भी कर लेते हैं, यानी एक शरीर से उसकी संतानों में भी पहुँच जाते हैं। दुनिया का कोई भी स्थान ऐसा नहीं, जहाँ हमारा साम्राज्य नहीं। मानव निर्मित रसायनों का प्रभाव वहीं तक रहता है, जहाँ तक मानव की पहुँच है, जो हर जगह पर नहीं है। हमारे वंशज बीच में कहीं भी स्थान पाकर आनन-फानन में वंशवृद्धि करके अपने आक्रमण को जारी रखते हैं। किसी प्राणी की रोग प्रतिरोधक क्षमता कितनी भी मजबूत क्यों न हो, हम उसका भी विनाश करने में सक्षम हैं। बड़े से बड़ा प्राणी हमारा सामना नहीं कर सकता, क्योंकि हम आक्रमण करते हुए भी वंशवृद्धि कर सकते हैं और एक दशमलव वाले बिंदु के क्षेत्र में ढाई लाख समा सकते हैं एवं अपनी आबादी २४ घंटे में डेढ़ करोड़ तक बढ़ाने में समर्थ हैं। हम ईश्वर की आवश्यकताओं का ध्यान रखने की योग्यता भी रखते हैं।"

"थोड़ा और विस्तार से समझाओ।"

"स्पष्ट है कि हमसे ही पौधों में परागण, वृद्धि आदि-आदि संभव है। फलों की मात्रा, गुण हमारे द्वारा ही पनपते हैं। इन्हीं से जीवों का पेट पलता है।"

"स्वयं को ईश्वर का मददगार कैसे मानते हो?"

"हर प्राणी को प्राण त्यागने पड़ते हैं। इसके बाद उसके स्थूल शरीर को हम ही ठिकाने लगाते हैं, इसी से आसपास रहनेवाले बाकी प्राणियों को जीवित रहने का वातावरण मिलता है। यदि हम मृत प्राणियों के शरीर को ठिकाने न लगाएँ तो आसपास के बाकी प्राणियों का अंत भी सुनिश्चित हो जाएगा, क्योंकि हमारे ही वंशज कैंसर, प्लेग, कोरोना जैसी

महामारियों के जनक, वाहक, उत्पीड़क, मारक सबकुछ हैं। यहाँ मानव की कमजोरियाँ हमको हास्यास्पद लगती हैं, जब एक वर्ग दूसरे वर्ग को नष्ट करने के लिए हमारी वंशवृद्धि के लिए हमारी प्रजातियों के असीम विस्तार का इंतजाम करता है। हमारा विस्तार और विकास अनियंत्रित होने पर पूरी पृथ्वी के प्राणियों को चपेट में लेने की क्षमता रखता है।"

"क्या आप अजर-अमर हैं?"

"हाँ, धरती वर जीवों के आने से पहले हम ही आए थे, और संपूर्ण जीवों के विनाश के बाद भी हमारा ही साम्राज्य होगा। प्राणी तो आते-जाते रहते हैं, परंतु सृष्टि के पूर्व और प्रलय के बाद भी हमारा अस्तित्व बरकरार रहता है। क्योंकि हम ही अंततः सृष्टि का प्रारंभ और हमारे ही द्वारा सृष्टि का अंत भी होता है, चाहे वे किसी भी रूप में हो।"

"पूरे विवरण के साथ समझाएँ।"

"क्या बताएँ, जीवों के शरीर पर लगे जख्मों को हम ही बढ़ाते-घटाते हैं, और इस प्रक्रिया में अपनी जान भी गँवा देते हैं।"

"कैसे?"

"मानव/जीवों आदि के शरीर में पाई जानेवाली श्वेत रक्त कणिकाएँ जख्म पर आकर हमारा भक्षण कर मवाद में बदलकर स्वयं भी नष्ट हो जाती हैं और जख्म पर हमारी पकड़ ढीली हो जाती है।" जीवों के सिर से लेकर पैर तक हमारी मौजूदगी कोई नहीं रोक सकता। पृथ्वी के हर चर-अचर प्राणी का जन्म, जीवन और मृत्यु हमारे किए ही संचालित होते हैं। हम तो पेड़-पौधों, लता-पत्रों आदि का जीवन-चक्र भी नियंत्रित करते हैं। वायुमंडल के कण-कण, जल की बूँद-बूँद और हर ठोस, द्रव और गैस में हमारी उपस्थिति अबाध रूप से जारी रहती है।"

"कुछ और बताएँ?"

"हमारी उपस्थिति से वही बच सकता है, जिसका स्थूल रूप न हो, जैसे जीवों की रूह या आत्मा। उनके शरीर के लिए हमारी मौजूदगी परमावश्यक है। हमारे बिना वे अस्तित्वहीन हो जाएँगे।"

"वाह!"

"आगे सुनो, हमारी एक प्रजाति जीवन की मूल इकाई यानी डी.एन.ए. में भी प्रवेश करने में सक्षम है, मानव साइंस इसे कैंसर कहती है।"

"अपने प्रकृति से संबंधों पर कुछ और प्रकाश डालिए।"

"अवश्य, जीवों के जन्म, पालन, मरण में तो हमारा हाथ होता ही है, पृथ्वी माँ के उत्पादों को खाकर पुष्ट हुआ, जीव अपनी हड्डियों पर जो परत चढ़ा लेता है, जीव की मृत्यु के बाद उसे गलाकर धरती माँ को पुनः उर्वरक बनाते हैं और फिर इस प्रक्रिया में स्वयं भी अपना शरीर त्यागकर धरती माँ को भेट कर उसका कर्ज उतार देते हैं। इस प्रकार यह चक्र हमारे चलाए की चलता रहता है।"

"कुछ और विस्तारपूर्वक समझाएँ।"

"समुद्रतल और समुद्र की सतह पर हमारा राज रहता है। हमारे ही द्वारा सामुद्रिक जीवों का जीवन-चक्र संचालित होता है। यहाँ तक कि इन जीवों के क्षरण के बाद भी हम ही इनके शरीर को ठिकाने लगाकर, बाकी जीवों के जीवनयापन का मार्ग प्रशस्त करते हैं।"

"आपके जीवनचक्र का आधार क्या है?" एक अन्य जीवाणु ने प्रश्न किया।

"जिजीविषा, हम दरअसल किसी भी हालत में जीवित रहने की कला में पारंगत हैं, हम रूप बदलकर तुरंत अपनी वंशावली को जारी रखते हैं।"

"क्या आप सूक्ष्म शरीरों को भी प्रभावित करते हैं।" एक अन्य जीवाणु ने प्रश्न किया।

"आंशिक तौर पर।"

"इसे थोड़ा स्पष्टीकरण के साथ समझाएँ।" एक अन्य जीवाणु ने जिज्ञासापूर्वक कहा।

"जीवधारियों में हमारे एक वर्ग की अधिकता उनमें एक खास प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न करती है और दूसरे वर्ग की अधिकता कुछ अन्य प्रकार की भावना।"

"जीवाणुओं की भीड़ में से एक ने पूछा कि भावनाओं को प्रभावित करने की अपनी योग्यता पूरी तरह से समझाएँ।"

"दरअसल हमारे एक वर्ग की अधिकता कुछ विशेष रसायन जीवों के शरीर में उत्पन्न करती है, यह हमारी संख्या पर भी आधारित है, यही कारण है कि एक सी परिस्थितियों में परवरिश होने पर भी सभी जीवों की आदतें/प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। ये हमारे ही कारण हैं।"

"भीड़ के बड़े वर्ग ने पूछा कि आप ये सब कैसे कर लेत हैं?"

"जीवाणुओं का प्रवक्ता बने जीवाणु ने कहा कि सभी जीवों का लोक सिर्फ भावनाओं से संचालित होता है। भावनाएँ जन्मजात होती हैं। जन्म लेते ही माँ और शिशु के बीच भावनाओं का अदृश्य सेतु स्थापित हो जाता है। क्योंकि इसका कोई स्थूल रूप नहीं है, इसलिए यह सार्वभौमिक और शक्तिशाली होता है। भक्ति, श्रद्धा, लज्जा, प्यार, सुख, दुःख, घृणा, वात्सल्य, ये सभी स्थूल रूप न होने के कारण अत्यंत शक्तिशाली, शाश्वत और सर्वव्यापी हैं। हम भी इसी प्रकार ईश्वरीय शक्तियों के वाहक हैं। क्योंकि स्थूल रूप नहीं है, सिर्फ सूक्ष्म रूप ही है, अतः अन्य सूक्ष्मरूपी विचारों को प्रभावित करने में सक्षम हैं। जीव हमारे मुकाबले बहुत कमजोर है। हमारा सूक्ष्म होना ही हमारी सबसे बड़ी शक्ति है।"

इसी विचार के साथ करतल ध्वनियों के बीच जीवाणु सम्मेलन समाप्त हुआ।

इस करतल ध्वनि को सिर्फ ईश्वर ने सुना और सराहा।

सा.अ.

ई १-८०२, हरिगंगा सोसाइटी, आर.टी.ओ. के सामने,
विश्रांतवाड़ी, पुणे-४११००६ (महा.)
दूरभाष : ७७९८४२४२९३

विस्थापन : एक अनवरत यात्रा

• देवी प्रसाद तिवारी

जो जहाँ था वहीं से भागा, न तो दिशा तय करनी पड़ी, न ही देश, क्योंकि संप्रादायिक तनाव से उपजा विस्थापन धुएँ के उस गुबार की तरह होता है, जो देखते-ही-देखते कब बादलों के साथ एकाकार हो जाता है पता भी नहीं चलता। चारों तरफ मजहबी नारों की गूँज के आगे सिसकियाँ कमजोर पड़ जाती हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों और स्त्रियों का सर्वाधिक उत्पीड़न होता है। राहत शिविरों से लेकर स्थाई बंदोबस्त होने तक कितने दु:ख कितनी पीड़ा इसका सिर्फ अंदाजा ही लगाया जा सकता है। गुरुदत्त का उपन्यास 'देश की हत्या' ऐसे अनेक प्रसंगों से पटा पड़ा है, जहाँ सांप्रदायिक तनाव के कारण लोगों को भयानक हिंसा का शिकार होना पड़ा। सड़कें रक्त से लाल हो उठीं। हिंदुओं और सिक्खों की बड़ी आबादी विस्थापित हुई। वे ज्यादा संकट में पड़े, जिनका भरोसा लाहौर और रावलपिंडी के प्रशासन पर था या फिर जिन्हें सामुदाय विशेष के अपने मित्रों पर था। ऐसा नहीं है कि उन्हें समय पर आगाह नहीं किया गया, लेकिन कहाँ वर्षों का साथ और कहाँ क्षण भर की सलाह। हम आपके लिए जान दे सकते हैं, ऐसा विश्वास दिलाने वाले जब जान लेने पर उतारू हो जाएँ तो बस इस पागलपन का अंदाजा ही लगाया जा सकता है। 'देश की हत्या' उपन्यास में चित्रित रावलपिंडी का एक गाँव गूजर खाँ के सिक्खों को अपने मुसलिम मजदूरों पर इतना भरोसा था कि विपरीत परिस्थिति आने पर वे उनके लिए जान की बाजी लगा देंगे, लेकिन होता है इसके बिल्कुल उलट। कर्म सिंह जो की परिवार का मुखिया है अपने अनुभव के आधार यह तय करता है कि उसे धन और स्त्रियों के साथ किसी सुरक्षित स्थान की ओर चले जाना चाहिए, लेकिन पौरुषवान पुत्रों के आगे उसकी एक न चली आखिर परिवार का एक मात्र सदस्य किसी तरह भारत पहुँचने में सफल हो पाता है, बाकि सब मारे गए। विस्थापन भयानक हिंसा और आक्रोश का सामना करते हुए जीवित बच गए लोगों की दास्तान है। 'देश की हत्या' उपन्यास में नीना और राधा दो ऐसी स्त्री पात्र हैं, जो किसी प्रकार पाकिस्तान से भारत पहुँचने में सफल तो हो जाती हैं, लेकिन उनके किसी मुकम्मल ठौर की तलाश अंत तक पूरी नहीं हो पाती। नीना अपने

सुपरिचित लेखक। पीएच.डी. (हिंदी साहित्य) काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी। पत्र-पत्रिकाओं में शोध आलेख, समीक्षा एवं यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित। शोध विषय : आधुनिक हिंदी कवियों का लोक भाषा साहित्य।

पिता केवलनारायण के विचारों से कतई सहमत नहीं है और धीरे-धीरे बदलती फिजा से यह साबित भी हो गया कि नीना का मतभेद जायज है। नीना की माँ हिंसा का शिकार होती है और यदि नीना समय पर ताँगे से कूद न जाती तो शायद उसके साथ भी वही होता, जो उसकी माँ के साथ हुआ। नीना राहत शिविरों में रहते हुए उन अभागे लोगों की सेवा में लग जाती है, जो दूसरों की गलती के कारण एक ऐसा जीवन जीने को बाध्य हो चुके थे, जहाँ से घर वापसी कोरी कल्पना मात्र थी। नीना पहली बार याकूब से तो बच निकलती है, लेकिन दूसरी बार अपहरणकर्ताओं के चंगुल से बच निकलना मुमकिन नहीं रहा। लुटेरों ने उसका सौदा किया और पहले से ही दो बीबियों का शौहर उसे पाँच सौ में खरीदता है। मामला यहीं खत्म नहीं हो जाता, उसका एक बार फिर सौदा होता है और इस बार वह रहीम की अमानत बनकर कश्मीर पहुँच जाती है। यहाँ भी किस्मत उसके साथ खेल खेलती है और वह एक बार फिर राहत शिविर में पहुँचा दी जाती है। नीना ने हिंसा का शिकार हुए लोगों का कष्ट करीब से अनुभव किया था, इसलिए उसने अपने लिए ऐसे मार्ग का चुनाव किया, जो अपेक्षाकृत कठिन था। पार्वती और चेतनानंद जैसे लोगों के संपर्क में बने रहने से उसे बल मिलता रहा। कश्मीर से वह दिल्ली आती है, यहाँ भी उसका सौदा होता है, लेकिन नियति ने कुछ और ही तय किया था और इस बार वह बच गई। राधा का जीवन तो बच गया था, लेकिन जिस आघात के साथ वह जी रही थी, वह दिनों दिन उसे दुर्बल करता जा रहा था। वह स्रोत को सुखा देना चाहती थी, जहाँ से हिंसा पोषित हो रही थी, उसका ऐसा मानना था कि जब तक हम उस स्रोत

तक नहीं पहुँचते इसका निदान संभव नहीं। राधा दिल्ली पहुँचकर भी राहत शिविरों में ही रहती है, अनाथ बच्चों की सेवा करती है, लेकिन अपना घर या अपना परिवार तो बस कल्पना ही थी। नीना के पिता केवलनारायण की अदूरदर्शिता के कारण नीना जैसी साहसी स्त्री को दु:ख झेलना पड़ता है।

गुरुदत्त का उपन्यास 'देश की हत्या' पढ़ते हुए यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि तत्कालीन राजनेताओं की अदूरदर्शिता के कारण आम जनता को एक ऐसी त्रासदी का सामन करना पड़ा, जिसके लिए वह पहले से तैयार नहीं थी। इसे यों भी कहा जा सकता है कि आम जन मानस को धोखे में रखा गया। विभाजन के दौरान एक समय ऐसी स्थिति आ गई कि पाकिस्तान की फौज ने सीमा पर तलाशी तक शुरू कर दी। लोगों को खाली हाथ भारत की ओर भेज दिया गया।

रावलपिंडी में विभाजन के दौरान हुआ दंगा कोई पहला दंगा तो था नहीं इससे पहले भी वहाँ भयंकर दंगे हुए बावजूद इसके समय रहते सतर्क न होना तत्कालीन नेतृत्व की विफलता नहीं तो और क्या है ? प्रेमचंद की 'जेहाद' कहानी १९२७ ई. में आती है, जिसके कथ्य का आधार दो एक वर्ष पहले रावलपिंडी में हुआ दंगा ही है। विभाजन से पहले अंग्रेजी शासनकाल में दंगों की एक लंबी फेहरिस्त है। कभी कलकत्ता में, कभी ढाका, कभी लाहौर, मुल्तान और रावलपिंडी में दंगे हुए, लेकिन हर बात पर समझौता करने वाली कांग्रेस को विभाजन के दौरान होने वाली हिंसा का अंदेशा नहीं रहा होगा, इससे बड़ा झूठ भला और क्या हो सकता है ? कबायली हमलों में कश्मीरी हिंदुओं का कत्लेआम हुआ, जो बच गए उन्होंने कश्मीर छोड़ दिया यही तो हमलावरों का असल उद्देश्य था कि घाटी में इतना डर पैदा करो कि हिंदू घाटी छोड़ दे। जो कुछ रह गए उन्हें १९८९ ई. में बेदखल किया गया। विस्थापित लोगों की वापस लौटने की आशा और सरकारों की यथास्थिती बनाए रखने की नीति में विरोधाभास साफ झलकता है, चाहे वह १९४७ ई. के समय का विस्थापन हो या फिर उसके बाद का। विभाजन के दौरान विस्थापित हुए हजारों हिंदू परिवारों को वर्षों तक उनके मूल अधिकारों से वंचित रखना सरकारी नीतियों पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने के लिए पर्याप्त है। हजरतबल में बाल गायब हुआ, जिसके कारण पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में हिंदुओं पर अत्याचार हुए, अनेक जगहों पर दंगे हुए, परिणामस्वरूप लोगों ने अपनी मूल भूमि को छोड़कर सुरक्षित स्थानों का रुख किया। १९७१ ई. में पंजाबी मुसलमानों और बंगाली मुसलमानों की वर्चस्व की लड़ाई में हिंदुओं का नरसंहार हुआ, जो बच गए विस्थापित हुए। मारवाड़ियों की मिलों पर बलात् कब्जा कर लिया गया। उनके बैंक खाते अचानक सीज कर दिए गए। उनकी देश भक्ति पर संदेह किया गया। गाँव के गाँव खाली करा लिये गए। हिंदुओं के साथ बंगाली मुसलमानों ने भी भारत का रुख किया, जिसके कारण भारत की मूल आबादी प्रभावित हुई। पूर्वोत्तर के सीमावर्ती राज्यों और पश्चिम बंगाल में विस्थापितों और मूल आबादी के बीच हक हकूक की लड़ाई चलती रहती है। असम की सरकारी जमीनों पर बिना किसी आवंटन के आज भी शर्णार्थियों का कब्जा बरकरार है। बेदखली की आशंका सदैव बनी रहती है।

हाल ही में असम में १९७१ ई. से कब्जा की गई सरकारी जमीन को खाली कराने गई पुलिस टीम पर ही हमला कर दिया गया। बांग्लादेश में बंगाली मुसलमानों का ही शासन है, फिर भारत में रह रहे विस्थापित बांग्लाभाषी अपने मूल देश को वापस क्यों नहीं गए ? यह एक बड़ा सवाल है। अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' में बांग्लादेश से विस्थापित लोगों का दर्द मानो फट पड़ा है। उपन्यास के पात्र कुलभूषण के पिता कुष्टिया इसलिए नहीं छोड़ने को तैयार होते हैं कि उन्होंने यहाँ अपना बचपन, अपनी जवानी बिताई है। पूर्वजों की निशानी उनके हाथ है, आखिर इसे ऐसे कैसे इसे छोड़ा जा सकता है, लेकिन ऐसी भी परिस्थिति आ पड़ती है कि जीवन संकट में पड़ जाता है और उन्हें अचानक सबकुछ छोड़कर भागना पड़ता है। उपन्यास की स्त्री पात्र अमला पंजाबी मुसलिम फौजियों के आतंक का शिकार होती है। पंजाबी मुसलिम फौजियों का बंगालियों पर नियंत्रण का तरीका इतना बीभत्स था कि घर जलाना और महिलाओं के साथ बलात्कार तो आम बात थी। नृशंसता इतनी की मनुष्यता काँप उठे। धर्मवीर भारती ने बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के दौरान बतौर पत्रकार युद्धक्षेत्र की यात्रा की। उनका यात्रा-वृत्तांत 'युद्ध-यात्रा' शीर्षक से प्रकाशित है, जिसमें पाकिस्तानी सेना की नृशंसता के अनेक दृश्य चित्रित हैं। धर्मवीर भारती लिखते हैं—"उन्होंने देखा कि पाकिस्तानी सिपाहियों का एक दस्ता, अंधाधुंध इधर-उधर बंगाली घरों पर फायरिंग करता हुआ, गालियाँ बकता हुआ चला आ रहा है। उनके साथ तीन बंगाली युवतियाँ हैं। दो अर्धनग्न, अचेत, जिन्हें टाँगें व बाँहें पकड़कर वे झुलाते हुए ला रहे हैं। अकस्मात् दूसरा दस्ता आया। आते ही जानवरों की तरह हो-हो कर उछला और तीसरी औरत को वहीं सड़क पर गिरा दिया।" भौगोलिक ताने-बाने और भारत की दूरदर्शी नीतियों के कारण पश्चिमी पाकिस्तान बस पाकिस्तान रह गया, जब पूर्व में उसका कुछ रहा ही नहीं तो पश्चिम की अवधारणा स्वत: समाप्त हो गई। बांग्लादेश को मान्यता मिली, लेकिन विस्थापितों में वापस जाने का आत्मविश्वास पैदा न हो सका या फिर इसे यों भी कहा जा सकता है कि भारत के विस्थापितों के प्रति नरम रुख के कारण ऐसा नहीं हुआ। विस्थापित हिंदू भय वश वापस नहीं गए या फिर उन्होंने जाना उचित समझा, लेकिन मुसलमान तो जा ही सकते थे, लेकिन वे गए नहीं और न ही वहाँ की सरकार ने पुर्नवास का अवसर ही दिया।

हाल ही में असम में १९७१ ई. से कब्जा की गई सरकारी जमीन को खाली कराने गई पुलिस टीम पर ही हमला कर दिया गया। बांग्लादेश में बंगाली मुसलमानों का ही शासन है, फिर भारत में रह रहे विस्थापित बांग्लाभाषी अपने मूल देश को वापस क्यों नहीं गए? यह एक बड़ा सवाल है। अलका सरावगी का उपन्यास 'कुलभूषण का नाम दर्ज कीजिए' में बांग्लादेश से विस्थापित लोगों का दर्द मानो फट पड़ा है। उपन्यास के पात्र कुलभूषण के पिता कुष्टिया इसलिए नहीं छोड़ने को तैयार होते हैं कि उन्होंने यहाँ अपना बचपन, अपनी जवानी बिताई है।

कुछ ऐसे भी विस्थापित हैं, जिन्होंने आते वक्त औने-पौने दाम पर अपनी जमीन-जायजाद का सौदा कर लिया था। उनके पास अपनी मूल भूमि का कागजात तक नहीं है।

विभाजन के दौरान विस्थापित हुए अनेक प्रतिभाशाली लेखकों पत्रकारों ने विस्थापन की त्रासदी को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। कुलदीप नैयर जैसे पत्रकार हों या फिर गुरुदत्त, नरेंद्र कोहली और कृष्ण बलदेव वैद जैसे साहित्यकार सभी की लेखनी इस बात की गवाह है कि अपने मूल स्थान को भूल पाना संभव नहीं। कृष्ण बलदेव वैद कितने भी प्रगतिशील क्यों न हो जाएँ, लेकिन विभाजन का सच और विस्थापन का दर्द वे भुला नहीं सकते। वे भारत से अमेरिका चले गए, लेकिन डिंगा (पाकिस्तान में कृष्ण बलदेव वैद का घर) की स्मृति उनमें ताजा है। अपने एक साक्षात्कार में वैद बतलाते हैं—"बचपन से ही मैं भीतर से विस्थापित हूँ, जहाँ भी होता था, पूरे मन से वहाँ नहीं होता था। वाह उखड़ंचू मन:स्थिति—'रहना नहीं बेगाना है' शुरू से ही है और आखिर तक रहेगी, हर देश और काल में। विभाजन के विस्फोटक विस्थापन ने उस पर मुहर लगाकर मुझे हमेशा के लिए स्थायी तौर पर क्षत-विक्षत कर दिया और स्थायी जला वतन बना दिया। मैं बसा-रसा कभी भी नहीं, कहीं भी नहीं।"

जड़ों से उखड़े हुए लोग मूल भूमि की ऊर्जा से वंचित रह जाते हैं। उन्हें परिस्थितियों से अनावश्यक समझौता करना पड़ता है। हिमांशु जोशी के उपन्यास 'छया मत छूना मन' की पात्र परवीन ऐसे ही अनावश्यक समझौते की चपेट में है। पहले विस्थापन और फिर पति की मौत ने परवीन को लगभग तोड़ दिया। दो बेटियों का भरण-पोषण एक बेघर स्त्री के लिए कितना कठिन होगा, इसकी बस कल्पना ही की जा सकती है। परवीन दिल्ली में एक पुरुष के साथ रहते हुए किसी तरह अपनी बेटियों को पालती है। बड़ी बेटी वसुधा छोटी की अपेक्षा सतर्क और समझदार है। छोटी स्वच्छंद जीवन को महत्त्व देती है, उसकी रुचि फैशन और फिल्मों की ओर है, लेकिन एक घटना ने उसके जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया, जिसका असर वसुधा पर भी हुआ। जी-तोड़ मेहनत करने वाली वसुधा बहन को सिनेमाई जगत् में सफल होते देखना चाहती थी हुआ, लेकिन हुआ इसके उलट। परवीन दिल्ली में जिस पुरुष के आश्रय में रहती थी, उसके परलोक सिधारते ही उसकी अपनी औलादें आ धमकीं और उसे वह घर भी खाली कर देना पड़ा। वसुधा माँ के साथ एक छोटे से घर में आकर रहने लगी अर्थात् एक और विस्थापन। मेहनतकश वसुधा कैंसर का शिकार होती है और एक दिन माया के इस बंधन से मुक्त हो जाती है। सांप्रदायिक तनाव से उपजे से विस्थापन से पीढ़ियाँ तबाह हुई हैं।

तिब्बत से भारी संख्या में तिब्बतियों का विस्थापन हुआ। वहाँ से भी भारी संख्या में लोग विस्थापित हुए। उन्होंने हिमाचल और उत्तराखंड की ठंडी जगहों का चुनाव किया, लेकिन विस्थापितों की संख्या इतनी अधिक थी कि उन्होंने देश गरम स्थानों की ओर भी भेजा गया, जहाँ उन्हें अनेक प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा। दलाई लामा ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख भी किया है—"चूँकि हमें आधी से ज्यादा जमीन दक्षिण में दी गई थी, जहाँ उत्तर की अपेक्षा गरमी भी ज्यादा पड़ती है, इसलिए मैंने तय किया कि आरंभ में वहाँ तगड़े लोगों को भेजा जाए। फिर भी गरमी के कारण होने वाली बीमारियाँ और लू इत्यादि से होने वाली मौतें इतनी ज्यादा थीं कि मैं सोचने लगा कि इन उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में जमीन लेना स्वीकार करके कहीं गलती तो नहीं की। फिर भी मुझे विश्वास था कि कुछ समय में लोग इसे सहन करना सीख जाएँगे।" कमोवेश यही हाल कश्मीरी पंडितों का भी था। श्रीनगर के ठंठे इलाकों से विस्थापित हुए। उनके सेब और अखरोट के बाग जला दिए गए। उनकी स्त्रियों का बलात्कार हुआ और जो बचकर राहत शिविरों में पहुँचे, उन्हें एक ऐसा जीवन जीने को बाध्य होना पड़ा, जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। बात साहित्य के हवाले से कही जाए या फिर इतिहास के हवाले पाठक घटनाओं की तस्दीक तो करता ही है। विस्थापन का सच उन आँखों में आज भी जिंदा है, जो दिल्ली की कॉलोनियों में भटक रहे हैं। कश्मीर पंडितों के विस्थापन को लेकर अनेक सवाल उठते रहते हैं और उठने भी चाहिए, लेकिन वामपंथी लेखन ने कश्मीरी पंडितों के दर्द से किनारा किया, क्योंकि इससे उनकी सेकुलर छवि पर असर पड़ता।

ग्राम-अकबालपुर, पो. इटौरी
जिला-अंबेडकर नगर-२२४१५९ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५२५६२८४७
deviprasadald@gmail.com

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति श्रीवास्तव

५ मार्च, १९८७ को हापुड़ (उ.प्र.) में जन्म। कविता, कहानी, लघुकथा, हाइकु, क्षणिकाएँ लेखन। अब तक 'बाल सुमन' (बालकाव्य-संग्रह), 'कतरा भर धूप' (काव्य-संग्रह), 'अपलक' (कहानी-संग्रह) एवं पुस्तकों और विभिन्न पत्रिकाओं में तीन सौ से अधिक कविताएँ तथा रेखांकन प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'साहित्य-श्री सम्मान', 'के.बी. नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'साहित्य मंडल' श्रीनाथद्वारा से 'संपादक शिरोमणि सम्मान' से सम्मानित।

संपर्क : एमएमए-२२ इंफ्रंट ऑफ रामलीला पार्क,
एडीए कॉलोनी, नैनी,
प्रयागराज-२११००८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९६९५०८३५६५

मस्ती में झूमता

• मंजु गुप्ता

सुपरिचित लेखिका। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक समीक्षात्मक लेख एवं कविताएँ प्रकाशित। 'कल्पतरु' संस्था द्वारा 'कविता विदुषी' सम्मान से सम्मानित। लेखिकाओं की सुप्रसिद्ध अखिल भारतीय संस्था 'लेखिका संघ' की उपाध्यक्षा। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर अनेक साहित्यिक कार्यक्रम प्रसारित।

फूल की जिजीविषा

गजब की है
फूल की जिजीविषा
हर हाल, हर स्थिति में
जीने की तकनीक है इसके पास
अच्छे-बुरे, सीधे-टेढ़े, कुटिल-छद्म
सभी रास्ते अपनाता है यह
जीने के लिए
क्योंकि अस्तित्व-रक्षा ही है
जीव की अनिवार्य प्राथमिकता, पहली शर्त
उसके बाद ही आता है उचित-अनुचित
अच्छे-बुरे का तर्क

कभी नुकीले काँटों बीच खिलता है
कभी छूते ही बंद हो जाता है
कभी पत्तियों में जहरीला विष रखता है
जो तोड़ते ही करता है असर
कभी सुगंध से लुभाता है, पास बुलाता है
तो कभी असह्य गंध से दूर रहने के लिए
करता है विवश

आकर्षक रंगों से, सुगढ़ आकार से
बेइंतहा लुभाता है, पास बुलाता है
और तोड़ते ही तुरंत मुरझाता है
जिससे तोड़ना ही हो जाता है व्यर्थ
फूल दिखता है कितना
सरल, निष्पाप, भोला, मासूम
पर अस्तित्व रक्षा के लिए
अपनाता है सारे हथकंडे
यह मनुष्य की सोहबत का प्रभाव है
या अस्तित्व रक्षा का प्राकृतिक तर्क ?

फूलों लदी बेला

बीज अंकुर बना
दो पत्तियों का ध्वज लिए उठकर खड़ा हुआ
फिर बढ़ा और बगल वाले पेड़ का सहारा ले
चढ़ने लगा कदम-कदम, हौले-हौले
पत्तों के गुच्छों में, लगने लगीं
कलियाँ छोटी-छोटी
लौंग-इलायची के दानों सी ये मोटी-मोटी
फिर उनमें रस भरा, रंग चढ़ा
वे खिल पड़ीं अनायास खिल-खिल करती
अब बेल में कितने पत्ते थे
उतने ही थे फूल हँसते
रंग ऐसा शोख-जुर्ख कि छू लो तो
लहू छलके/रंग बरसे
कहना मुश्किल था, पत्ते हरे ज्यादा थे या
फूल अधिक लाल ?
लाल और हरे की जुगलबंदी सी तोतापरी-बेल
पेड़ से लिपटी हँस रही थी, हँसे जा रही थी
काँधे चढ़ी, फूलों लदी गदराई बेल को
पुष्ट बाँहों में उठाए गबरू जवाँ पेड़
हीरोइन को हाथों में उठाए फिल्मी हीरो सा
मस्ती में झूमता
गीत गा रहा था
उसके बोल झर रहे थे
पके महुओं से रसीले, मीठे
चैत की हवा अलमस्त बह रही थी

पेड़ सब हरे होते हैं

पेड़ सब हरे होते हैं
हरा होना कितनी बड़ी बात है, जानते हो ?
धूप, ताप, आँधी, बरसात, पतझड़ सहते हुए,
तूफान झेलते हुए
बार-बार झड़कर हरा होना,
सिर्फ पेड़ों की विशेषता है
विधाता का दिव्य वरदान
पेड़ों का यह हरापन काश हम में भी उतर जाए
हम भी सीख लें उनकी तरह हर हाल में हरा होना
हरे रहना यानी खुश रहना
अपने आत्म में डूब प्रसन्न रहना
परम आनंदित हो झूमना, लहराना

जब तक पैरों के नीचे जमीन है और
ऊपर नीला आसमान
हवा साँस ले रही है,
चाहे उसका चलना महसूस न हो
तो भी उसका होना
क्या जीने के लिए पर्याप्त नहीं ?
किस मृगतृष्णा में उलझ भाग रहे हैं हम
इस अंधाधुंध चूहादौड़ से परे होकर
जरा ठहरकर,
कुछ देर रुककर यदि हम भी पेड़ हो जाएँ
कुछ देर के लिए ही सही तो हमारा होना,
हमारा जीना
सार्थक हो जाए, सफल हो जाए हमारा होना

आदमी का पेड़ हो जाना यानी हरा हो जाना
ताजा हो जाना, नया-नकोरा हो जाना,
खिल जाना भीतर से बाहर तक
कितनी बड़ी बात है
काश, हम पेड़ हो पाते
पेड़ जैसा जीवन जीवन जी पाते
हरे हो पाते।

जे-३६ साकेत, नई दिल्ली-११००१७
दूरभाष : ९७११०८०२१९

लोक-संस्कृति का आँगन : पुरखौती मुक्तांगन

• संदीप राशिनकर

वही समाज या राष्ट्र उन्नति करता है, जो अपनी सांस्कृतिक जडों से न सिर्फ जुड़ा रहता है, वरन् उन्हें संचित व सिंचित भी करता है। प्रगतिशीलता की होड़ और भागमभाग में जहाँ चहुँओर हमे सांस्कृतिक क्षरण और संस्कृति विस्मरण के दृश्य आम हो चुके हैं, वहीं छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर के नजदीक एक जगह ऐसी भी है, जहाँ छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विरासत पूरी शिद्दत से उपस्थित हो लोक-संस्कृति का विलोभनीय तिलिस्म रच रही है।

पुरखौती मुक्तांगन, यानी पुरखों के रहन-सहन, संस्कृति और लोककलाओं का वह आँगन, जहाँ चप्पे-चप्पे पर छत्तीसगढ़ी संस्कृति की मनोहारी छटाएँ अपने देशज अंदाज में पूरी समृद्धि के साथ आकारित हो आपको आनंदित ही नहीं, बल्कि अभिभूत करती है। लोककला में शृंगारित दो भव्य हाथियों के शिल्पों के साथ लोककला प्रतीकों, बिंबों से सजे भव्य द्वार से शुरू होता है परिसर का साक्षात्कार। परिसर के द्वार तक पहुँचने के पहले ही परकोटे पर चित्रित छत्तीसगढ़ के ऐतिहासिक स्थलों से जुड़ी आख्यायिकाएँ आपके जेहन में इस क्षेत्र में रची-बसी मान्यताओं/परंपराओं की छवि का निर्माण करती हैं।

मुक्तांगन के मध्य भाग से अग्रेषित होते मुख्य मार्ग के दोनों ओर ढोलक पर थाप देती भव्य आदिवासी शिल्पाकृतियाँ मानो वाद्य ध्वनि के साथ पर्यटकों का मंगल ध्वनि से आत्मीय स्वागत करती हैं। मुख्य मार्ग के मध्य में विकसित आइलैंड पर लोक कला की शैली में आयरन शीट से निर्मित स्वागत/अभिवादन करता तकरीबन पचास फूट ऊँचा शिल्प आपको अभिभूत करता है। इस शिल्प के चारों ओर टेराकोटा के प्रभाव से युक्त लोक-जीवन से रुबरु कराते भव्य शिल्पों में जहाँ माँ के ममत्व के दर्शन होते हैं, वहीं क्षेत्रीय विभिन्न कार्यों में लिप्त शिल्पाकृतियाँ आदिवासी जनजाती के कर्तृत्व की गाथा कहती है।

मुख्य मार्ग के दाहिनी ओर के क्षेत्र में जहाँ अंचल के रहन-सहन, वास्तु, पशुओं से जीवंतता से रूबरू कराते दृश्यों का सृजन आकार ले रहा है, वहीं बाईं ओर की दृश्यावलियाँ अचल की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक समृद्धि से प्रभावशाली ढंग से साक्षात् कराती हैं। मुख्य मार्ग के अंतिम सिरे पर एक अभिनव जलीय मंच विकसित हो रहा है। इस पर आंचलिक संस्कृति की वैभवशाली रंग-बिरंगी प्रस्तुतियाँ अपनी छटाओं से इंद्रधनुषी लोकरंग बिखेरेंगी।

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण। कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

इसके साथ ही लगी एक भव्य प्रतिमा छत्तीसगढ़ के आस्था केंद्र 'रुद्र शिव' के विराट् दर्शन से अभिभूत करती है। पास ही आकारित हो रही क्षेत्र के प्रसिद्ध मंदिर की प्रतिकृति अपने पौराणिक महत्त्व व वास्तु सौंदर्य के वैभव से दर्शकों को प्रभावित करती हैं। इसके पास ही स्थापित है 'माडिया खंबा' व लोक वास्तु व शैली से सज्जित आवासीय परिसर।

गाँव के खुले मैदानों की पृष्ठभूमि में लोकनृत्य के सौंदर्य को बिखेरते शिल्पों के विस्तारित समूह न सिर्फ आह्लादित करते हैं, वरन् वहाँ की प्रचलित नृत्य-शैलियों डंडा नाच, पंथी नाच, राऊत नाचा और सुआ नाच से संवादरत कराते हैं। शिल्प समूह की कलात्मकता, लयात्मकता और लोक सौंदर्य की ये प्रतिकृतियाँ अनायास ही आपको अपने नृत्यों में सम्मिलित करने के लिए साग्रह आकर्षित/आमंत्रित करती सी महसूस होती है। दीवाली के पर्व पर पुरुषों द्वारा किया जाने वाला राउत नाचा हो या तोतों की प्रतिकृतियों को मध्य में स्थापित कर उसके आसपास सुआ नृत्य करती औरतों का समूह हो, अपने शिल्पगत विशिष्टता व जीवंतता के चलते आपको शिरकने को बाध्य करते हैं। सारी शिल्पाकृतियों में नृत्य वैशिष्ट्य, परिधान, आभूषण इतनी जीवंतता से मुखरित होते हैं कि वे आपको ठेठ उनके पारंपरिक वातावरण में ले जाते हैं। शिल्पाकृतियों का सृजन भाव भंगीमा, वेशभूषा, आनुपातिकता इत्यादि स्तर पर इस उत्कृष्टता से छुआ है कि मुक्तांगन से गुजरते हुए आप खुद ही उस संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं।

मध्य भाग में अवस्थित है अंचल के आभूषणों के ऐश्वर्य से साक्षात्कार। छत्तीसगढ़ी महिलाओं द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले विभिन्न आभूषणों जैसे कान की खूँटी, गले का सूता, रुपया, सांटी व तोड़ा की फाइबर में निर्मित भव्य प्रतिकृतियों को 'आभूषण उद्यान' में मनोहारी तरीके से संयोजित किया गया है। उद्यान के मध्य में शृंगाररत छत्तीसगढ़ी

महिला का भव्य शिल्प है, जो उद्यान में प्रदर्शित विभिन्न आभूषणों से स्वयं का शृंगार कर रही है।

मुक्तांगन में प्रवेशोपरांत बाईं ओर के क्षेत्र में अंचल में प्रयुक्त विभिन्न वाद्यों से वातावरण को संकारित करती आदिवासी प्रतिकृतियों का भव्य समूह बरबस ही ध्यान आकर्षित करता है। 'बाजा बजगरी' शीर्षक से निर्मित इस खंड में छत्तीसगढ़ के लोक-संगीत की सुरमयी झाँकी है। इसी खंड के पास एक क्षेत्र 'मानयतला' नाम से विकसित किया गया है। इसमें अंचल के आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न पारंपरिक मुखौटों की आदमकद भव्य प्रतिकृतियाँ अपनी भव्यता व विशिष्टता से अभिभूत करती है।

लोककला की परंपरा में काष्ठ और पतरे में काले रंगों में रँगी विभिन्न कला प्रतिकृतियों को एक उद्यान में सुरुचिपूर्ण तरीके से संयोजित किया गया है। क्षेत्र विशेष में निर्मित घरनुमा आयताकारों में या उद्यान के स्वच्छंद पृष्ठभूमि में विषयानुकूल स्तर पर संयोजित ये कलाकृतियाँ ठेठ संस्कृति के आँगन में उपस्थित होने का आनंद देती हैं।

कुल मिलाकर इस बृहत् कल्पक परिवेश को लोक-संस्कृति की कला, संस्कार, संगीत की सुरभि से कुछ इस कुशलता से संयोजित किया गया है कि यहाँ आकर दर्शक स्वयं को छत्तीसगढ़ी संस्कृति का हिस्सा बन जाने को बाध्य हो जाता है। अंचल की सांस्कृतिक विरासत को इस कलात्मकता से संजोते इस उपक्रम का स्वागत होने के साथ ही इसका अनुसरण भी स्वागतयोग्य होगा।

सा॰ अ॰

११बी, राजेंद्रनगर,
इंदौर-४५२०१२ (म.प्र.)
दूरभाष : ०७३१-२३२११९२

रिश्ते सँभालकर देखो

ग़ज़ल

● ब्रह्मानंद झा

सुपरिचित कवि-ग़ज़लकार। मुक्तक, नई कविता, क्षणिका, गीतिका, दोहा आदि में लेखन। 'शब्द हमारे पँखुरी-पँखुरी' (काव्य-संकलन) व प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। संप्रति बेसिक शिक्षा विभाग से सेवानिवृत्त।

: एक :

तिनका-तिनका जोड़ा है
लगता तुमको थोड़ा है

चलता लँगड़ा-लँगड़ाकर
राजनीति का घोड़ा है

हर्षित सत्ता की सीता
धनुष राम ने तोड़ा है

उत्थानों की राहों में
निहित स्वार्थ का रोड़ा है

जब भी अपने कदम रुके
पड़ा पीठ पर कोड़ा है

रिश्तों के आँगन में फिर
मुख अपनों ने मोड़ा है

दु:ख को मन में ही रखना
ये जग बड़ा हँसोड़ा है

: दो :

मन में विचार लो अब तो
जीवन सँवार लो अब तो

जाने कब से मैली है
चादर निखार लो अब तो

नीति की रीति का आँगन
थोड़ा बुहार लो अब तो

तोड़कर परत कुंठा की
सच तो उभार लो अब तो

हो गए आइने बौने
अंदर निहार लो अब तो

सूखे-सूखे अधरों में
पीड़ा उधार लो अब तो

: तीन :

कुछ तो मलाल कर देखो
रिश्ते सँभालकर देखो

करनी अगर सियासत है
मुद्दे उछालकर देखो

लोग चाहेंगे तुम को भी
कोई कमाल कर देखो

हो जो गरीब के हक में
ऐसा बवाल कर देखो

सत्य की आँच पर तुम भी
जीवन उबालकर देखो

अच्छा-बुरा परखना तो
खुद से सवाल कर देखो

: चार :

तन की चिंता धन की चिंता
सबसे भारी मन की चिंता

भौतिकता की संस्कृतियों में
किसको अपनेपन की चिंता

कुरसी की ही बस रखवाली
थोड़ा करो वतन की चिंता

देश बने सिरमौर हमारा
सभी करें जन-गन की चिंता

गंध उड़ेगी तभी हवा में
होगी जब उपवन की चिंता

परिवर्तन तो नियम नियति का
फिर क्यों परिवर्तन की चिंता

दुनिया के इस रंगमंच पर
सबको अभिनंदन की चिंता

कुंठाओं की आहुतियों से
अब तो करो हवन की चिंता

पहचानो तुम अटल सत्य को
कर लो राम भजन की चिंता

: पाँच :

वेदना के गीत हम कैसे सुनाएँ
वक्त की ये कालिमा कैसे मिटाएँ

चल रहा है अब नियति का चक्र कैसा
हो रहीं अनहोनियाँ कैस बचाएँ

सोचते हैं कब भला बारूद के कण
आदमी को जिंदगी कैस दिलाएँ

रौंद डाला सूर्य को अँधियारियों ने
दीप जय के आज हम कैस जलाएँ

धर्म का होने लगा है अब निरादर
माँग संस्कृति की कहो कैसे सजाएँ

अब स्वयं ही काँपती भय से सुरक्षा
शांति वाला पाठ हम कैसे पढ़ाएँ

सा॰ अ॰

१२०९-बी, शंभूनगर,
शिकोहाबाद-२८३१३५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१०४५११८१

कहानी

शाख से टूटी हुई...

● इला प्रसाद

सैम्स स्टीक हाउस पूरी तरह भरा हुआ था। अगर खाली थी तो केवल पहले माले की कुछ कुरसियाँ, वरना दूसरे और तीसरे माले पर तो चलने की भी जगह नहीं थी। वे चारों भी तीसरे माले पर ही थे। वे चार—यानी सिल्विया, राबर्ट, सैम और नंदिता।

कमरे की पीछे की दीवार से लगी टेबलों पर वे बैठे थे। सामने को खुलती बालकनी और उससे जुड़ी सीढ़ियाँ, जिनसे लगातार लोग अंदर आ रहे थे और अपनी जगह ले रहे थे। उनके दाईं और बाईं ओर मेजों की कतार थी।

नक्काशीदार कुरसियाँ और मेक्सिकन डिजाइन की लंबी मेजें एक-दूसरे से जोड़कर रखी हुई थीं। नब्बे डिग्री के कोण बनाती, तीन लंबवत् पार्श्वों वाली आकृति बनाती हुई, आयताकार। मेक्सिकन तरीके की साज-सज्जा और धीमी पीली रोशनी से भरा स्टीक हाउस एक रहस्यमय सा वातावरण उपस्थित करता था। शहर का सबसे पुराना रेस्त्राँ और अपने मेक्सिकन भोजन के लिए सबसे प्रसिद्ध। बहुत छोटी जगह थी, यह भले ही ३५-४० लोगों को अपने अंदर समाए हुए थी। जब चिकेन एनचिलाडा की पूरी बड़ी प्लेट लाने में ही एक वेटर दूसरे से टकरा गया और सारा भोजन जमीन पर बिखर गया तो नंदिता को लगा, यह तो होना ही था।

बीच में बस चलने भर की जगह थी। एक व्यक्ति के चलने की जगह। कतार में चल रहे थे लोग, जिन्हें टेबल पर जगह लेनी थी। दो लोगों के एक साथ अगल-बगल चलने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। हर टेबल पर टोर्टिल्ला चिप्स का शीशे का कटोरा था। कटोरे पर कलात्मक पेंटिंग थी और वैसे ही छोटे-छोटे प्याले में सालसा और हॉट सॉस।

नंदिता को भूख लगी हुई थी और वह बैठते ही चिप्स पर टूट पड़ी थी। सिल्विया उससे अधिक परिपक्व थी और अपने वजन को लेकर अत्यधिक गंभीर। वह खा तो रही थी, लेकिन रईसों की तरह। कभी-कभी एक आध टुकड़ा मुँह में रख लेती और फिर रॉबर्ट की ओर अपना अगला सवाल दाग देती—"तुम्हें नहीं लगता कि वह कुछ ज्यादा ही संवेदनशील है?"

"हाँ, निश्चित ही। लेकिन मैं उसे समझ नहीं पाता। वह ऐसा क्यों करती है! बेहद आक्रामक स्वभाव है उसका। बेहद गुस्सा भरा हुआ है उसके अंदर। अपने को ही चोट पहुँचाने की कोशिश करती है, अगर उसकी बात न मानी जाए। दीवार से टकराकर अपना सिर फोड़ लेगी। एक बार उसने चाकू से अपने हाथ पर गहरा घाव कर लिया।"

सुपरिचित लेखिका। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। वर्तमान में अमेरिका से प्रकाशित, विश्व हिंदी न्यास की 'हिंदी जगत' पत्रिका की सहायक संपादिका। विश्व-हिंदी ज्योति, अमेरिका, साहित्य प्रवाह, वडोदरा और शुभ संकल्प संस्था, इंदौर द्वारा साहित्यिक अवदान के लिए सम्मानित।

उसके चेहरे पर गहरी पीड़ा उभर आई। निश्चित ही वह लंबे समय से एक गहरे तनाव में जी रहा था और आज सिल्विया से खुलने को मौका पाकर वह जैसे कितनी ही अदृश्य मनोग्रंथियों से मुक्त हो लेना चाहता था।

आज का रात्रिभोज उनके सात दिनों से चले आ रहे वर्कशाप का समापन दिवस था। अमेरिका भर से आए हुए कुल पैंतीस प्रशिक्षणार्थी। अधिकांश गोरे, बाकी स्पैनिश, दो अश्वेत। इकलौती भारतीय, नंदिता। छोटे कद, पतले नाक-नक्श और साँवले चेहरे वाली। आम अमेरिकनों की तरह लंबी, गोरी, सुंदर, कटे बालों वाली सिल्विया की प्रोजेक्ट पार्टनर। पहले दिन के पहले सेशन में सबने सबसे परिचय किया। फिर वे सब अलग-अलग टीमों में बँट गए थे, अपने चयनित प्रोजेक्ट के अनुसार। कभी सेमिनार रूम में लंच आवर में हॉय-हैलो हो जाती बस। दिन भर अपने-अपने प्रोजेक्ट पर काम करना। लैब, लेक्चर, कैंपस टुअर... छह दिन कैसे बीते पता भी नहीं चला। आज सबने अपनी-अपनी प्रस्तुतियाँ दीं, सर्टिफिकेट और उपहारों का बैग समेटा, जिसमें यूनिवर्सिटी का लोगो बना जैकेट, कप, पेन और बेस्ट सेलर नॉवेल 'द मार्शियन' था। कल सब अपने-अपने रास्ते चल देंगे। सबकी वापसी की फ्लाइट बुक है। जो बगल के शहरों से आए हैं, कार में बहुत सारा सामान आज ही लोड कर चुके हैं। आज और आज ही बस! अभी। जो कुछ कहना-सुनना है, कह-सुन लो, बाँट लो। यही समय है!

नंदिता चुप उसे सुन रही थी। पहली बार रॉबर्ट को जान रही थी। ग्रीक देवताओं की मूर्तियों जैसा था वह। उतना ही सुंदर। तराशा हुआ चेहरा और देहयष्टि। नीली आँखें। उतना ही प्रतिभाशाली भी। सिल्विया से ही उसने जाना था कि वह हारवर्ड का स्नातक है और बर्कले की पी-एच. डी. बीच में ही छोड़कर यदि कॉलेज में पढ़ा रहा है तो वह इसलिए कि

उसकी अपनी गाइड से नहीं बनी। इस बीच उसने अपनी गर्लफ्रेंड से बच्चे बना लिए थे और शादी करना जरूरी हो गया था। इसलिए नौकरी भी।

"तीन बेटियाँ हैं मेरी। बड़ी मिशेल बिल्कुल नॉर्मल है। समान्था अभी दो साल की है। स्वीट बेबी। हाना शुरू से ही समस्या बनी हुई है। अब आठ साल की हो चुकी। मैं और बच्चे नहीं चाहता, लेकिन बेली चाहती है और ट्राई करना। एक बेटा भी होना चाहिए। शायद बेटे से घर का वातावरण बदल जाए। वह भी त्रस्त रहती है इस बीच वाली से।"

"वह नौकरी नहीं करती?"

"घर से काम करती है। हाना को होमस्कूल किया हुआ है हमने।"

"तुम्हें क्या लगता है? क्यों है वह ऐसी?"

मैं नहीं समझ पाता। मैं बहुत तनाव में रहता था, मेरी गाइड मुझे बहुत परेशान कर रही थी। पी-एच.डी. छोड़ी तभी। यह जॉब नहीं थी। शादी कर ली थी, तो बहुत सारी प्रॉब्लम्स थीं।

वह एक क्षण को रुका। टकीला का एक घूँट भरा, फिर शुरू हो गया। सिल्विया उसे खुलने का पूरा मौका दे रही थी। नंदिता नहीं समझ पा रही थी कि यह सिल्विया के इतने करीब कब हो गया या कि सिल्विया को लोगों के पेंच खोलने का कोई हुनर मालूम है!

"तुम लोग कहीं घूम आया करो, जैसे लांग ड्राइव पर निकल गए।"

"नहीं, यह हो नहीं पाता। 'हाना' की वजह से हम कहीं नहीं जा पाते। उसे लेकर मेरी पत्नी से भी मेरे अकसर झगड़े हो जाते हैं। बहुत परेशान रहता हूँ मैं। मेरी साली मुझे समझती है। मेरी उससे अच्छी पटती है। मैं उसके साथ कभी घूम आया करता हूँ।"

कल को शायद उससे ही शादी कर लेगा। पढ़ा था न, एक अमरीकन औसत अपने पूरे जीवन में ३.५ स्त्रियों से संबंध बनाता है—नंदिता ने सोचा।

रॉबर्ट के दूसरी ओर बैठी, खूबसूरत और अपनी खूबसूरती को लेकर पूरे आत्मविश्वास से भरी सेलेना अबतक पीना कोलाडा के दो गिलास खाली कर चुकी थी और बहकने लगी थी। उसने जान-बूझकर अपना जैकेट गिरा दिया था और स्लीवलेस टॉप से अपनी गोरी नंगी बाँहों की नुमाइश करती सी रॉबर्ट पर गिरी जा रही थी।

"तुम क्या यहीं रहते हो?"

"हाँ, मैं लोकल हूँ। कम्युनिटी कॉलेज में पढ़ाता हूँ। इंग्लिश हूँ, लेकिन स्पैनिश आती है मुझे।"

सेलेना ने कुछ कहा, जो नंदिता के पल्ले नहीं पड़ा, लेकिन रॉबर्ट ने तुरंत स्पैनिश में प्रत्युत्तर देकर बता दिया कि वह स्पैनिश जानता है।

"क्या उमर है तुम्हारी? सिंगल हो मेरी तरह?"

"मैं शादीशुदा हूँ। रॉबर्ट ने सीधे उसकी आँखों में देखा और जता दिया कि उसकी कोई दिलचस्पी नहीं उसमें।"

जिसने भी यह संवाद सुना, मुसकराए बिना न रहा। सेलेना का चहकना एक क्षण को थम गया। नंदिता की निगाहें अब भी रह-रहकर उस पीली शर्ट पहने व्यक्ति पर जाकर थम जातीं। कल से यह चेहरा उसे परेशान किए हुए था।

"सैम्स स्टीक हाउस में हम सब मिलेंगे। हम सब कारपूल कर सकते हैं। जिसे कोई साथ देने को न हो, वह बता दे, हम उसकी व्यवस्था करेंगे।" वह पीली शर्ट वाला व्यक्ति कह रहा था। प्रोफेसर सैम्सन की सेक्रेटरी उसके साथ खड़ी थी। वह दोपहर के भोजन का समय था और सभी एक साथ सेमिनार रूम में ही लंच ले रहे थे।

"सिल्विया तुम मुझे राइड दोगी?"

"हाँ, और क्या?"

नंदिता आश्वस्त हो गई। यह शायद सैम्स स्टीक हाउस का मालिक है। उसने मन-ही-मन सोचा। कल भी इसीलिए आया था, लेकिन प्रोफेसर सैम्सन की सेक्रेटरी सैंडी क्यों इसके साथ खड़ी है? यह डिनर तो उनके द्वारा आयोजित है, लेकिन प्रोफेसर सैम्सन आज कहीं दिखाई नहीं दे रहे कहीं। जब से सिल्विया ने उनकी खबर ली है, गायब ही हैं।

लेकिन सिल्विया तो ऐसी ही है। जब से आई है, सबकी टाँग खिंचाई कर रही है और पूरे होशो-हवास में। ऐसा नहीं कि उसे पता न हो कि वह क्या कर रही है? उसने नंदिता को खुद ही बताया कल—"मैंने केमिकल इंजीनियरिंग करने के बाद मेडिकल की पढ़ाई की। मैं गैस्ट्रोएनट्रोलॉजिस्ट रही हूँ। आर्मी हॉस्पीटल में बाइस साल काम किया। आर्मी में ट्रेनिंग कॉलेज के लिए, जो नए प्रशिक्षु आते थे, उनका इंटरव्यू मैं ही लेती थी। जो मुझसे ज्यादा उड़ने की कोशिश करते, अहंकार दिखाते, उन्हें मैं सवाल पूछ-पूछकर रुला देती थी। यह तो पेशा रहा है मेरा। तुम क्या सोचती हो, मैं जिज्ञासु हूँ, अनजाने ही हर जगह सवाल दागती रहती हूँ। नहीं, मुझे ठीक से पता है कि मैं क्या कर रही हूँ?"

शायद रॉबर्ट आखिरी व्यक्ति है, जिसमें इसकी दिलचस्पी है। जटिल व्यक्तित्व! इसे सबको जान लेना है, लेकिन क्यों? अपने रिसते घावों की पहचान करने के लिए या कि उन्हें झेलने की क्षमता पाने के लिए।

रॉबर्ट सहसा चुप हो गया था। टकीला के बाद कोक के घूँट भरता हुआ कहीं खो गया था जैसे। अब सिल्विया नंदिता को अपने बारे में बता रही थी। वह भी कहीं अपने को खोलने को बेचैन थी शायद! पिछले छह दिनों से साथ-साथ घूमने के बाद भी वह नंदिता से ऐसा कुछ नहीं निकलवा पाई थी, जो उसे संतुष्ट करता।

"मैं अडॉप्टेड चाइल्ड हूँ। मेरे माता-पिता ४५ की उम्र के हो चुके थे और कैरेलिना राज्य के सरकारी नियमों के अनुसार वे संतान को गोद लेने का हक खो चुके थे। मेरी माँ की मित्रता एक डॉक्टर से थी, जो अपना अबॉर्शन क्लीनिक चलाती थी। उसके यहाँ अबॉर्शन के लिए आए हुए एक टीन एज जोड़े को मेरे माता-पिता ने पैसे दिए, उनका सारा खर्च उठाया कि वे अबॉर्शन न कराएँ और मेरे जन्म के बाद मुझे गोद ले लिया। यह सबकुछ व्यक्तिगत स्तर पर हुआ।"

"मेरी एक मित्र बच्चा गोद लेना चाहती थी, लेकिन बहुत महँगा है सब यहाँ। औसतन एक बच्चा गोद लेने में और अमेरिका लाने में ५० हजार डॉलर का खर्च आता है।"

"हर कोई नहीं कर सकता।" सिलिया के चेहरे पर एक संतोष का भाव था, जो उस व्यक्ति के चेहरे पर होता है, जिसे अपने विशिष्ट होने का अहसास हो।

इसके अँधेरे कोने भी खुलेंगे। नंदिता ने सोचा। अभी तो बस शुरुआत हुई है।

"तुम्हें तो खूब प्यार मिला होगा माता-पिता का।"

"हाँ, बहुत। मेरे पिताजी की अपेक्षाएँ बहुत ऊँची थीं मुझसे। कठोर अनुशासन था उनका। उन्हें कारों की बहुत अच्छी जानकारी थी। मेरे घर में १९३९ की शेवर्ले थी, जिसको उन्होंने स्पोर्ट्स कार का रूप दे दिया था। जब गरमी की छुट्टियों में मैं हाईस्कूल से घर आई तो पिताजी ने मेरे लिए गेराज में पूरी लैब बना रखी थी कि मैं छुट्टियों में वह सब सीख लूँ, जो मुझे कॉलेज में काम आएगा। मैं हैरान रह गई। मैं छुट्टियाँ बिताने आई थी। आराम करने आई थी, घूमने-फिरने, सबसे मिलने··· यू नो···, लेकिन किया मैंने। मैं पिताजी को दु:खी नहीं देखना चाहती थी। बहुत आदर करती थी मैं उनका।"

"तुम्हें कभी अपने असली माँ-बाप के बारे में जानने, उनसे मिलने की इच्छा नहीं हुई?"

"नहीं, मिलने की इच्छा तो कभी नहीं। मैं उन्हें जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि किन परिस्थितियों में उन्होंने ऐसा निर्णय लिया। लेकिन मुझे उनसे संबंध रखने की कोई इच्छा नहीं होती। एक अनावश्यक, फालतू संबंध।"

नंदिता को एक झटका सा लगा। इतना सपाट उत्तर। शायद यही सही हो। एक सोचे-समझे निर्णय की सोची-समझी परिणति!

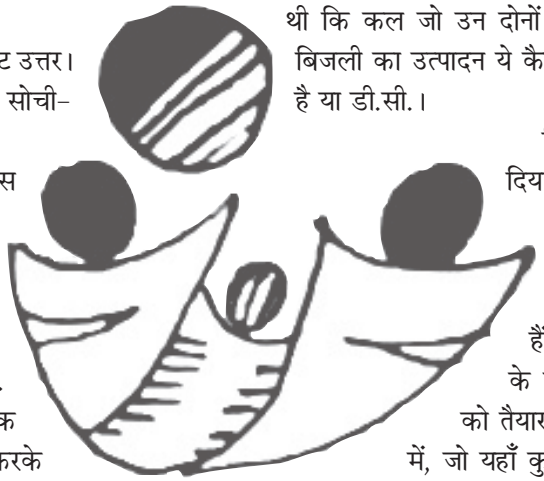

रॉबर्ट अब तक अपना कोक का गिलास खाली कर चुका था। उसका खाना आ चुका था। खाना अब सबके लिए बारी-बारी से आ रहा था। उनके ऑर्डर के मुताबिक। सिल्विया, द वेट वाचर ने हिसाब लगाया। वह बहुत ज्यादा चिप्स खा चुकी है। इतनी कैलोरी तो हो गई। डॉ. पेपर भी पिया है। वह कुछ नहीं खाएगी। उसने एक टू गो बॉक्स मँगवाया और सारा खाना पैक करके रॉबर्ट को दे दिया—चिकन राइस और भी जाने क्या-क्या? रॉबर्ट ने अपने भोजन में से मछली के कुछ टुकड़े बचा लिए थे, जिन्हें उसने साथ ही रख लिया।

पीली शर्ट वाला व्यक्ति बाईं ओर की टेबल पर था। उधर ही प्रोफेसर वाकर और प्रोफेसर टर्नर थे। उसकी विपरीत दिशा में लगी टेबलों पर कुछ प्रशिक्षणार्थियों के साथ प्रोफेसर राबिंसन थे। प्रोफेसर वाकर की लाइन में टेबलों पर बैठे, जो बारह-पंद्रह लोग थे, ज्यादा ही उत्साह में थे। पार्टी अपने रंग में आ चुकी थी। सबका भोजन आ चुका था। नंदिता ने अपने लिए वेजी रोल और वेजी एनचिलाडा मँगवाया था और वह इतना ज्यादा था कि वह भी एक टू गो बॉक्स बना रही थी। प्रोफेसर सैम्सन अब भी नहीं आए थे, जो इस पूरे प्रोग्राम के को-ऑर्डीनेटर थे। नंदिता प्रोफेसर वैगनर से पूछना चाहती थी प्रोफेसर सैम्सन के बारे में। प्रोफेसर वैगनर उसके ग्रुप के प्रोजेक्ट की गाइड थीं और अभी उन सबके साथ ही कोने की टेबल पर थीं, लेकिन जाने क्यों उसे अटपटा सा लगा। सिल्विया से ही पूछेगी।

शायद उसकी इस अंतर्मुखता के कारण ही सिल्विया उसके साथ थी। वे दोनों दो विपरीत ध्रुव थे। नंदिता को कोई फर्क नहीं पड़ता था। वह जितना पाने आई थी, पा चुकी थी। उसने अपना ऑप्टिकल सेंसर बना लिया था और वापस जाकर वह इसे ही अपना स्टेम रिसर्च प्रोजेक्ट बनाएगी। वह संतुष्ट थी। एक नई दुनिया खुली थी उसके सामने जिसकी समझ उसे दूर-दूर तक नहीं थी। अपनी उपस्थिति जताने के बजाय वह अधिक से अधिक सीख-समझ लेने की कोशिश में थी, जबकि बाकी सब अनुभवी थे, दूसरी या तीसरी बार ऐसे किसी वर्कशॉप में थे।

दो दिन पहले सिल्विया ने प्रोफेसर सैम्सन को अपनी टेबल पर खींच ही लिया था। वर्कशॉप का चौथा दिन और प्रोग्राम डायरेक्टर प्रोफेसर सैम्सन ने अब तक उसकी नोटिस नहीं ली थी।

"प्रोफेसर, इधर आइए, हमें आपसे कुछ पूछना है।" सिल्विया ने प्रोफेसर को पुकारा था।

बला के फुरतीले, लंबे, दुबले-पतले प्रोफेसर, फिलॉसफर जैसी दाढ़ी-मूँछ वाले प्रोफेसर सैम्सन अगले ही मिनट अपनी प्लेट लेकर उसकी टेबल पर आ बैठे थे।

नंदिता के लिए यह अप्रत्याशित था। वह तो सिल्विया से पूछ रही थी कि कल जो उन दोनों ने कोजेन प्लांट का टुअर लिया, उससे बिजली का उत्पादन ये कैसे कर रहे होंगे। ए.सी. करेंट पैदा हो रही है या डी.सी.।

सिल्विया ने सवाल प्रोफेसर के आगे धर दिया।

"ए.सी.," प्रोफेसर ने सीधा उसकी आँखों में देखा, "हम अपनी आवश्यकता से अधिक बिजली का उत्पादन करते हैं। यूनिवर्सिटी पूर्ण आत्मनिर्भर है बिजली के मामले में। हम तो शहर को बिजली देने को तैयार हैं, किंतु वे लेना नहीं चाहते। बस जाड़ों में, जो यहाँ कुछ ज्यादा लंबा है—हमें शहर से बिजली लेनी पड़ती है। बर्फबारी के कारण हमारा सिस्टम बैठ जाता है। रेजिडेंशियल यूनिवर्सिटी होने के कारण छुट्टियों में भी स्टूडेंट्स होते ही हैं।"

नंदिता को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था। कल उन लोगों ने घूम-घूमकर पूरा कोजेन प्लांट देखा था। कोजेन प्लांट यानी कोजेनरेशन प्लांट, जो दो किस्म की ऊर्जा का उत्पादन एक साथ करता है। उन्हें बताया गया था कि उनके यहाँ कोजेन प्लांट की अवशिष्ट गैसों से ही कूलिंग सिस्टम चलता है। ठंडे पानी के लिए। नंदिता प्रभावित थी, लेकिन अपनी उम्र और अनुभव दोनों को लेकर उस पूरी भीड़ में हमेशा अपने को अलग अनुभव करती सिल्विया के प्रश्न खत्म नहीं हुए थे।

"हाँ तो प्रोफेसर, मैं यहाँ सबसे बड़ी हूँ। यह बतलाओ कि तुम शादीशुदा हो? कितने बच्चे हैं तुम्हारे?"

यह हर बार व्यक्तिगत प्रश्नों पर क्यों उतर आती है या क्या पता, यही तरीका हो दोस्ती करने का।

प्रोफेसर ने बतलाया कि उसके एक बेटा और एक बेटी है। बेटा २८ साल का है।

"तो इतने बड़े बच्चे हैं तुम्हारे ? शादी हो गई उनकी ? क्या करते हैं ? नौकरी में हैं या पढ़ाई कर रहे हैं ? किस नौकरी में हैं ?"

वह सवाल पर सवाल दागती जा रही थी। प्रोफेसर का पूरा बायोडाटा निकाल लिया था उसने। नंदिता को लगा कि उसे हर किसी को जानना था। हाल—वे में चलते हुए, भी वह अन्य टीम के प्रतिभागियों से बात करती, उनकी निजी जिंदगी का लेखा-जोखा लेती। लैब में शोध छात्रों को भी उसने रगड़ दिया था। 'एक अजीब सी बेचैनी है इसके अंदर', नंदिता सोचती, लेकिन उसने उसे न कभी टोका, न कुछ पूछा। फिर भी दिन भर साथ रहते तो बातें तो होती। कभी प्रोजेक्ट पर, कभी निजी। बातों-बातों में उसने नंदिता को बताया था कि वह और उसके पति हॉस्पीटल में मिले थे। तीन साल की डेटिंग के बाद उन्होंने शादी की थी। वे सर्जन हैं। अति व्यस्त जिंदगी के बारह साल गुजारने के बाद उनके अचानक बीमार होने और घर बैठ जाने के कारण उसने अर्ली कॉलेज में बायोलॉजी टीचर की जॉब ले ली है। यही वह नौकरी थी, जो उसे अपने लिए इतना समय दे सकती थी कि वह अपना घर और बाहर दोनों सँभाल सके।

प्रोफेसर वैगनर टेबल की दूसरी तरफ हैं, आमने-सामने। उनकी टीम की गाइड। वर्कशॉप के पहले दिन उन्होंने अपना संक्षिप्त परिचय दिया था और हर किसी से उसका परिचय लिया था। अब भी वे सहज भाव से हर किसी को कंपनी दे रही थीं।

"प्रोफेसर, तुम्हारी एक बेटी है न।" सिल्विया अब उनसे बात कर रही थी।

प्रोफेसर वैगनर ने अपने सेल फोन में तस्वीर दिखा दी। गोल-मटोल सी, गुड़िया जैसी साल भर की बच्ची। प्रोफेसर वैगनर छोटे कद की, मोटी, प्यारी सी शक्ल वाली गोरी स्त्री हैं। बेटी उन्हीं पर गई है।

"तुम दो बच्चे और लाना। अभी तो तुम जवान हो।"

नंदिता हतप्रभ। सिल्विया निर्विकार। प्रोफेसर वैगनर का चेहरा लाल हो गया। वे कुरसी थोड़ी खिसकाकर बगल वाली टीम से बात करने लगीं। अब तक सैम दूसरी टीम में जा मिला था। वह मास्टर्स के बाद इसी यूनिवर्सिटी में पी-एच.डी. कर रहा था। उसके साथी दूसरी टीम में थे, सिल्विया जानती थी। उसे उससे बात करने या टोकने की फुरसत नहीं थी।

वह अब नंदिता से बात कर रही थी।

"मुझे लगता है, भारतीय लड़कियाँ दुनिया में सबसे सुंदर होती हैं।"

"ऐसा भी नहीं है। हम जिस तरह शृंगार करती हैं, बिंदी-काजल लगाती हैं, ड्रेस अप करती हैं, अपने को कैरी करती हैं, वह हमें सुंदर बनाता है।"

"अच्छा, तुम्हें ऐसा लगता है।"

"हाँ, और क्या? तुम बिंदी लगाकर देखो। काजल लगाओ, सलवार-सूट पहन लो, फिर आईने में खुद को देखो।"

वह हँसी। "मुझे तुम लोगों की विवाह व्यवस्था भी अच्छी लगती है। तुम्हारे यहाँ विवाह करते हैं तो निभाते हैं। तलाक-वलाक तुम लोगों के यहाँ प्रचलन में है ही नहीं। या है अब ?"

"तुलनात्मक रूप से तो बहुत ही कम। क्योंकि हमारे यहाँ विवाह यह छूट नहीं देता। हमारी भाषा में 'तलाक' जैसा कोई शब्द है ही नहीं। हम यह सोचकर ही विवाह करते हैं कि निभाना है।"

"ग्रेटा नहीं समझती। तीन साल हो गए उसे एरिन को डेट करते हुए। उसके साथ ही एम.आई.टी में है। मैं कहती रहती हूँ अपनी बेटी से कि देखो, तुम यह मत सोचो कि विवाह एक प्रयोग है, जो सफल या असफल हो सकता है। तुम केवल बुराइयाँ ही मत देखो उसकी। तुम्हें विवाह करना है तो निभाना भी है।"

"कोई भी संपूर्ण नहीं होता, फिर हम सामने वाले से ही यह अपेक्षा क्यों करें ? क्या हम दोषरहित हैं ?"

वह देर तक चुप रही।

पीना कोलाडा के बाद डॉ. पेपर का गिलास खाली करती रही। वापसी की राइड भी सिल्विया ही देनेवाली थी। नंदिता ने अपना बॉक्स उठाया और सभी को हाथ हिलाकर सिल्विया के पीछे बाहर निकल आई। रॉबर्ट पहले ही जा चुका था। दूसरी टीमें अब भी जमी हुई थीं। सब ओर सेल फोन की फ्लैश लाइट चमक रही थी। ये कुछ अनमोल पल थे, जो कैमरे में कैद हो रहे थे। अपने प्रोफेसर के साथ। अपनी टीम के साथ। दोस्तों के साथ।

उन्हें ऐसा कुछ नहीं करना था। नंदिता ने क्लास में प्रोफेसर वैगनर की तसवीर ली थी। सिल्विया के साथ लैब में सेल्फी ली थी। कुछ टीम की पिक्चर औरों से मिल गई थी। काफी था।

स्टीक हाउस से निकलते हुए नंदिता ने पूछा, "प्रोफेसर सैम्सन नहीं आए ?"

"तुमने नहीं देखा, पीली शर्ट और लाल टाई में वही तो था, जो सबसे हाथ मिला रहा था।"

"क्या ?"

"वह प्रोफेसर सैम्सन था, नंदिता। विश्वास करो मेरा। मैंने जो उस दिन लंच टेबल पर उसकी खबर ली, उसी का असर है शायद। कल उसने अपनी दाढ़ी-मूँछ कटवा ली, बाल भी। वह क्लीन शेव्ड आदमी प्रोफेसर सैम्सन है।" पीछे की सीट पर बैठी नंदिता उसे मुसकराते हुए देख सकती थी।

वह देर तक चुप रही। फिर अचानक अँधेरे में अपने में ही डूबा उसका स्वर आया—"मुझे लगता है, जैसे मैं शाख से टूटी हुई कोई पत्ती हूँ, जिसकी पहचान खो गई है।"

घुप्प अँधेरे में डूबी पहाड़ी सड़कें! ऊँची-नीची, घुमावदार पतली सड़कें। जिंदगी की तरह। एक मोड़ खत्म होता तभी अगला मोड़ या आगे का रास्ता दिखता। जब तक आगे न बढ़ो कुछ समझ नहीं आता। ऐसी सड़कों पर कार चलाने की हिम्मत नंदिता को कभी न होती। सिल्विया कुशल ड्राइवर है।

"तुम निकाल ले जाओगी।" नंदिता के मुँह से निकला।

"पता नहीं।"

फिर पूरे रास्ते उन दोनों ने कोई बात नहीं की।

P.O. Box-680902
Houston (USA)
TX-77268-0902
Ila_prasad1@yahoo.com

साहित्यकार : दायित्व बोध का प्रश्न

• वेद प्रकाश

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और वैश्विक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। भारतवर्ष भी नव रूप में समर्थ,सशक्त और आत्मनिर्भर बने यह आज की बड़ी आवश्यकता है, लेकिन गरीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, महिला सम्मान एवं सुरक्षा, स्वास्थ्य, श्रमिक और वंचित जनों का कल्याण आदि अनेक चुनौतियाँ भी साथ-साथ हैं। सकारात्मक यह है कि ये चुनौतीपूर्ण क्षेत्र अब शासन-प्रशासन की योजनाओं के केंद्र में आए हैं। साहित्य की समृद्ध परंपरा से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक परिस्थिति में साहित्यकार ने अपनी रचनात्मक भूमिका निभाई है, किंतु क्या वर्तमान मैं वह अपनी उस रचनात्मक भूमिका का सम्यक निर्वहन कर रहा है? क्या आज साहित्यकार निहित स्वार्थों, राजनीतिक लाभ-हानि एवं गढ़-मठों में सीमित नहीं हो रहा है? यदि हाँ, तो साहित्यकार के दायित्व बोध का प्रश्न आज गंभीरता से विचारणीय है।

भारतीय चिंतन आरंभ से ही साहित्य एवं साहित्यकार के प्रयोजन पक्ष पर चिंतन करता रहा है। आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ में नाटक के प्रयोजन पर विचार करते हुए लिखा है—

धर्म्य यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्''

अर्थात् नाट्य धर्म, यश और आयु का साधक, हितकारक, बुद्धि का वर्धक तथा लोकोपदेशक होता है। इसी प्रकार आचार्य भामह ने अपने काव्यालंकार में लिखा है—

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च''

अर्थात् उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थो को तथा समस्त कलाओं में निपुणता को और प्रीति तथा कीर्ति को उत्पन्न करती है। जैसे-जैसे साहित्य का विकासक्रम आगे बढ़ा हम पाते हैं कि साहित्यकार साहित्य के प्रयोजन को लेकर विशेष रूप से सावधान रहा। समूचे भक्तिकालीन साहित्य में जनसामान्य के लिए अनेक संदेश एवं उपदेश देते हुए उसने अपने दायित्व का निर्वहन किया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे विराट ग्रंथ की रचना के मूल में दायित्व बोध के प्रश्न को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया। उन्होंने लिखा—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहं हित होई॥

सुपरिचित लेखक। अब तक चार पुस्तकें प्रकाशित। तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित। मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में विशिष्ट अभिरुचि। संप्रति हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय, दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर।

यह पंक्तियाँ कहीं न कहीं साहित्यकार के दायित्व बोध की ओर ही स्पष्ट संकेत करती हैं। रीतिकाल के नीति कवि वृंद ने अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए यह स्पष्ट कहा कि—

विद्या धन उद्यम बिना, कहो जू पावे कौन।
बिना डुलाए ना मिले, जो पंखा की पौन॥

अर्थात् मनुष्य को बिना कर्म के कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का विशेष महत्त्व है। यह वह कालखंड है, जिसमें भारतीय जनमानस नवजागरण की चेतना से अनुप्राणित था। नवजागरण की इस चेतना के मूल में जहाँ एक ओर युगीन परिस्थितियाँ व समाज सुधारकों के प्रयास थे वहीं दूसरी ओर एक बड़ी एवं विशिष्ट भूमिका साहित्यकारों की थी। इस युग के साहित्यकार ने उस जनचेतना को संबोधित किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र इस नवजागरण अथवा जनचेतना के सूत्रधार माने जाते हैं। उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में आह्वान किया—

रोवहु सब मिलि,आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥

यह साहित्यकार के दायित्व-बोध की बड़ी स्पष्ट अभिव्यक्ति थी। भारतेंदु युग के अन्य रचनाकारों ने भी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओं को जन-जन के लिए प्रस्तुत किया। वर्ष १८८४ में बलिया अधिवेशन में भारतेंदु द्वारा 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नामक व्याख्यान साहित्यकार के दायित्व-बोध से सीधे जुड़ता है। उन्होंने कहा था— हिंदुस्तानी लोगों को कोई चलाने वाला हो तो यह क्या नहीं कर सकते। इनसे इतना कह दीजिए—'का चुप साधि रहा बलवाना', फिर देखिए हनुमानजी को अपना बल कैसा याद आता है। सो बल कौन याद दिलावे।

इस महामंत्र का जप करो। जो हिंदुस्तान में रहे चाहे किसी जाति, किसी रंग का क्यों न हो वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मणों, मुसलमानों सब एक का हाथ एक पकड़ो।" भारतेंदु द्वारा दिए गए इस उद्‌बोधन के आलोक में यदि विचार करें तो आज वर्तमान में भी साहित्यकार अपने दायित्व से दूर हटता जा रहा है। आज भिन्न-भिन्न रूपों में जाति, संप्रदाय और क्षेत्र आदि के झगड़े बढ़ते जा रहे हैं, साहित्यकार दलबंदी का शिकार हैं। मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित भारत-भारती एवं उनकी अन्य रचनाएँ साहित्यकार के दायित्व बोध को अनेक स्थानों पर सीधे रेखांकित करती हैं। भारत-भारती में उन्होंने लिखा—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए, उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।

जयशंकर प्रसाद छायावाद के आधार स्तंभ हैं। यह वह समय था, जब देश स्वतंत्रता आंदोलन में नए-नए शिखर छू रहा था। वे अपने नाटक, कहानी एवं कविताओं के माध्यम से जन जागरण कर रहे थे। कामायनी में उन्होंने यह स्पष्ट संदेश दिया कि—

और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान।
शक्तिशाली हो, विजयी बनो विश्व में गूँज रहा जय गान॥

उन्होंने साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए मानवता के विजयी होने की संकल्पना प्रस्तुत किया—

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं,
हो निरूपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाए!

आज जब भारत नए रूप में समर्थ, सशक्त होकर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हुए वैश्विक पटल पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है, तो क्या साहित्यकार जन-जन को शक्तिशाली होने और विजय बनने का संदेश दे रहा है? क्या साहित्यकार अपनी रचनाओं से आज के युवा को, आज के जनसामान्य को विश्व में गूँजते भारत के स्वर से परिचित करवाने के लिए आगे आ रहा है? यदि नहीं, तो क्यों?

वैदिक साहित्य में अमृतस्य पुत्रा: कहकर मनुष्य का गौरव किया गया है। जयशंकर प्रसाद उस गौरव का पुन: स्मरण करवाते हैं—

डरो मत, अरे अमृत संतान! अग्रसर है मंगलमय वृद्धि···

क्या आज अमृत पुत्रों को नए भारत के लिए पुन: जाग्रत् करने में साहित्यकार का दायित्व महत्त्वपूर्ण नहीं होना चाहिए? वर्ष १९३६ में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में प्रेमचंद द्वारा अध्यक्षीय भाषण दिया गया, जिसमें उन्होंने कहा था—"साहित्य की बहुत सी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' है। क्या आज साहित्यकार साहित्य के माध्यम से जीवन की आलोचना की दिशा में अग्रसर है?" भाषण के अंत में उन्होंने एक बड़ी चिंता व्यक्त की थी—"हम साहित्यकारों में कर्म शक्ति का अभाव है। यह एक कड़वी सच्चाई है, पर हम उसकी ओर से आँखें नहीं बंद कर सकते।" क्या आज इन पंक्तियों पर पुनर्विचार की गंभीर आवश्यकता नहीं है? कवि मुक्तिबोध ने अँधेरे में नामक महत्त्वपूर्ण कविता में कहा था—तोड़ने होंगे गढ़ और मठ। कहीं ये गढ़ और मठ साहित्यकारों के जाति, संप्रदाय एवं क्षेत्रीयता के आधार पर संकीर्ण होते दायरे तो नहीं थे? जिनका संकेत उन्होंने इन पंक्तियों में किया है। हिंदी के बड़े साधक और मनीषी विद्यानिवास मिश्र ने अपनी पुस्तक देश धर्म और साहित्य में लिखा है, "साहित्य वास्तव में मनुष्य धर्म को रेखांकित करने वाला वह रूप है, जो अपने देश के समाज के परिदृश्य को उसके बहुआयामी रंगों में कैनवास पर फैला हुआ दिखलाता है। साहित्य ही देश को गति भी देता है और उसे जीवंत बनाने का प्रयत्न करता है।" अनेक विद्वानों ने साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल कहा है, फिर आज यह साहित्यकार राजनीतिक गलियारों का दास बनकर निहित स्वार्थों के मोह में फँसकर दिग्भ्रमित क्यों दिखाई देता है? आज कई बार असहिष्णुता, अभिव्यक्ति की आजादी और संविधान पर खतरे के नारे सुने जाते हैं, क्या इसका जिम्मेदार आज का साहित्यकार नहीं है? जो अपने रचनात्मक कर्म को छोड़कर कहीं अवार्ड प्राप्ति के लिए जद्‌दोजहद में दिखाई देता है तो कहीं दूर के स्वार्थों को साधने के लिए अवार्ड वापसी गैंग का हिस्सा बनकर, गले में राष्ट्र विरोधी तख्तियाँ लटकाकर भटक रहा है।

विगत समय में कुछ ऐसी कविता, उपन्यास एवं कहानियाँ भी पढ़ने सुनने में आई, जिनमें साहित्यकार जाति, क्षेत्र अथवा संप्रदाय के आधार पर उन्माद का निर्माण करता दिखाई देता है। साहित्य के नाम पर अश्लीलता की सीमाएँ लाँघते हुए वह आगे बढ़ता है। मजेदार यह है कि कुछ तथाकथित आलोचक ऐसे तथाकथित साहित्यकारों को नग्न यथार्थवाद का रचनाकार कहकर सम्मानित और पूजित करने का वातावरण बनाते हैं। आलोचना के नाम पर नामवरी परंपराएँ चलाई जाती हैं, क्या साहित्यकार और आलोचक का दायित्व इस प्रकार के सीमित दायरों में ही निहित है? आज कुछ तथाकथित बड़े साहित्यकार भारतवर्ष की सनातन परंपराओं, पर्व-उत्सवों, देवी-देवताओं का उपहास उड़ाते हुए रचनाक्रम में संलग्न है, कुछ मंचों पर वाहवाही भी लूट रहे हैं, लेकिन क्या यह साहित्यकार के दायित्व बोध की सही अभिव्यक्ति है? आज यह महती आवश्यकता है कि जाति, संप्रदाय, क्षेत्र व निहित स्वार्थों आदि से ऊपर उठकर साहित्यकार जनमानस में नव जागरण का प्रयास करें। उसकी रचनाएँ न केवल राजनीति के आगे चलने वाली मशाल बने, अपितु समूची मानवता के लिए भी संदेशवाहक बनें। वर्तमान में अनेक संभावनाएँ और चुनौतियाँ विद्यमान हैं, साहित्यकार का दायित्व है कि वह सकारात्मकता से विभिन्न विषयों पर लेखनी चलाते हुए राष्ट्रधर्म का निर्वाह करें, जिससे मानवता विजयिनी हो।

साअ

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
दूरभाष : ९८१८१९४४३८

धूँ-धूँ जले रे नरबाई

• नर्मदाप्रसाद सिसोदिया

ओ भैया! हवा की हलकारी में—राई की बिसात सी छिटकती चिनगारी को चिलचिलातो रूप टापरी का चारई तरफ फिरी गयो। देखता-देखता मेंड़-खोड़ नदी-नाले बेदरा उलाकती है। हाँ, आग के अंकपाश में समाई हर एक वनस्पति मानो समिधा बन जाती है और हम हाथ मलते-मलते असहाय से टकटकी लगाए हैं कि धूँ-धूँ करती ज्वाला तड़तड़ाती-तड़तड़ाती फैल उठती है। धुआँ का धुँधलका आकाशी हो उठता है। बस! गाँव-ग्वाड़ी में खबर-बतर हँफाती दौड़धूप करती कूलती-कँजारती रिरिआती है—हाहाकार मच उठता है।

'जी' साँसत में रहता है इन दिनों किसान का, हाँ भैया! गेहूँ की फसल में फगुनाई की आहट के साथ-साथ पीला पाक फिरा कि एक-एक दिन अच्छे भले निकल जाने की हलूर रहती है हिया में। बूढ़ा सयाना की फिकरी तो फिरकी सी फुरफुरी भरती रहती है। भुनसारा, हुआ कि खेत की असफेर घूमी-फिरी आय। 'जी' में टुकटुकी रहती है इस बात की कि भैया! हमारा बीच खेत से बिजली का खंबा में झूलती-झुलरती लटकती तार लाइन को गुल नी गिर पड़े। हाँ, नी तो सूखी गेहूँ की फसल सेमल के रेशे समान जरई में आग पकड़ लेती है और कोई-कोई खेत में हारवेस्टर-गेहूँ की कटाई को मुहरत कर रहे हैं और भूसा बनाना की उलात है।

उस दिन कितने-कितने खुश हुए थे। कूबड़ी टेकते-टेकते आ गए हैं खेत में दादाजी। विचार में डूबे हैं। माटी का लोक अनुष्ठान किया था। तो माटी का लीला भाव देखा था। हाँ, भाव-स्वभाव मधुर भाव की भावसाधना का उत्स उमगने को है। तो माटी के पोपड़े से हुमकारा भरती पीले-जरद अंकुरण से कुहुक उठी थी पोंई। हाँ, भावजन्य उल्लास से सपने मुकलित हो उठे थे। फिर नित्य लीला के छंद रचे थे। माटी के कस से अच्छी सुलपाई सिरजी थी गेहूँ की फसल में। बालियों से भरे भराए सैरा, टेकरा में सरसती सुसह्य सुरसुरी से झूमती गेहूँ की बालियों को देखकर सिलक जुड़ जाने की सुभाषित सुबकती थी हिया के भीतर-भीतर। मछंदरी की आराधना में नित्य अभिनय के आनंद का अनुभव अनिवर्चनीय है।

और आज आत्मानंद ओहरा गया बस! जी हाँ, आर्तनाद है। अनहोनी

सुपरिचित निबंध-लेखक। चार कविता-संग्रह (साक्षरता, पर्यावरण, रेडक्रॉस पर आधारित) तथा हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में निबंध तथा यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित। नर्मदा, इसकी सहायक नदी एवं सतपुड़ा पहाड़ का भ्रमण। कई स्थानीय संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

का आखा आकुर है। अँधेरी रातों का पाक है। अद्रात के सन्नाटे में काबड़ कछार सैरा टेकरा टेर लगाते हैं। नरवाई को टिनयाती हटूटी से लालचट लपट दौड़ रही है। चिल्लाने बुमकाने बोम लगाने की आवाज से घबराती कँदराती बूढ़ी खटिया चरमरा गई। बस! थोड़ी ही देर में सारे बाखल से कोई बाल्टी, बटलोई, घेला, गागर, रस्सी, बाल्टी लिये दौड़ पड़े हैं, कुआँ के पाट पर। हाहाकार मचा है! अग्निशामक वाहन तक तुरत-फुरत सूचना भेजी गई। आग की लपट के आगे-आगे कल्टीवेटर से नरवाई बखरने में पाँच दस ट्रेक्टर लगे हैं तो कोई-कोई कुआँ की मोटर पाईप चालू कर रहे हैं। जिनके हाथ जो आया, उसी उपाय का उपयोग हो रहा है। तो दो-चार जना ने तामेसर की गीली डाल तोड़ी-तोड़ी ओकी पूली बनाकर आग की आँच को रोकने का प्रयास कर रहे हैं। वेगवान ऊँची-ऊँची लपटों के सामने यह प्रयास तो वैसा ही है, जैसे गिलहरी ने सेतु निर्माण के समय अपने गीले बालों में रेत लपेटकर इसी रेत को सेतु निर्माण के पत्थरों पर झराया था। बड़ी मुश्किलों से लड़ने के लिए छोटी सी मुलकती मलमली का मान महान बना देता है। सिद्ध संकल्प स्तुत्य हैं।

और इधर कोई-कोई अपने-अपने गाँव के क्षेत्रपाल देव की आराधना में 'महुआ बाबा की जय', 'बहेड़ा बाबा की जय' के जयकारे लगा रहे हैं, धूनीधार रो रहे हैं। छाती फट रही है, तो रातभर में झोरा, खाल, बेदरा उलाकते-उलाकते न जाने कितने, कितने खेतों की नरवाई स्वाहा हो गई। इसी बीच कोई-कोई खेड़ा-टेकरा में गेहूँ की खड़ी फसल भी आग की चपेट में आ गई तो देखते-देखते ही पके-पकाए गेहूँ के दाने-दाने राख हो गए। और भुनसारे-भुनसारे उजाला फट होता सेई फिर कहीं दूर अलाव जैसी धुँधवाती आग सिलग उठती। यह धमाचौकड़ी दो-चार दिन तक धुँधवाती रहती तो अचकचाए ओहराते रहते। आंतरिक लय की

गुनगुनाहट भला! गुनती कहाँ है? अधन खौलता रहता है। उन्मत्त बसंत के उमगाओ में ये चिनगारियाँ कण-कण को आप्लावित करती हैं।

खेत की मेंड़ पर खड़े पलाश के फूल नरवाई के धुआँ-धुआँ में धुँधले हो रहे हैं। मुरझाए फूलों से फगुआरी का रंग बने तो कैसे बने? तो कैसा फाग! और फगुआ। और पलाश के समानांतर खड़े बबूल के जले काँटे माटी के ढेलों में छिदविदा रहे हैं, मानो बसंत उलाहना दे रहा है। धनिया और सरसों की सुगंध तिरोहित हो गई है, उमगते तितली भौंरे ऊहापोह में हैं कि महुआ के फूल धुँधवा गए हैं और गुमसुम है अमराई। हाँ, नरवाई के जले तंतुओं की गंध नथुनों में समा गई है, जो भयातुर कर रही है, और जले तंतु-तंतु धुआँ के साथ आकाशी हो गए हैं तो हवा तो आँखों में काजल अँजोर रही है।

पतझड़ से अँकुराई कोमल कोपलें कुम्हला गई हैं। और ये बेर की झाड़ियाँ झरझरा गई हैं मोर तीतर के झुंड तुर-तुर तितर-बितर होते-होते बिछुड़ गए हैं। और गाँवों में न ढोल है न माँदर गीत उदासी में जी रहे हैं बस! आँसुओं का उन्माद है। नरवाई की आग में गोया गढ़वाट में चाँदे मुनारे का प्रस्तर खंड तपा तपाया है। ठुमकती सेमल ठपठपा गई है। नाड़ी पूजा के माटी के देव कालेमट हो गए हैं। बसंत ऋतु का अंतिम पहरो है तो जंगली फूलों के स्त्रीकेसर पुंकेसर, बाह्यदल, दलपुंज कहाँ है जी! उत्सवित प्रकृति वैरागी हो गई है—

धूँ-धूँ करखें जल रई जा नरवाई।
धुँधकारे की आव में आ गई अमराई॥
कोयल कारूआँ करके देवे किलकारी ।
दौड़ो-दौड़ो छोड़ो पानी की पिचकारी॥

कहते हैं आग में जीव पड़ जाते हैं हाँ, आँखों देख हाल तो है जेहन में कि ऊँची उठती आग की लपटों से सिरजते लोक कंठ के अनुभव यही है कि आग के उचटते कण प्राणवान हो जाते हैं। एक जानकारी याद आई जनवरी २०१८ में नर्मदा परिक्रमा करते समय हनुमान टेकरी में किसी ने बतलाया था इधर मरजाद बेल मिलती है। हाँ, भैया! आग लगने पर जल कलश में मरजाद बेल डालकर धार चलाने से आग शांत हो जाती है पर! ज्ञातव्य है कि बरदान से होलिका बच पाई थी क्या? हाँ, बचे थे प्रह्लाद। जी हाँ, बचे थे प्रहलाद की प्रार्थना से कुम्हार के अवा में भूल से रह गए बिल्ली के बच्चे। तो जलती लंका में सत्यानुरागी विभीषण का घर बचा था। ये मर्यादा के प्रतिफल थे पर! आज हड़ताल-हड़ताल में बेकसूरी का जन धन आग की लपटों में समा जाता है।

तो क्या पांडवों के लाक्षागृह में सुबक रही है आग! तदंतर धरती भी कब ताव खा जाए तो ऑस्ट्रेलिया के जंगलों की निरंतर जलती आग के अगुन चिंतन के लिए विवश करते हैं तो क्या सर्वग्राह्य महाशून्य में विलीन कर देने के ये अत्युत्तम उदाहरण नहीं हो सकते। तद्वत भला! पंजाब, हरियाणा में धान की पलारी (प्याल) के जलने से सिरजे धुआँ की धुंध तो दिल्ली तक पहुँचती है तो मध्य प्रदेश के गेहूँ की जलती नरवाई के धुआँ से दिल्ली की छाती दहल जाएगी। हाँ, जी दरदरी हो जाएगी। तो दरदरी हो गई है वायुमंडल की दरी। सूरज की दहकती किरणें तार-तार हुई तानों से तमतमाती दनदनाती आ रही हैं धरती की ओर।

पर करें क्या मरजाद बेल। जब मर्यादा टूट जाती है तो सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। मैंने स्वयं खड़े-खड़े देखा है कि धूँ-धूँ करती नरवाई की आग भर दुफरिया में जो आ रही है कि भैया! नरवाई तो जल रही है संगे-संगे देखो थोड़ी-थोड़ी मेंड़ जो बची है हाँ, और तो और उनके बीज भी नई बच पा रहे हैं और किरसानी की थोड़ी सुविधा के हिसाब से बीच खेत में लकड़ी बाँस को टप्पर बना रखो है हाँ, नहर गहरी है, सो सीधे कुलाबा से पानी खेत में चढ़े नई है तेके लेने खेत में बोर करा लई है, एंजिन मोटर रखी है, पाइप रखे थे पचासेक। जे सब सामान टप्पर में रखे थे। भैया! आग के आगे कोई को बस नई चले। सब सामान स्वाहा हो गए। टीन और एंजिन को लोहा दो दिना में ठंडो पड़ो। प्लास्टिक के पाइप तो पिचक गये। जो नुकसान तो है ही मनो आते साल के लेने दूसरो सामान और बिसानो पड़ेगो। भैया! करजा की दोहरी मार पड़नो है।

और इधर धँसी हुई आँखें। घड़ा सिर पर है। अंगुली पकड़े बालक। खबर सुनकर धड़ाम से गिर गई। धुनीधार रो रहे हैं माँ-बेटे। कच्ची गृहस्थी छोड़कर पारसाल पति स्वर्ग सिधार गए। चार छोटे बच्चे हैं खेती-बाड़ी में मजूरी करके जैसे-तैसे गुजारा होता है। चार मन की डैया में बिजाई लेकर गेहूँ बोए थे। हारवेस्टर की नगद सिलक थी नई सो छोटी डाबरी के गेहूँ कटते-कटते रह गए। भाग में थे नई सो भर दुफरिया में जलती नरवाई की आग में जल गए। और जली-भुँजी हुलसती आशा ने होल भर ली भला! यह देखते सुनते आह फूट पड़ती है—

धूँ-धूँ जल रई नरवाई की सूखी बान।
दाने-दाने में जली मेरी आशा आन।
चुपके काड़ी रखखें दे रय लम्बी तान।
बिजोरी जल गई, कौन के पकड़े कान॥

हम तो सहायक सेवक होकर असहाय हैं। पर खेत की मेंड़ पर बबूल के पेड़ में काँटों के बीच बया का घोंसला हमारी आँखों में समाया हुआ है। भला! कैसी कैसी तंतु-तंतु को जोड़कर रची थी रचना। दूर से उठते धुआँ को देखकर बया तो बच्चे लेकर फुर्र हो गई। किंतु नीचे की डाल में हिल हिलोरे लेते घोंसले जल गए। और फेफरी की डाल में था मधुमक्खी का छत्ता। भला! जोरे आती आँच के पहले ही मधुमक्खियाँ भिनभिनाती उड़ गई, पर शहद तो टपाटप टपकता रहा।

और ये मिट्टी के जीव-जंतु भला! चीटी-चीटा, चूहा, गिडोला, साँप, बिच्छू, केंचुआ, मकड़ी जैसे जीवों का कुटमारा कूलते-कूलते काल कवलित हो गया। इधर मेड़ा के कोने कोचरे में दीमक का घर भट्टे जैसा गरम-गरम है तपा हुआ। इन नाने-नाने कलाकारों की रासलीला रूमुकती-झुमुकती नरवाई की आग में झुरया गई होगी।

गुदगुदाती यादों में है कि असंख्य कंठों की काँरूआँ करती टेर है। तो टनके-टनके भी कोई-कोई अपनी ठसक में थे। भला! वे भी ठपठपा गए हैं। टप्पर की टूटी-फूटी खपच्चियाँ उलाहना देती हैं। तो आग की थिरकती लहरों से अनुस्यूत है माटी। वाक्सिद्धि में महारत हासिल है बहुश्रुत रतवाड़ा गाँव के किसान शैतान सिंह सरबर की। बोल पड़ते हैं,

"अब भरो बैंक की के.सी.सी., जुगाड़ से जमाई थी दो-दो बैंक की जुगत। अब भोगो बेटा।" वे लोक में विरचित बात को गुनते तौलते हैं। उनकी श्रुति स्मृतियों को सुनकर श्रोता ठहाके लगाते हैं पर! गहरे-गहरे बात को गहाय तो सच मानें उनकी सीख से गंगाल भर जाती है।

पर इधर सड़क की टिपटी छपरी छानी तो कानाफूसी से अचकचाई है, भैया! जिनके खेतों में बोरवेल है, वे कमर कसे हैं, उनकी गाँठ में कस है। किंतु जो राम भरोसे हैं, भैया वे कुनमुना रहे हैं। मनो कानो-कान बात चलन में आ गई है तो थोड़े कुहुक रहे हैं—जा साल गरमी की मूँग बोने के लिए होशंगाबाद जिले की तवा बाँध की नहर से पानी छोड़ेंगे। पर मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री की पक्की कहन भर है कि हारवेस्टर से गेहूँ कटाई के बाद ऊँची-ऊँची सघन नरवाई की सफाई करके खेत की जुताई करने की फिकर है।

तो भैया तुरत-फुरत निपट जाए जई जुगत भिड़ा रहे हैं, सो बिजली के खंभों से लटकती लाइन की चिनगारी गिरी हो, चाहे भूसा मशीन से नरवाई जली हो। चाहे भैया चोरी छिपे माचिस की काड़ी लगाई हो। खेत साफ-सुथरे हुए कि सबई बहती गंगा में स्नान करने से चूके हैं का।

पिछले साल २०१९ की मार्च-अप्रैल में गेहूँ कटाई के उपरांत मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के निमसाड़िया गाँव के आस-पास गेहूँ की नरवाई में लगी आग चार-पाँच गाँवों तक फैल गई थी, जिसमें बहुतायत में जन-धन की हानि हुई थी।

प्रकृति के असंतुलन के परिणाम भयावह होते जा रहे हैं। हम देख रहे हैं कि कहीं अतिवृष्टि, कहीं अल्पवृष्टि और कहीं असमय वृष्टि हो रही है। मौसम और जलवायु का कोई नेम-टेम नहीं रहा है। हम अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

तो चल-फिरकर हम देख रहे हैं नरवाई की आग दूसरे-तीसरा दिन सुतमल हुई है। भैया! नरवाई की आग में अटाटूट गेहूँ के जले दाने बिखरे पड़े हैं। तो बची-खुची मेंड़ों पर जंगली फूलों की अधजली अखियाँ हैं। माटी की पोथी में दुबके-दुलदुले कीड़े-मकोड़े ऊँघते अनमने हैं। कितने ही बीज आकरे हो गए उनके अँकुराने की आव का अबसान हो गया।

तो भाइयों बहनों विनय की या पाती भेज रहा हूँ अमलों है आप पर तो अरदास है कि गेहूँ की कटाई का बाद ऊँची-ऊँची सघन नरवाई का साल दर साल जलना की आवृत्तियाँ ओहरा जाय। हाँ, भैया! हमारी आह में आपरूप या बात समा जाए कि गरमी की ऋतु में मूँग की फसल बोने से पहले गेहूँ की नरवाई को जलाने की बजाय पूरा खेत की नरवाई को भूसा बनवा लें, फिर कल्टीवेटर से बखर दें। या फिर ऊँची-ऊँची नरवाई को रोटरवेटर से बखर दें तो नरवाई के छोटे-छोटे टुकड़े हो जाएँगे। और माटी के ढेले भी भुरभुरे हो जाएँगे। हाँ भैया! या कटी-कटी नरवाई को खाद बनेगो और धरती माता की कोख में पले-पुसे कीड़े-मकोड़ा सरसेंगे। बरसात आई की धरती की बुखारी में हिपाजत से रखेल वनस्पतियों को बीज बिजोरो मुलकतो पुलकतो अँकुराएगो। गाय माता को चारो भूसो बचेगो। और भैया! माटी का जीव-जंतुओं को कुटमारों का पलना-पुसना से हमारा पर्यावरण की कड़ी कुहुकती रहेगी।

ओ भैया! कूँ-कूँ अक्षत अँजुरी भर पँखुरियों से पोहती हल्दी लगेल कच्चा सूत का धागा में लपटेल या बासंती विनय पाती आपका हाथ में सादर सौंपता हूँ।

सा
अ

ऑफिसर रेसीडेंसी कंचन नगर
एस.पी.एम. गेट नं.-४ के सामने
रसूलिया, होशंगाबाद (म.प्र.)
दूरभाष : ९९२६५४४१५७

लघुकथा

नजर

• योगेंद्र नाथ शुक्ल

पंद्रह परिवार का वह बाड़ा था। दूसरी मंजिल पर बच्चों के साथ वह भी खड़ा था और बहुत ध्यान से उनकी बातें सुन रहा था।

"वह देख...क्या बड़ा रॉकेट है यार! फोड़ते समय एक के बाद एक ग्यारह राकेट छोड़ता है। वह भी अलग-अलग रंगों की फुलझड़ियों के साथ।"

"चारों ओर घरों में दीए ही दीए...उनकी टिमटिमाहट कितनी अच्छी लग रही है!"

"आज तो आसमान रंग-बिरंगे पटाखों से भरा हुआ है...!"

"मुझे तो लगता है कि लाल और पीले मकान वालों में कंपटीशन चल रहा है, एक का अनार बुझता है, तो दूसरे का अनार फूटना शुरू हो जाता है...बहुत पैसे वाले लोग लगते हैं।"

"...आज आकाश भी चमकते तारों से कितना सुंदर लग रहा...! चंद्रमा की छटा भी कितनी निराली लग रही, जब बादल उसके ऊपर से निकलते हैं, तो देखते ही बनता है।"

उसकी नजर बाड़े के कोने पर टिकी हुई थी, परंतु चेहरे में दूसरे बच्चों जैसा ही आनंद का भाव था। तभी एक छोटे लड़के ने उससे कहा, "कैसे हो भैया...आसमान तो इधर है और तुम इतनी देर से उधर देखे जा रहे हो?"

"तुम अभी-अभी बाड़े में रहने आए हो, इसलिए नहीं जानते कि उसे नजर नहीं आता।"

सा
अ

पूर्व प्राचार्य, निर्भय सिंह पटेल
शासकीय विज्ञान महाविद्यालय,
इंदौर (म.प्र.)
दूरभाष : ०९९७७५४७०३०

कविताएँ

मूल : **संजय चौधरी**
अनुवाद : **सूर्यनारायण रणसुभे**

बारिश

एक बार बारिश
हिंदू-मुसलमानों के दंगों में फँस गई।

हिंदुओं ने उसे मुसलमान समझकर पीटा,
और मुसलमानों ने उसे हिंदू समझकर।

पर बारिश नहीं होती कभी भी
हिंदू या मुसलमान।
पर बारिश की प्रत्येक बूँद में होते हैं
मंदिर, मसजिद, चर्च, गुरुद्वारे, निर्गुण-निराकार के अंश।

मैंने बारिश को एक कोने में बैठकर,
व्याकुलता से रोते हुए देखा है।

गंगा किनारे बुढ़िया

गंगा के किनारे एक बुढ़िया नहा रही थी।
बदन से खून निकलने तक,
पत्थर से शरीर को रगड़ रही थी।

मैंने पूछा उससे 'यह किस ढंग का नहाना?
गंगाजी से ऐसी कोई मनौती माँगी थी क्या?'
उसने कहा यह न नहाना है और न मनौती।

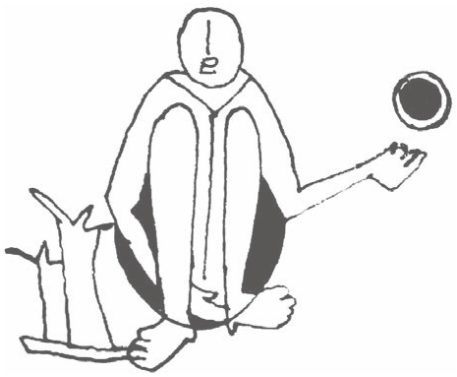

हिंदी के वरिष्ठ समीक्षक, अनुवादक और चिंतक। कुल ६२ कविताओं का मराठी से हिंदी में समय-समय पर अनुवाद।

जिंदगी भर इस चमड़ी पर,
चिपके लोगों की नजरों को केवल धो रही हूँ।

सीता

अगर मुझे बेटी हुई,
तो मैं उसका नाम कतई सीता नहीं रखूँगा।
और अगर रख भी दिया मैंने उसका नाम सीता,
तो किसी राम से उसका विवाह,
कतई नहीं लगाऊँगा।

गर्भवती पत्नी को जंगल में भिजवाने वाले,
पुरुष को,
दूसरी बार कौन अपनी लड़की देगा?

उस राम के काल में तो होगा एक खास धोबी,
बिन हड्डी की जुबान रखने वाला।
यहाँ तो हर गली-गली हर चौक-चौक में
धोबी ही धोबी।
फटी जुबान को लेकर,
किसी सीता की प्रतीक्षा में रत।

सू.अ

निकष, १९, अजिंक्य सिटी,
अंबाजोगाई रोड,
लातूर-४१३५१२ (महा.)
दूरभाष : ८३७८०८०६६०

सिंदूर

● रणीराम गढ़वाली

अनिता आज नहीं आई। घर का काम ऐसे ही रह गया है, न झाड़ू लगा और न ही बरतनों की सफाई हुई है। मैं कई बार किचन में जाता हूँ और सिंक में पड़े बरतनों को देखकर वापस लौट आता हूँ। मन में कई बार खयाल आता है कि मैं ही बरतन साफ कर लूँ। लेकिन तभी अनिता के शब्द मुझे बरतन साफ करने के लिए रोक देते हैं। वह दो दिनों से अपने मायके गई है। बहू और बेटे दूसरे शहर में रहते हैं। जाते हुए वह कह गई कि चंबी आए तो ठीक। न आए तो मैं आकर बरतन माँज दूँगी। आपको चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है।

काफी देर सोचने के बाद मुझे लगा कि बरतन वाली बाई का कुछ पता नहीं। हो सकता है, उसके घर में कोई काम पड़ गया हो। अनिता को आने में भी समय लग सकता है। उसकी माँ बीमार है। इसलिए क्यों न मैं ही बरतन साफ कर लूँ। सोचते हुए मैं किचन में आकर बरतन साफ करने लगा। बरतन साफ करते हुए कई बार बरतन मेरे हाथों से छूटकर जमीन पर गिरे तो खन-खन, टन-टन टनाक की आवाज कानों के परदों को हिलाकर रख देती। ऐसी कर्कश आवाज निकलती कि सिर झन्ना जाता।

मैं बरतन साफ करते हुए सोचने लगा कि अनिता भी बरतन साफ करती है, लेकिन उसके हाथों से मैंने कभी इस तरह से बरतनों को गिरते हुए नहीं देखा और न ही चंबी के हाथों से। फिर मेरे हाथों से ही बरतन क्यों गिर रहे हैं। मैं इसका कोई सही हल नहीं ढूँढ़ सका और बरतनों को धोता रहा। लेकिन जब काँच का गिलास मेरे हाथ से फिसला और वह जमीन पर चटाक की आवाज के साथ टूटा तो ऐसा लगा, जैसे दिमाग में किसी ने हथौड़ा मार दिया हो। फर्श पर बिखरे काँच के टुकड़ों को देखकर मैं मन-ही-मन बाई पर झल्लाने लगा। लगता है, वह अब नहीं आएगी। अब के आएगी तो उसे घर के अंदर नहीं घुसने दूँगा। जिस तरह से मकान बनाने वाला ठेकेदार अपने मजदूरों को पैसे के लिए दिन-रात अपने आगे-पीछे भगाता रहता है, उसी तरह इसे भी भगाऊँगा। गिलास की जो कीमत है, उससे दुगने पैसे काटकर उसका हिसाब कर उसे चलता करूँगा।

मायके जाने के बाद अनिता के दिन में दो-तीन बार फोन आते रहे। वह फोन पर कहती कि भूखे पेट मत रहना। खाना बना लेना या फिर बाजार से ले आना। सब कुछ जानने के बाद भी वह बाजार से खाना

सुपरिचित लेखक। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी-संग्रह, उपन्यास, लघुकथा-संग्रह एवं बाल-कहानी प्रकाशित। कथा-संकलन, उत्तराखंड कथा समय (उत्तराखंड के पचास कथाकारों की कहानियों का संकलन) व काव्य-संकलन 'हस्ताक्षर' का संपादन। साहित्यालंकार की उपाधि से सम्मानित।

लाने के लिए कह रही है। वह जानती है कि मैं बाजार का खाना बिल्कुल नहीं खाता। बेशक सारे दिन भूखा क्यों न रहना पड़े। जब मैं घर से बाहर निकलता हूँ तो वह मेरे बैग में बिस्कुट व फल रखते हुए यही कहती है कि भूखे मत रहना। जब भी इच्छा करे, खा लेना। बाहर जाने पर दिन में एक बजे वह फोन पर हिदायत देते हुए कहती है, "आपके बैग में बिस्कुट व फल रखे हैं खाए कि नहीं?"

"तुम चिंता मत करो। मैं खा लूँगा।"

"तुम ऐसा क्यों कह रहे हो कि चिंता मत करो। चिंता मैं न करूँ तो कौन करेगा। सरकार ने लंच का समय दिन का एक से दो बजे का रखा है। एक बज चुका है। तुम्हें याद दिला रही हूँ। ऑफिस की बात कुछ और थी। अब आप रिटायर हो, अपने खान-पान का ध्यान रखोगे कि नहीं, इसीलिए तुम्हें याद दिलाती रहती हूँ। नौकरी के दौरान मैंने आपको कभी फोन किया कि आपने खाना खाया या नहीं। घर से बाहर निकलने पर तुम्हें खाने का ध्यान ही नहीं रहता।"

मैं उसके शब्दों को सुनकर मुसकराने लगता हूँ। कहता हूँ, "तुमने खाना खाया?"

"तुम मेरी चिंता मत करो। मैं अपने समय पर खा लूँगी। फोन रख रही हूँ। समय पर घर आ जाना।"

"अनिता, लगता है मेरा चश्मा कहीं खो गया है।"

"तुम्हारे बैग में तो रखा है। देखा नहीं तुमने?"

"देखता हूँ।" मैं बैग में देखता हूँ। चश्मा रखा हुआ है। मैं हमेशा चश्मा कभी नहीं लगाता। लेकिन कभी-कभार जब पढ़ने का काम हो तो लगाता हूँ। ऑफिस के बाद से अब चश्मे का उतना काम नहीं है। रोज सुबह जब अखबार आता है, फिर चश्मा ढूँढ़ते हुए अनिता से कहता हूँ, "अनिता, तुमने मेरा चश्मा देखा क्या?"

अनिता उठकर चश्मा ढूँढ़ती है। कभी तकिए के नीचे, कभी आलमारी के अंदर और कभी फ्रिज के ऊपर से चश्मा लाकर मुझे देते हुए कहती है, "इसकी एक जगह बना लो। सुबह-सुबह सारे घर में घुमा देते हो मुझे चक्कर घिनी की तरह। अब के अगर चश्मे के लिए कहा तो ढूँढ़कर नहीं दूँगी।"

मैं हँसने लगता हूँ। जानता हूँ कि दोबारा अगर मुझे चश्मा नहीं मिला तो मुझे फिर अनिता को ही कहना पड़ेगा और वह सारे में घर में इधर-उधर भटकते हुए मुझे चश्मा लाकर देगी। लेकिन आज अनिता को मायके गए पूरे दो दिन हो गए हैं। उसका फोन आया है, वह कल सुबह नाश्ता बनाने के लिए घर आ जाएगी। मगर इन दो दिनों में चंबी बिल्कुल नहीं आई। मैं भी इन दो दिनों में ब्रेड और फलों से तथा खीरा व टमाटर का सलाद खाकर गुजारा करता रहा।

दो दिन बाद अनिता अपने मायके से वापस आई तो उसने सबसे पहले मुझसे कहा, "इन दो दिनों में आपने कुछ खाया कि नहीं या फिर मुझे यों ही बरगलाते रहे?"

"अरे, खाया है न। तुम क्या सोच रही हो कि तुम घर में न रहो तो मैं भूखे दिन गुजारूँ।"

वह मुसकराते हुए बोली, "मैं गैस में एक तरफ चाय बनाती हूँ। और एक तरफ दाल चढ़ा देती हूँ।"

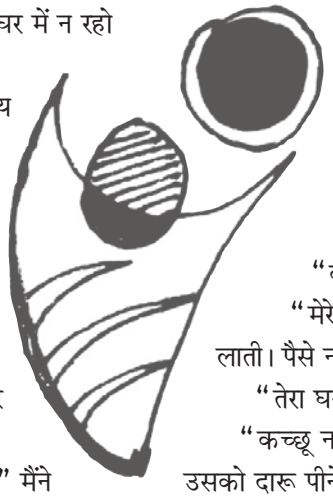

उसने एक चूल्हे पर दाल चढ़ा दी और दूसरे चूल्हे में चाय का पानी चढ़ाने के बाद वह मेरे पास आकर बोली, "मुझे लगता है कि चंबी अब नहीं आएगी। मोनी गुप्ता के घर में जो बाई काम कर रही है, उससे बात करके देखती हूँ। वो चंबी की तरह छुट्टी नहीं करती। और एक इसे देखो, मरजी है तो काम पर आएगी और मरजी नहीं है तो नहीं आएगी। ऐसा कब तक चलेगा।"

"सस्ता रोए बार-बार और महँगा रोए एक बार।" मैंने मुसकराते हुए कहा, "गुप्ता के यहाँ काम करने वाली बाई पच्चीस सौ रुपए लेती है और हमारे घर काम करने वाली पंद्रह सौ।"

सुनकर उसने एक बार मेरी ओर देखा और फिर वह किचन में चली गई। थोड़ी देर बाद वह चाय लाकर मेरे सामने रखते हुए बोली, "मम्मी की तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब है।"

"तुम एक-दो दिन वहीं रुक जातीं।"

"कैसे रुकती। ब्रेड कब तक खाते रहते? थोड़ा-बहुत बनाना सीख लो। अगर कुछ भी नहीं बना सकते तो खिचड़ी ही बनाना सीखो। कुकर में एक साथ दाल-चावल व नमक-मिर्च डालकर कुकर में दो सीटी आने के बाद उसे बंद करो। बस खिचड़ी तैयार।"

"तुम्हें पता है न कि मैं खिचड़ी नहीं खाता।"

"क्या जिंदगी है हम दोनों की? बुढ़ापे में अकेले रहना पड़ रहा है।"

"तू अकेली कहाँ है। हम दो हैं न···और जब दो साथ होते हैं तो वे अकेले नहीं होते। जिंदगी बड़े मजे से चल रही है। और क्या चाहती है तू। अरे, ये तो आज की रीति है कि बेटे की शादी हुई, वह घोंसले में से उड़ा। पक्षी देखे हैं न तूने? एक बार जिस घोंसले से उड़ जाते हैं, उसमें दुबारा नहीं आते।"

तभी कुकर से सीटी की आवाज सुनकर वह जाने लगी तो मैंने डराते हुए कहा, "तेरे पीछे कॉकरोच···!"

कॉकरोच का नाम सुनते ही जोर-जोर से चिल्लाती हुई मेरी तरफ भागी, "बचाओ···बचाओ!"

मैं इसी बात के इंतजार में था। मैंने तुरंत उसे पकड़कर उसका चुंबन लेते हुए कहा, "कॉकरोच नहीं है। मैंने तो झूठ कहा।"

वह अपनी साँसों पर काबू पाने की कोशिश करते हुए फर्श पर बैठकर हाँफने लगी। वह हाँफ रही थी और कुकर लगातार सीटी-पर-सीटी दिए जा रहा था।

पूरा एक हफ्ता होने के बाद चंबी आई। अनिता ने गुस्से में कहा, "कहाँ थी तू आज तक?"

"मेमसाब, वो अपना रग्घू है न!"

"कौन सा रग्घू? किस रग्घू की बात कर रही हो तुम?"

"मेरा घर वाला मेमसाब।"

"क्या हुआ उसको?"

"उसको कच्छू न हुआ मेमसाब। मेरे कू हुआ न!"

"तेरे को क्या हुआ?"

"वो मेरे कू भौत मारा मेमसाब।"

"क्यों?"

"मेरे को बोलने का दारू ले के आ। अब मैं कहाँ से दारू लाती। पैसे नहीं थे न मेमसाब।"

"तेरा घर वाला क्या करता है?"

"कच्छू न करता। घर में पड़े-पड़े दारू पीता। बस्स···सुबह-शाम उसको दारू पीने का।"

"उसको दारू लाकर कौन देता है?"

"मैं देती न मेमसाब। मैं दुकान में जाती, उसके लिए दारू लाती। नहीं लाती तो मारता न मेरे कू। जिस दिन नहीं लाती मेरे कू बदजाद बोलता। जिस दिन लाती, मुझे हेरोइन बोलता। उस दिन मैं चैन से सोती। मरती क्या न करती मेमसाब।"

"तुम उसे दारू लेकर क्यों देती हो? वह खुद नहीं ला सकता क्या?"

"उसको बैठे-बैठे सबकुछ चाहे मेमसाब। कई बार सोचती हूँ कि उसे छोड़कर कहीं चली जाऊँ। पेट का गुजारा तो जैसे-तैसे हो जाएगा मेमसाब।"

"फिर तू जाती क्यों नहीं?"

"सोचती हूँ मेमसाब, उसको कौन देखेगा। मेरे चले जाने पर वो मर जाएगा। पर अब जाने की भी तो उमर नी न मेमसाब। कौन रखेगा? कोई दूसरा बेवड़ा मिल गया तो··· ? आदमी जात से तो मेरा भरोसा ही उठ गया। जब वो दारू पीकर मेरे पास आकर बोलता है कि तू हेरोइन है। वो कौन

सी हेरोइन थी मेमसाब। अरे हाँ, मुझे बोलता तू साधना का डुप्लीकेट है। क्या मैं साधना जैसी हूँ मेमसाब? साधना बोल के वह बहुत प्यार करता मेमसाब।"

"समय का कोई पता नहीं होता चंबी। कुछ पैसे उससे बचाकर रखती भी हो या नहीं? किसी बैंक में खाता भी खोला है या नहीं?"

"खोला है न मेमसाब। डाखाने में···वह गुप्ता मैम है न, उनका खाता है डाखाने में। उसी ने खुलवाया। बेटी बड़ी हो रही है, उसके लिए भी तो कुछ चाहे न मेमसाब।"

"जब भी तुम डाकखाने से पैसे निकालकर लाती हो तो अपने पति से छिपाकर रखा करो। पीने वाले का क्या भरोसा?"

"कहीं भी रख लो मेमसाब। एक दिन मैंने अपने पेटीकोट के नाड़े के अंदर पाँच सौ का नोट रखा था। उसको पता नहीं कैसे पता चला। रात को जब मैं गहरी नींद सोई थी, उसने मेरा नाड़े को घेरा काटकर रुपए निकाल लिये। सुबह उठकर देखा तो मैं रोने लगी।" तभी वह चिल्लाई "उई···।"

"क्या हुआ?"

"पीठ में बहुत दर्द हो रहा है मेमसाब। बहुत मारा उसने।"

"अपनी पीठ दिखा तो···!"

उसने अनिता को अपनी पीठ दिखाई तो उसकी पीठ पर बेल्ट के निशान देखकर वह चौंकते हुए बोली, "कैसे सहन कर लेती है तू उसे। उसके बिना नहीं रह सकती तू?"

"आप ही बोलो मेमसाब। शादी वाली औरत कभी आदमी के बिना रह सकती है···नहीं न। घरवाला है वह मेरा।"

"अरे, वह भी कोई घरवाला हुआ, जो तेरे नाड़े के अंदर से भी पैसे चुरा ले। तुझे बेल्ट से मारे। तुझे दारू की दुकान पर भेजे। अरे, ऐसे आदमी से औरत बिना आदमी के रहे तो वह चैन से जी तो सकती है।"

"ये मेमसाब, मेरे कू ऐसा नहीं बोलने का। बोली न मैं···वह मेरा घरवाला है। वह ही नहीं रहेगा तो मैं जी के क्या करेगा? दारू पीता है तो मेरे पैसे की पीता मेमसाब। तुमसे माँगने नहीं आता। तुम बहुत गलत बोला मेमसाब, वोइच नहीं रहेगा तो मैं अपनी माँग कैसे भरूँगी। अपनी माँग में सिंदूर कहाँ से डालूँगी। वो बेवड़ा है मेमसाब, लेकिन वो मेरी माँग का सिंदूर है। मेरे गले का मंगलसूत्र है। नहीं करना मुझे तेरा काम, जाती मैं···। अभी के अभी हिसाब करने को बोलती मैं। मेरे बेवड़े को कोई गाली देकर पैसे देगा, थूकती मैं ऐसे पैसे पे। तुम मेरे सिंदूर को गाली दिया। जिसकी माँग में सिंदूर नहीं होता न, उसको यह आदमी जात खाने को तैयार रहता। बेवड़े को लेकर आती मैं। अब वोइच तुम से बात करेगा।"

कहते हुए वह गुस्से में पैर पटकती चली गई। अनिता कभी उसे जाते हुए देखती तो कभी मुझे। कुछ देर वह गुमसुम खड़ी रही और फिर वह चंबी के द्वारा छोड़े गए बरतनों को साफ करने लगी।

म.नं.-१३३ए/१
ई-ब्लॉक, एक्सटेंसन, गली नं.-४
फेज-१, २५ फुटा रोड़, श्यामबिहार,
नजफगढ़, दिल्ली-११००४३
दूरभाष : ९९५३८७८४२६

लघुकथा

चौहद्दी से मुक्ति

● योगेंद्र नाथ शुक्ल

श्यामा और गौरी आज बहुत खुश थीं। सुबह से ही उन्हें अच्छी तरह नहलाया गया था। दुल्हन की तरह उनका पूरा शृंगार हुआ था। आँखों में काजल लगाया गया था। शरीर में अलग-अलग रंगों के छापे माँड़े गए थे। सुंदर-सुंदर हार पहनाए गए थे। मालिक जैसे ही बाड़े के बाहर गया, श्यामा बोली, "बहना! तुम कितनी सुंदर लग रही हो!"

"दीदी, आप भी तो आज पहचानी नहीं जा रही!"

"पहले के दिन कितने अच्छे थे, रोज चरवाहा हमें चराने के लिए जंगल ले जाया करता था। चलते फिरते थे, तो अच्छा व्यायाम भी हो जाया करता था और दूध भी अच्छा निकलता था।"

"सही कहा तुमने, यह भी कोई जीवन है कि चौबीसों घंटे बाड़े में रहो, बस यहाँ की टूटी दीवार और छत को देखते रहो···! खाओ और पड़े रहो···! मालिक को दूध ज्यादा चाहिए, इसलिए वह हमें इंजेक्शन अलग लगाता है···उसका दर्द भी सहो।"

"कब से इंतजार कर रहे थे कि 'गोवर्धन पूजा' का दिन जल्दी आए, ताकि बाहर की दुनिया देख सकें। गाँव घूम सकें···और आज वह दिन आ गया।"

बाड़े की चौहद्दी से कुछ समय के लिए ही सही मुक्ति तो मिलेगी, यह सोचकर वे प्रसन्न होने लगीं।

पूर्व प्राचार्य, निर्भय सिंह पटेल
शासकीय विज्ञान महाविद्यालय,
इंदौर (म.प्र.)
दूरभाष : ०९९७७५४७०३०

स्मृतियाँ आलंबन

• अनिल अग्निहोत्री

सुपरिचित लेखक। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कविता, आलेख, कहानी और समीक्षाएँ प्रकाशित। भारत के नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के अधीन कार्यालय महालेखाकार (म.प्र.) ग्वालियर से वरिष्ठ लेखा अधिकारी पद से सेवानिवृत्त।

सवाल

सवाल यह नहीं
कि आप एक दूसरे के कितने पूरक रहे

सवाल यह भी नहीं
कि उन्होंने आपके विचार कितने स्वीकारे,

सवाल यह तो कतई नहीं
कि आपने उन्हें कितना चाहा
या उन्होंने आपको कितना ?

सवाल सिर्फ इतना भर है
कि आप
उनके सम्मुख होते हुए भी
कितने स्वतंत्र निर्णय ले पाए।
यदि नहीं तो
फिर आप
आज भी सवालों के घेरे में हैं।

सेवकाई

आपने 'ज' कहा
वे जल लेकर उपस्थित हुईं।
आपने 'च' कहा
वे चाय लेकर उपस्थित हुईं।
और आपके 'द' कहने के पहले ही दो बिस्किटों के साथ
मुहैया करा दी गई आपको दवा।
सारे स्वर-व्यंजनों से बनने वाले शब्द
आपके उच्चरण के पूर्व ही
परिवर्तित होते रहे आदेश में
और आप आत्म-मुग्ध होते रहे
ऐसी आज्ञाकारिता पर।
दरअसल ये सबकुछ
वैसा नहीं था
जैसा आप समझते रहे
आप धीरे-धीरे
एक पे एक ग्यारह होने की प्रक्रिया में ढलते रहे
और वे आज्ञाकारी बन
आपके मनोमस्तिष्क पर
काबिज होकर
सदा के लिए रानी बन गई।

उद्दीपन

वे कुछ-कुछ अपने को
फिराक जैसा
यारबाज समझते रहे
और लुटाते रहे
मुक्त हस्त से
परिचित और अपरिचित दोनों को
अब-जब
शेष में शून्य है
स्मृतियाँ आलंबन
और बौखलाहट उद्दीपन
बन गया है।

देर आए दुरुस्त आए

उन्होंने जब-जब
परिवार के प्रति कुछ करने
या सोचने की जेहमत उठाई
तभी उन्हें थमा दी जाती थी
एक फेहरिश्त यह कहते हुए
कि हमारे परिवार के लिए भी
कुछ करो।
बेचारे!
करते रहे
कभी इधर-कभी उधर
उजागर और गैर उजागर तरीकों से।
उनके पास नहीं थी कोई भौतिक तुला
पर दोनों ही पक्ष समझते रहे यह
कि उनके लिए ज्यादा किया गया।
उधर सुविधाओं की वैतरणी में वे
डुबकियाँ लगाते रहे
और
घर में असंतोष के बादल छाए रहे।
जब कुछ आंतरिक खिंचाव बढ़ा
तो फिर उन्होंने ही व्यवस्था दी—
'तुम मरे जा रहे थे उनके लिए
देखो! मैं पहले ही कह रही थी
पर तुम मेरा कहा मानते कब थे!
अब खुल गई तुम्हारी आँखें
चलो देर आए-दुरुस्त आए।'

'कमल वास्यम', बी-११५,
समाधिया कॉलोनी, तुलसी उद्यान के सामने
तारागंज, लश्कर, ग्वालियर-४७४००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२६२३२५५९

बंदर

मूल : **एलेक्जेंडर किलैंड**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

वह वास्तव में बंदर ही था जिसने मुझे कानूनी योग्यता परीक्षा में प्रथम श्रेणी का सम्मान दिलवाया। भले ही मैं दूसरी श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। फिर भी अच्छा ही रहा।

परंतु मेरा वकील मित्र, जिसको प्रतिदिन मेरी परीक्षा के पेपरों की अपूर्ण नकलों को मिश्रित भावनाओं के साथ पढ़ना पड़ता था, ने उन पेपरों से यह विचार बनाया कि कानूनी समस्याओं से निपटने का मेरा ढंग बहुत ही अच्छा है। उसे डर था कि इनसे संभवत: मेरी प्रथम श्रेणी आ जाए। जबानी परीक्षा में मुझे यंत्रणा और असुविधा सहन करते देख उसे आपत्तिजनक लगा क्योंकि वह मेरा मित्र था और मुझे जानता था।

वास्तव में यह बंदर नहीं था बल्कि सिक्वेगार्ड की 'कानूनी समस्याएँ', जिसको अपने मित्र के केकुमिस से उधार लाया था, के पृष्ठ ४९६ के किनारे पर लगा कॉफी का धब्बा था।

कानूनी परीक्षा में बैठने के अतिरिक्त, आधी सर्दियों के कीचड़ और अँधेरे में कोई अन्य बात इतनी उदास करनेवाली हो सकती है, इसका अनुमान लगाना कठिन था। संभवत: गरमियाँ इससे भी बुरी होतीं, परंतु मैंने इसकी कोशिश नहीं की, इसलिए कह नहीं सकता।

सर्कस में अप्रसन्न नट से पहले सार्वजनिक अभिनय की तरह, एक व्यक्ति को ग्यारह प्रश्नों से जूझना पड़ता है, जैसे—क्या तेरह भी होते हैं? (निश्चित रूप से यह एक भयानक संख्या है जिसका अनुमान किया जा सकता है।)

अपने जीवन को हाथ में और मूर्ख हँसी को होंठों पर लिये वह वहाँ वेग से कूदता है और ग्यारह कागज से ढके पट्टों में से कूदना पड़ता है, जैसे—क्या तेरह भी होते हैं?

कानूनी परीक्षा का उम्मीदवार अपने आपको उसी हालत में पाता है जिसमें कि सर्कस का नट; केवल उसे संगीत की ध्वनि पर या फिर चमकदार, प्रकाशित मकान में कूदना नहीं पड़ता। वह आधे अँधेरे में सख्त कुरसी पर बैठता है और उसका मुँह दीवार की ओर होता है और वह केवल निरीक्षक के जूतों की ही चरचर करती आवाज सुनता है, क्योंकि कानूनी परीक्षा में निरीक्षक के जूतों की-सी चरचरी आवाजें संसार में किसी और जूतों की नहीं होती!

फिर वह विकट क्षण आता है जब काला गुप्तचर लॉ कॉलेज से प्रश्नों की सूची लाता है। वह दरवाजे में खड़ा होकर अवसर के डरावनेपन को निष्ठुर घृणा की उत्साहहीन उदासीनता से पढ़ता है और जो प्राणनाशक लेख जो वह हाथ में थामे हुए है, भद्दे कागज से ढके पट्टे की तरह है जिसमें से उम्मीदवार को कूदना होता है अथवा विफल होकर उतरना और कदमों को पीछे हटाना पड़ता है।

तुम काठी पर अपने आपको स्थिर करते हो; ऐसा करने में जरा भी सफल नहीं होते और अशांत होकर इधर-उधर डोलते हो।

अप्रसन्न व्यक्ति सरलता से इसे छोड़ देता है और उतर जाता है। ज्यों ही वह दरवाजे की ओर जाता है, तमाम आँखें उसे देखती हैं और बाकी उम्मीदवारों को नि:श्वास का आभास होता है। 'तुम आज, मैं कल।' इस बीच कुछ आवाजें आती हैं जिनसे प्रतीत होता है कि कूदना आरंभ हो गया।

कुछ आदमी स्थिरता और सुंदरता से कूदते हैं और प्रथम श्रेणी पाने के विश्वास से दूसरे छोर पर पहुँचते हैं; दूसरे जो पट्टियों में से सीधा कूदना आसान करतब समझते हैं, वे हवा में घूम जाते हैं और पीछे की ओर कूद जाते हैं। यह कहा जाता है कि उनका फुर्तीलापन मध्यस्थ से दिए जानेवाले गुणावगुण ज्ञान को जीत नहीं सकता।

फिर दूसरे पुन: कूदते हैं और पट्टे को चूक जाते हैं; वे इसके नीचे से या एक ओर से कूद जाते हैं। कुछ व्यक्ति अभिनय को आसान समझते हुए ऊपर से कूद जाते हैं और बाद में अपनी उन्मत्त सवारी को असावधान विश्वास के साथ जारी रखते हैं।

परंतु यदि कोई व्यक्ति सवारी की इच्छा नहीं करता या जिसको पट्टी में से कूदने का अनुभव नहीं है, उसपर दया आती है, जब तक वह पृष्ठ ४९६ पर बंदर को नहीं मिलता!

उन दिनों हमने दिन में पट्टियों में से कूदकर और रात को—इसे कैसे करना है सीखकर, अस्वस्थ जीवन गुजारा।

एक रात मैंने सिक्वेगार्ड की 'कानूनी समस्याएँ', आधी पढ़ी; देर हो चुकी थी। मैंने अग्नि में और लकड़ियाँ डालीं जबकि मुझे हवा की जरूरत थी और खिड़की को खोल दिया जब मुझे गरमी चाहिए थी और थोड़ी देर में 'कानूनी समस्याएँ' के मुरझाए पृष्ठों को आँधी की तरह पढ़ गया।

परंतु अंत में आँधी भी थम गई और जब यह मेरे साथ हुआ तो मैं सीधा अकड़कर बैठ गया और ग्यारहवीं बार पढ़ा, इसलिए व्यक्ति को निश्चय ही निर्णय करना चाहिए···व्यक्ति को इसलिए···निश्चय···उपयोगी को अनुकूल से मिलाओ··· अपनी कुरसी में पीछे को झुक जाओ···मैं भी पढ़ सकता हूँ···इसलिए···

परंतु गैर-कानूनी तसवीरें पुस्तक में तैरने लगीं, उन्होंने दीपक को

घेर लिया और मेरी कानूनी दृष्टि की स्पष्टता को पूरी तरह ढाँकने के लिए धमकाया।

मैं अब धुँधलेपन से सफेद पृष्ठ में भेद कर सकता था; एक···हो सकता है···इसलिए बाकी घने छपे पृष्ठों के काले अक्षरों के समूह में लुप्त हो गए; मेरी आँखों ने थकी निराशा से उनका पीछा किया। फिर मैंने दाईं ओर के पृष्ठ के नीचे देखा! वह बंदर का चेहरा था जो किसी ने पृष्ठ के किनारे पर बनाया था; यह सुंदरता से बनाया गया था—विशेषकर उसका भूरा चेहरा।

मुझे कहते हुए शर्म आती है कि सिक्वेगार्ड की अपेक्षा मेरी रुचि इस कलाकृति में अधिक थी। मैं उठा और अच्छी तरह देखने के लिए आगे को झुका।

परीक्षा के बाद मैंने मालूम किया कि चेहरे का अद्‌भुत भूरा रंग कॉफी के कारण था और आगे सारा बंदर कॉफी के धब्बे के सिवा कुछ भी नहीं था।

कलाकार ने बस आँखें और कुछ बाल ही जोड़े थे! कल्पनाशक्ति तो उसी की थी जिसने कॉफी को गिराया था।

मैंने तब जाना, क्योंकि मैं जानता था कि ककुमिस एक रेखा भी नहीं खींच सकता था, परंतु वह अपना कानून पूरी तरह जानता था। और फिर मैंने उसके बारे में सोचना शुरू किया, उसकी सफल परीक्षा के बारे में जब उसने प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा उसके विजयी होकर घर लौटने के बारे में विचार किया। इस सबको पूरा करने में उसने कैसा काम किया होगा? इस प्रकार गंभीरतापूर्वक सोचने पर मेरा अंत:करण गतिमान हो गया और अल्प निद्रा से जागा जबकि एकाएक उभरी चमक की तरह मेरी अपनी अज्ञानता अपनी सारी भयानक नग्नता के साथ मेरे सामने आ खड़ी हुई।

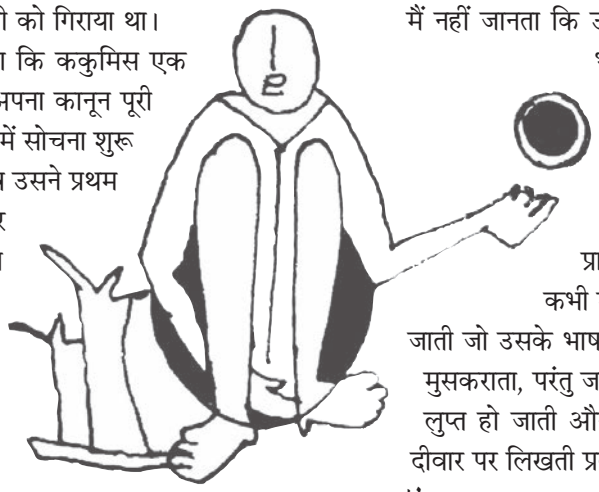

मैंने सोचा कि उतरना मेरे लिए कितना लज्जाजनक होगा या उससे भी बुरा होगा, यदि मेरी गणना उन अप्रसन्न व्यक्तियों में की गई जो सदा गुमनाम रहते हैं और जिनके बारे में कहा जाता है—'इसे अतिरस्कृत प्राप्त हुआ!'

कभी-कभी ऐसा होता है कि लोग अधिक पढ़-लिखकर भुलक्कड़ हो जाते हैं। मुझे भी ऐसा ही लगा जब मैंने अपनी अज्ञानता के विस्तार को महसूस किया।

मैं उछल पड़ा और सिर पानी के टब में डाल दिया तथा बालों को सूखने का समय न देते हुए मैंने इस निश्चय से पढ़ना शुरू कर दिया कि प्रत्येक शब्द अमिट रूप से मेरी स्मरण शक्ति पर छप गया।

बाईं ओर के पृष्ठ में मैंने जल्दी की, फिर पूरी शक्ति से दाईं ओर बंदर के पास पहुँचा, उसको छोड़ दिया और पृष्ठ बदला तथा बहादुरी से पढ़ने लगा।

मैंने ध्यान नहीं दिया कि मेरी शक्ति कम हो रही थी। हालाँकि मैंने नया अध्याय पढ़ा जो सामान्य हालत में उकसाने का काम करता था। मैं, उन कपटी वाक्यों में, जिन्हें मायावी गंभीरता से पढ़ते हैं, फँसे बिना नहीं रह सका!

मैंने मुक्ति के साधनों को टटोला परंतु वे नहीं मिले।

मेरा सिर चकराने लगा। बंदर कहाँ है?···कॉफी का धब्बा···कोई भी दोनों पृष्ठ पर कल्पनाशक्ति नहीं दिखा सकता···जीवन में हर चीज की सही और गलत दिशा होती है···उदाहरणार्थ, विश्वविद्यालय की दीवारघड़ी··· क्योंकि मैं तैर नहीं सकता, मुझे बाहर आने दो···मैं सर्कस को जा रहा हूँ! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम मुझपर हँस रहे हो, ककुमिस! परंतु मैं पट्टे में से कूद सकता हूँ, मैं तुम्हें बताता हूँ···और यदि प्राध्यापक, जो मेरे दीपक से निकला है, कानूनी शरीर में ठीक ढंग से ढूँढ़ता तो मैं यहाँ लेटा हुआ न होता···कर्ल जोहनस स्ट्रीट में कमीज पहने···परंतु।

इस घटनाक्रम में मुझे स्वप्नहीन गहरी निद्रा आ गई जो केवल उन्हें ही आती है जो युवावस्था में बुरे अंत:करणवाले होते हैं।

अगली प्रात: मैं शीघ्र ही काठी पर स्थापित हो गया।

मैं नहीं जानता कि उस दिन शैतान ने जूते पहने थे, परंतु कुछ भी हो, उसके निरीक्षकों ने अपने-अपने जूते पहने थे और वे मेरे पास ही, जहाँ मैं अपना चेहरा दीवार की ओर किए दु:खी बैठा था, चर-चर की आवाज करते थे! पीड़ित व्यक्तियों को देखता हुआ प्राध्यापक कमरे में घूम रहा था। कभी-कभी उसकी दृष्टि दु:खी चापलूसों में से एक पर जाती जो उसके भाषणों में उपस्थित होते थे। वह सिर हिलाकर मुसकराता, परंतु जब उसकी आँखें मुझपर ठहरतीं, मुसकराहट लुप्त हो जाती और उसकी बर्फीली दृष्टि मेरे सिर के ऊपर दीवार पर लिखती प्रतीत होती—'ओह, हत-भाग्य! मैं तुम्हें नहीं जानता···!'

एक या दो निरीक्षक चर-चर करते प्रधान के पास गए और चापलूसी करने लगे; मैं उन्हें अपनी कुरसी के पीछे कानाफूसी करते सुन सकता था जबकि मैं मौन गुस्से में दाँत पीस रहा था कि ऐसे पापियों को वेतन दिया जाता है जो मुझे या मेरे अच्छे मित्रों को यातना देकर अपनी आजीविका अर्जित करते हैं।

दरवाजा खुला और पीली रोशनी की किरणें पीले चेहरों पर चमक उठीं; इसने लक्समबर्ग के अजायबघर में 'डर से पीड़ित लोगों' में एक की याद दिला दी। पुन: अँधेरा हो गया और काला गुप्तचर चमगादड़ की तरह अपने पंजों में प्रसिद्ध सफेद कागज लिये कमरे में धीरे से आया।

उसने पढ़ना शुरू किया।

मैं अपने सारे जीवन में इतना निराश नहीं हुआ जितना उस समय हुआ था; फिर भी पहले ही शब्द ने मुझे उछाल दिया।

"बंदर।"

मैं शब्दों को लेकर लगभग चिल्लाया, क्योंकि इसमें कोई संदेह नहीं था कि यह 'कानूनी समस्याएँ' का पृष्ठ ४९६ था जहाँ मैंने बंदर को ढूँढ़ा

था! जो समस्या वह पढ़ रहा था वह वही थी जिसको एक रात पहले पूरी शक्ति से मैंने पढ़ा था। मैंने लिखना आरंभ कर दिया।

संक्षिप्त भूमिका के बाद मैंने सुरीला वाक्यखंड लिखा—

"इसलिए व्यक्तियों को निश्चय ही निर्णय···" और बाएँ-दाएँ के पृष्ठों को जल्दी से पढ़ गया, फिर पूरी शक्ति से दाएँ हाथवाले को···बंदर के पास पहुँचा, उसे छोड़ दिया, टटोलने लगा···और एकाएक रुक गया।

मैं जानता था कि किस चीज की कमी है, परंतु मैं यह भी जानता था कि यह जानने के लिए कि किसी चीज की कमी है, यत्न करना व्यर्थ था। यदि किसी को किसी चीज का नहीं पता तो नहीं पता, बस यही काफी है। अत: मैंने पूर्ण विराम लगाया और दूसरों की आधी समाप्ति से पहले चला गया।

दुर्भाग्य से मेरे साथियों ने सोचा कि मैं उतर गया था, और पट्टी से हटकर कूदा था, क्योंकि समस्या जटिल थी!

"ठीक है, ठीक है," वकील ने कहा जब उसने मेरा परचा पढ़ा— "यह मेरी आशा से भी अच्छा है! क्यों, यह खालिस सिक्वेगार्ड है! तुमने अंतिम बिंदु छोड़ दिया है, परंतु उसका अधिक महत्त्व नहीं है। तुम देख सकते हो कि विषय में अच्छे हो।"

"मैं कुछ नहीं जानता था।" वह मुसकराया।

"तो क्या रात भर ही में समस्या पर विजय पा ली?"

"हाँ, ऐसा ही था।"

"क्या किसी ने तुम्हारी सहायता की थी?"

"हाँ।"

"यह अध्यापक का भूत होगा जिसने एक रात में इतना कानून तुम्हारे सिर में डाल दिया। क्या मैं जान सकता हूँ कि वह जादूगर कौन था?"

"बंदर।" मैंने उत्तर दिया। सा अ

ऑनलाइन रिश्ते

लघुकथा

• नेहा सूरज बिनानी 'शिल्पी'

रसोई के सब काम निपटाकर सीधे अपनी मनपसंद दुनिया 'मोबाइल' की दुनिया में चली गई। व्हाट्सएप खोला। इतने सारे ग्रुप, पारिवारिक, दोस्तो के, समाज के, पड़ोसियों के। २ घंटे बाद मोबाइल देखो तो संदेशों का समंदर आया हुआ होता है। जिसमें डूब जाना बहुत सुखदायक होता है। फिर शुरू होता है, संदेश पढ़ने और अग्रेषित करने का सिलसिला।

हाँ तो! मोबाइल में संदेश देख रही थी तो पता चला कि मौसी सास के बेटे की शादी पक्की हो गई। तिलक भी हो गया। अच्छी जोड़ी थी। सभी ग्रुप मेंबर्स, जो कभी पारिवारिक सदस्य कहलाते थे, बधाई दे रहे थे। मैंने भी बधाई दे दी और कार्य संपन्न।

अरे! मिसेज मेहता (मेरी पड़ोसन) के नए घर का मुहूर्त है दो दिन बाद। हम्म! उनके घर का काम तो चल रहा था। लेकिन महज १०० कदम की दूरी पर रहने के बावजूद उन्होंने व्हाट्सएप पर निमंत्रण दिया।

निमंत्रण के फोटो के नीचे एक पंक्ति "कृपया इसे ही हमारा व्यक्तिगत निमंत्रण माना जाए", जो हमें असमंजस में डाल देता है कि हमें जाना चाहिए या नहीं!

बच्चे अब बड़े हो गए, अपना जन्मदिन अपने दोस्तों के साथ बाहर ही मानते हैं। पैसे लेकर बेटा दोस्तों के साथ चला गया। आधे घंटे बाद अपने ही बेटे की जन्मदिन पार्टी को फेसबुक पर सीधा प्रसारण (लाइव) देखने का मौका मिला।

राखी का त्यौहार आया। अपने एक मौसेरे भाई को जो कि मेरा हमउम्र ही था, हमारी बहुत पटती थी, राखी भेजी। राखी के दिन शाम को व्हाट्सअप आया की राखी बाँध ली, सबको राखी बहुत अच्छी लगी। बहुत गुस्सा आया। ऐसा भी क्या की मुफ्त के फोन से दो घड़ी बात करने का भी समय नहीं।

फिर सोचा अगले साल राखी भी व्हाट्सएप पर ही भेज दूँगी। जिस तरह का चलन आजकल चल रहा हैं, तो ऐसा करने में कोई ताज्जुब भी नहीं।

वाह भई! कितनी बनावटी दुनिया में जी रहे है हम। जहाँ तकनीक ने हमारी दूरियों को तो मिटा दिया, लेकिन भावनाओं को कम कर दिया।

मुझे आज भी याद है, मेरे देवर की शादी। जो कि महज ७ साल पहले हुई थी। आस पास १०० किलोमीटर क्षेत्रफल तक सभी रिश्तेदारों को व्यक्तिगत निमंत्रण दिया गया था। जो दूर थे, उन्हें दो तीन बार फोन किया गया था, महीने भर पहले ही। यही नहीं रोज सुबह शाम घर का एक सदस्य, पड़ोस के १० घर में व्यक्तिगत रूप से बुलावा देने जाता, गीत इत्यादि छोटे कार्यक्रमों के लिए भी। हफ्ते भर तक खूब रौनक रहती थी।

अब ना तो वैसे मेजबान है न ही वैसे मेहमान। किसी के पास समय नहीं। आमंत्रण, बधाई सब ऑनलाइन भेज दिया जाता हैं। हम भौतिक रूप से पहले से अधिक संपन्न तो हो गए, लेकिन आत्मिक रूप से कमजोर।

सा अ

मुंबई (महा.)
दूरभाष : ९६१९०५०२५५

कबीर, नविका और मछली

बाल-कहानी

• मधु काँकरिया

एक लड़की थी, उसका नाम था नविका। उसकी एक सहेली थी, नीना। उसके दो दोस्त थे—कबीर और सोनू। नविका के सभी दोस्तों में कबीर ऐसा दोस्त था, जो सबसे अधिक शैतान था। नविका को वह एकदम अच्छा नहीं लगता था, लेकिन कबीर को नविका बहुत अच्छी लगती थी। कबीर का मन करता कि वह हमेशा नविका के साथ रहे।

एक रात नविका ने सपने में देखा कि कोई नीलपरी उसे एक बहुत सुंदर बगीचे में ले गई है। उसने देखा कि नीलपरी ने बहुत चमकता हुआ नीला गाउन पहना हुआ है। उनके दोनों तरफ सुंदर-सुंदर पंख हैं और उन्हीं पंखों से वह नविका को अपनी चमकती पीठ पर बैठाकर पूरे आसमान में घुमा रही है।

नाविका ने अपने दोस्तों को अपने घर बुलाया और अपना सपना सुनाया। सपना सुनने के बाद तीनों बहुत देर तक नीलपरी-नीलपरी खेलते रहे। फिर उन्होंने जमकर खाना खाया। खाने के बाद नविका की मम्मा ने कहा, "अब तुम लोग थोड़ी देर के लिए सो जाओ।" बच्चों ने सोने की कोशिश की, पर उन्हें सोना उस शानदार शाम का अपमान करना लगा। लिहाजा कबीर ने सुझाया कि क्यों न हम पास के बगीचे में चलें। नविका, सोनू और नीना ने मिलकर कहा, "वाह! ग्रेट आइडिया, वहाँ एक सरोवर भी है, उसमें सुंदर-सुंदर मछलियाँ हैं। हम उन्हें नाचते हुए देखेंगे और मछलियों को आटे की गोलियाँ खिलाएँगे।"

नीना ने कहा, "गुड आइडिया। चलो, खूब मजा आएगा।"

नविका के घर से थोड़ी दूर पर ही एक बगीचा था, जिसके बीच में एक सरोवर था और आस पास बहुत सुंदर फूलों के पेड़ थे। वहाँ पर रोज ढेर सारे बच्चे सरोवर की मछलियाँ और सुंदर-सुंदर फूल देखने आते थे।

सरोवर की मछलियाँ देख नविका को पुस्तक में पढ़ी एक कविता याद आई और वह गाने लगी, "मछली जल की रानी है/जीवन उसका पानी है/हाथ लगाओ डर जाएगी/बाहर निकालो मर जाएगी।" सोनू, नीना और कबीर सब कोई झूम-झूमकर नाचने-गाने लगे।

तभी शरारती कबीर को एक शरारत सूझी और उसने सरोवर से एक सुंदर सी मछली की पूछ पकड़ उसे पानी से बाहर निकाल लिया। मछली छटपटाने लगी। पंख फड़फड़ाने लगी। उसकी फड़फड़ाहट देख नविका को बहुत गुस्सा आया। उसने चिल्लाकर कबीर से कहा, "कबीर, मछली को वापस सरोवर में डालो, बाहर निकालोगे तो वह मर जाएगी।" बुद्धू और शरारती कबीर हँसने लगा—"अरे, कुछ नहीं होगा, देखो कितना सुंदर डांस कर रही है यह मछली!"

"बुद्धू यह छटपटा रही है, डालो इसे वापस पानी के अंदर।"

सुपरिचित लेखिका एवं अनुवादक। अभी तक छह उपन्यास एवं दस कहानी-संग्रह एवं अनेक पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। भारतीय भाषा परिषद् द्वारा 'कर्तृत्व समग्र सम्मान', 'प्रेमचंद स्मृति कथा सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

बुद्धू कबीर को उसकी बात नहीं सुननी थी, नहीं सुनी। नविका को बहुत गुस्सा आया। उसने कबीर की गरदन को पकड़ उसे सरोवर के पानी में डुबो दिया। कबीर छटपटाने लगा, क्या कर रही हो नविका, मैं मर जाऊँगा।

वह अजीब ढंग से सर हिलाने लगा।

नविका ने दस सेकंड के भीतर उसे पानी से बाहर निकाला। पानी से बाहर निकलते ही वह नविका को मारने लगा, बुद्धू नविका, क्यों मेरी गरदन पानी में डुबोई? जानती हो, कितनी तकलीफ और छटपटाहट हुई मुझे?

नविका ने जवाब दिया, "तुम तो अच्छे से डांस कर रहे थे।"

कबीर आगबगूला हो गया, "बेबकूफ मैं साँस तक नहीं ले पा रहा था, मर ही जाता, यदि थोड़ी सी भी देर और हो जाती थी।"

"पर तुम साँस क्यों नहीं ले पा रहे थे, तुम्हारी नाक तो खुली थी।"

"बुद्धू, मैं पानी के अंदर था, पानी के अंदर मेरी नाक साँस कैसे लेती?"

"अब कैसे ले रही है?"

"अब मैं जमीन पर हूँ, मेरी जगह जमीन है, पानी नहीं।"

"अब समझे, दस सेकंड में तुम्हारी हालत खराब हो गई तो सोचो, उस मछली पर क्या गुजरी होगी, जिसे तुमने निकाल रखा था, वह भी तो पानी में रहती थी, उसके लिए जमीन पर रहना वैसा ही था, जैसा तुम्हारा पानी में रहना।"

कबीर को अपनी भूल महसूस हुई और उसने वादा किया नविका से कि अब वह कभी मछली को पानी से बाहर नहीं निकालेगा।

तीनो फिर से गाने लगे—"मछली जल की रानी है, जीवन उसका पानी है, हाथ लगाओगे तो डर जाएगी, बाहर निकलोगे तो मर जाएगी।"

साअ

कृष्ण धाम, तीसरा तल,
फ्लैट-३ सी, ७२ ए, बिधान सरानी
कोलकाता-७००००६
दूरभाष : ९१६७७३५९५०

आलेख

स्वाधीनता संघर्ष के अमर नायक सरदार अजीत सिंह

● उत्कर्ष श्रीवास्तव

स्वातंत्रता संग्राम के अमर सेनानियों में एक ऐसा योद्धा भी हुआ, जिसने लगभग ५० वर्षों तक ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ न सिर्फ अनवरत संघर्ष किया बल्कि स्वाधीनता की कभी न बुझनेवाली अलख को भी जलाए रखा। एक ऐसी शख्सियत, जिसे अंग्रेजी सरकार ने 'राजनीतिक विद्रोही' करार देते हुए उसकी मौत का फरमान जारी किया था। जिससे प्रभावित होकर बाल गंगाधर तिलक ने उनमें स्वतंत्र भारत के पहले राष्ट्रपति बनने की योग्यता देखी थी। उस विराट् व्यक्तित्व का नाम है सरदार अजीत सिंह।

चालीस से भी अधिक भाषाओं का ज्ञान रखनेवाले सरदार अजीत सिंह ने भारत के बाहर विभिन्न देशों इटली, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, जापान, ईरान, तुर्की, ब्राजील आदि में भारतीय क्रांतिकारियों से मिलकर भारत की स्वाधीनता के लिए प्रचार-प्रसार करते हुए वैश्विक जनमत का निर्माण किया।

प्रारंभिक जीवन

सरदार अजीत सिंह का जन्म २३ फरवरी, १८८१ को जालंधर, पंजाब के खटकड़ कलाँ गाँव में सरदार अर्जन सिंह के घर में हुआ था। इनकी माता का नाम जय कौर था। तीन भाइयों में ये दूसरे स्थान पर थे। इनसे बड़े सरदार किशन सिंह (शहीद भगत सिंह के पिता) व इनसे छोटे सरदार स्वर्ण सिंह थे। अजीत सिंह के दादाजी फतेह सिंह महाराजा रणजीत सिंह की सेना में थे। आंग्ल-सिख युद्ध में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद सिखों को एकजुट करके फतेह सिंह ने अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध किया था।

अपनी प्रारंभिक शिक्षा जालंधर के 'सैन दास एंग्लो-सिख संस्कृत हाई स्कूल' से प्राप्त करने के बाद कॉलेज की पढ़ाई लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज से पूरी की। कानून की शिक्षा के लिए वे लॉ कॉलेज बरेली आ गए, परंतु खराब स्वास्थ्य की वजह से पढ़ाई पूरी न कर सके।

बरेली में रहने के दौरान अजीत सिंह क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं के संपर्क में आए और उनके सहयोग के लिए क्रांतिकारी योजनाओं को क्रियान्वित करने में लग गए। १९०३ में लॉर्ड कर्जन ने ब्रिटिश सरकार की शक्ति प्रदर्शन के लिए दिल्ली दरबार का आयोजन किया और देशभर के सभी राजाओं को निमंत्रण भेजा। वहाँ आए सभी भारतीय राजाओं को अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट करने के उद्देश्य से सरदार अजीत सिंह दिल्ली पहुँचे और राज्यों के एक-दूसरे से अच्छे संबंध हों, इसके लिए प्रयास किया, जिसमें उन्हें सफलता भी मिली।

उन दिनों क्रांतिकारियों के एक को यह महसूस होने लगा कि कांग्रेस केवल ब्रिटिश सरकार के खिलाफ याचिका दायर करने तक ही सीमित हो रही है। लाला घसीटाराम व सरदार किशन सिंह के साथ मिलकर सरदार अजीत सिंह ने गोपनीय रूप से पंजाब में 'भारत माता सोसाइटी' का गठन किया और १९०७ में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (१८५७) के ५० वर्ष पूरे होने पर उस क्रांति को पुन: दोहराने का लक्ष्य रखा।

पगड़ी सँभाल जट्टा आंदोलन

उधर अंग्रेजों के नए कृषि कानून के तहत बढ़े हुए राजस्व और जमीनों को जब्त करने संबंधी प्रावधानों के खिलाफ उपजे असंतोष व आंदोलन का नेतृत्व सरदार अजीत सिंह ने किया। मार्च १९०७ को लायलपुर (वर्तमान फैसलाबाद) में 'कोलोनाइजेशन ऐक्ट' और 'दोआब बेरी ऐक्ट' के खिलाफ एक युगांतकारी सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में 'झांग सयाल' के संपादक बाँके बिहारी ने अपनी ऐतिहासिक कविता 'पगड़ी सँभाल जट्टा' पढ़ी। यह गीत किसानों और आंदोलनकारियों के बीच इतना प्रसिद्ध हुआ कि इस आंदोलन का नाम ही पगड़ी सँभाल जट्टा आंदोलन रख दिया गया।

ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के खिलाफ जन-आंदोलन

सरदार अजीत सिंह ने अपने आंदोलन का केंद्र लायलपुर रखा। ब्रिटिश सरकार ने एक परिपत्र जारी करके सरकारी कर्मचारियों और भारतीय सैनिकों को अजीत सिंह के भाषण न सुनने की अपील की, लेकिन इसका उलटा प्रभाव पड़ा और भारी संख्या में लोग उनके भाषण सुनने में रुचि लेने लगे। पंजाब, गुरुदासपुर, होशियारपुर, फिरोजपुर, अंबाला, जालंधर, रावलपिंडी, मुल्तान, आदि स्थानों पर जहाँ भी उनका भाषण होता, वहीं बड़ी संख्या में लोग उन्हें सुनने के लिए एकत्र हो जाते थे। भारतीय सैनिकों का एक प्रतिनिधिमंडल उन्हें समर्थन देने के लिए तैयार हो गया।

उनके भाषण से उत्तेजित जनता की अंग्रेजों से झड़प हो गई और लोगों ने सरकारी कार्यालय और चर्च में आग लगा दी। परेशान होकर ब्रिटिश सरकार ने कई स्थानों पर उनके भाषण को प्रतिबंधित कर दिया गया।

भाषाओं पर प्रतिबंध लगने के बावजूद वे काफी जगहों पर जनता को संबोधित करते रहे तथा आंदोलन जारी रखने के लिए प्रकाशन का सहारा लेते थे। इसके लिए उन्होंने 'भारत माता बुक एजेंसी' की स्थापना की। इनके भाषणों का प्रभाव यह हो गया था कि किसानों, सेना और पुलिस ने जगह-जगह विद्रोह करना शुरू कर दिया। अब ब्रिटिश सरकार को ये समझ में आने लगा था कि भू-राजस्व आंदोलन की आड़ में भारत से ब्रिटिश शासन खत्म करने की तैयारी चल रही है।

परिणामस्वरूप लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह को गिरफ्तार करने का आदेश जारी किया गया और ९ अप्रैल, १९०७ को लाला लाजपत राय को गिरफ्तार कर लिया गया। इस आंदोलन में सरदार किशन सिंह, श्रवण सिंह और घसीटाराम व अन्य क्रांतिकारियों की भी गिरफ्तारी हुई। कुछ दिनों तक भूमिगत रहने के बाद २ जून, १९०७ को सरदार अजीत सिंह भी गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हे मांडले जेल (बर्मा) भेज दिया गया। बाद में ११ नवंबर १९०७ को ब्रिटिश सरकार ने किसानों के दबाव में उन्हें रिहा कर दिया।

अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से सरदार अजीत सिंह ने क्रांतिकारी साहित्य का प्रकाशन आरंभ कर दिया। इस क्रम में इलाहाबाद से 'स्वराज' नामक समाचार-पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। सूफी अंबा प्रसाद के साथ मिलकर उर्दू अखबार 'पेशवा' का भी प्रकाशन शुरू किया। उनके लिखे निबंधों को पढ़कर जहाँ एक तरफ जनता एकजुट हो रही थी वहीं दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार ने चिढ़कर पेशवा के प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया। इनके अन्य प्रकाशनों—बागी मसीहा, मुहिबान-ए-वतन, बंदर-बाँट, उँगली पकड़ते पंजा पकड़ा, गदर १८५७, आदि को भी ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया।

भारत के बाहर क्रांतिकारी गतिविधियाँ

१९०८ में प्रतिबंध के बावजूद सरदार अजीत सिंह ने लाहौर में जनता के बीच एक जोरदार भाषण दिया, परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तत्काल गिरफ्तार करके मृत्युदंड देने का आदेश जारी कर दिया। इससे बचने के लिए वे सूफी अंबप्रसाद व तीन अन्य साथियों के साथ ईरान चले गए। वहाँ उनकी मुलाकात सैयद असदुल्लाह से हुई जो ब्रिटिश हस्तक्षेप के कारण खुद को अपमानित महसूस कर रहे थे। उन्होंने गर्मजोशी से अजीत सिंह का स्वागत किया और कहा कि हमारे दुश्मन एक हैं इसलिए हम लोग मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ेंगे। ईरान के साथ मिलकर अंग्रेजो के खिलाफ लड़ते हुए क्रांतिकारी सूफी अंबाप्रसाद ईरान के शिराज शहर में शहीद हो गए। उन्होंने 'मोहब्बत-ए-वतन' नामक पुस्तक लिखी थी।

सरदार अजीत सिंह भेष बदलकर मिर्जा हसन खान के नाम से फारसी (ईरानी) पासपोर्ट पर यात्रा करते रहे, वे ईरान से तुर्की वहाँ से वियना फिर जर्मनी और बाद में फ्रांस पहुँचे। वहाँ वे भारतीय क्रांतिकारियों श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम भीकाजी कामा, सरोजिनी नायडू के भाई हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय के संपर्क में आए और क्रांतिकारी गतिविधियों को नई ऊर्जा प्रदान की। लगभग पाँच महीने फ्रांस रहने के बाद लुसाने (स्विट्जरलैंड) में १९१३ तक वहाँ अंग्रेजी अध्यापन का कार्य किया और गुप्त रूप से रूस और पोलैंड के लोगों के साथ मिलकर युद्ध लड़ने के गुण और भूमिगत रहकर काम करने की कलाएँ भी सीखीं।

भारतीय कला, विरासत, इतिहास एवं राजभाषा अध्येता। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं, वेब पोर्टल एवं समाचार-पत्रों में लेखन व शोध-कार्य प्रकाशित। अनुवाद विश्लेषण के रूप में पचास से अधिक लेखों व पाँच पुस्तकों का सफल अनुवाद किया।

प्रथम विश्वयुद्ध शुरू होने पर सरदार अजीत सिंह यूरोप से रियो डी जेनेरिओ चले गए। वहाँ ब्राजील की नागरिकता लेकर उत्तरी अमेरिका के कई देशों का दौरा किया। १९१८ में सैन फ्रांसिस्को में वे गदर पार्टी के संपर्क में आए। अमेरिका में रहने के दौरान भगत सिंह उनसे पत्राचार के माध्यम से संपर्क करते रहे। भगत सिंह ने अपने संदेश में अजीत सिंह को वतन वापस आकर अपना अधूरा काम पूरा करने का आग्रह किया और उनकी पार्टी में शामिल होने की इच्छा भी जताई। भगत सिंह अपने पत्रों से अवगत कराते कि विधानसभा में उनके ठिकाने के बारे में सवाल पूछे जाते हैं तथा वे उन्हें देश में हो रहे क्रांतिकारी संघर्षों की जानकारी भी देते थे। असेंबली में बम फेंककर अंग्रेजों को दहशत में डालने के बाद जब भगत सिंह की गिरफ्तारी हुई तो उन्होंने पंडित मोतीलाल नेहरू से कहा कि वे अपने चाचा अजीत सिंह से एक बार मिलना चाहते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश भगत सिंह अपने चाचा से नहीं मिल पाए और सरदार अजीत सिंह को भगत सिंह के ट्रायल और उनकी फाँसी की खबर समाचार-पत्रों के माध्यम से मिली।

१९३२ में अजीत सिंह ब्राजील से पेरिस आ गए और लगभग दो वर्षों तक रहकर अपने पुराने संपर्कों को पुनर्जीवित किया व साथ ही साथ नए लोगों से संपर्क भी स्थापित किया। १९३४ में स्विट्जरलैंड पहुँचकर राजनयिकों और राष्ट्र संघ के सदस्यों से संपर्क स्थापित किया। दो वर्षों तक स्विट्जरलैंड में रहने के बाद तीन साल तक जर्मनी रहे और इस दौरान उनकी मुलाकात सुभाष चंद्र बोस से बर्लिन में हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के छिड़ने के समय वे इटली के नेपल्स पहुँचे। वहाँ पर रोम रेडियो के माध्यम से हिंदुस्तानी और फारसी दोनों भाषाओं में अपने भाषणों और नाटकों के जरिए आजाद हिंद फौज के सैनिकों की बहुत मदद की। अगस्त १९४३ में रेडियों से अपना आखिरी प्रसारण देने के बाद रोम से वेनिस चले गए।

गिरफ्तारी एवं रिहाई

अंग्रेजों के खिलाफ मुखर होकर बोलने और उनके द्वारा किए जा रहे शोषण और अत्याचार को भारत ही नहीं अपितु वैश्विक जगत् के सामने उजागर करने के कारण अजीत सिंह अंग्रेजों को फूटी आँख नहीं सुहा रहे थे। द्वितीय विश्वयुद्ध में धुरी राष्ट्र पराजित हुए और उसके तुरंत बाद २ मई,

१९४५ को अजीत सिंह को इटली के मिलान शहर से गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी के बाद उन्हें इटली और जर्मनी के कई शिविरों में रखा गया। फिर उन्हें अमेरिकन शिविर और फिर ब्रिटिश शिविर में ले आया गया। लेकिन शिविरों में मिल रही यातना से अजीत सिंह का स्वास्थ्य लगातार खराब होता चला गया। दूषित हवा और अधिक ठंड बर्दाश्त ना होने के कारण शारीरिक स्थिति काफी खराब हो गई।

इन सबके बावजूद वो जेल में पुस्तकों का नियमित अध्ययन करते रहे। लंदन सैन्य अस्पताल में स्थानांतरित होने के बाद श्रमिक संघ के सरदार निरंजन सिंह व भारत सभा के प्रतिनिधि उनसे मिलने आए। स्वास्थ्य खराब होने के कारण भारत से उनकी रिहाई की माँग लगातार उठने लगी थी और अंततः उन्हें रिहा करके भारतीय उच्च आयोग के हवाले कर दिया गया। भारतीय उच्चायुक्त के कार्यालय से जवान बखत सिंह उनकी सेवा में रहे।

वतन वापसी

वर्षों बाद आखिरकर वह समय आ गया जब ८ मार्च, १९४७ को सरदार अजीत सिंह को लंदन से कराची ले आया गया। जहाँ उनका जनता ने बेहद गर्मजोशी से भव्य स्वागत किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर विदेशों में संघर्ष करनेवाले अजीत सिंह ३८ साल बाद मार्च १९४७ को ६६ साल की उम्र में जब अपने घर पहुँचे तब उनकी पत्नी उन्हें नहीं पहचान पाईं। कराची के बाद वे दिल्ली आए और जवाहरलाल नेहरू व अन्य नेताओं से मुलाकात की। दिल्ली में कुछ समय तक रहने के बाद वे डलहौजी चले गए।

अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति

इतना लंबा संघर्षमय जीवन व्यतीत करने के बाद भी उनकी आँखों ने स्वतंत्रता के स्वप्न को देखना बंद नहीं किया था। आखिरकार वह दिन आ ही गया जब भारत ने एक नए प्रकाश की किरण देखी और हमारा देश परतंत्रता की बेड़ियाँ काटकर पूर्ण रूप से स्वतंत्र हुआ। परंतु दुर्भाग्यवश देश को विभाजन स्वीकार करना पड़ा। जीवन के प्रत्येक संघर्षों पर विजय पानेवाले सरदार अजीत सिंह विभाजन की विभीषिका को बर्दाश्त नहीं कर पाए और १५ अगस्त, १९४७ के दिन ही अनंतशायी बन जीवन की अंतिम यात्रा पर चले गए। मृत्यु के ठीक पहले सरदार अजीत सिंह के आखिरी शब्द थे, 'भगवान् का शुक्र है, मेरा मिशन कामयाब हो गया'। ऐसी अमर हुतात्मा का यह देश सदैव ऋणी रहेगा।

बी-१८, चतुर्थ तल, गणेश नगर,
पांडव नगर कॉम्प्लेक्स, दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ७०५३१८३२२२

लघुकथा

जमाना

• भगवान वैद्य 'प्रखर'

बगल के मकान से किसी खटके की आवाज आई। सबने सुनी। एक-दूसरे की ओर आशंकाग्रस्त निगाहों से देखा। पर अगले ही पल सब अपने-अपने काम में जुट गए एक दादू को छोड़कर। दादू बेचैन हो गए। अपने स्थान से उठे और बाहर फाटक की ओर जाने लगे तो पुत्र अनुलोम ने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं?"

दादू ने आवाज की दिशा में हाथ की तर्जनी उठा दी।

"कुछ नहीं है···। आप बैठिए अपनी जगह।"

थोड़ी देर बाद फिर आवाज आई। लगा—जैसे कोई अलमारी तोड़ रहा है। दादू फिर चौंके। इधर-उधर देखने लगे। सब अपने काम में मशगूल। आवाजें आती रहीं। कभी बरतन गिरने की तो कभी तोड़-फोड़ की। दादू बेचैन होते रहे।

अगले दिन सुबह पड़ोसी लौटे तो उन्हें घर का ताला टूटा हुआ मिला। भीतर प्रवेश पर पता चला, घर में चोरी हुई है। पुलिस आई। पड़ोसी के नाते अनुलोम के घर भी पूछताछ होने लगी।

"क्या आप लोग कुछ बता सकते हैं?"

"जी नहीं, हमें भी आज सुबह ही पता चला। कहना चाहिए, कोई बेहद शातिर है···।"

"किसी प्रकार की कोई हलचल या किसी पर संदेह?"

"जी, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हम लोग देर रात तक तो टी.वी. देखते रहे, किसी ने कोई आवाज नहीं सुनी।"

अनुलोम जवाब दिए जा रहा था। हॉल में एक ओर बैठे दादू बार-बार अपनी कुरसी से उठने को उद्यत थे।

पुलिस लौट गई। अनुलोम हाथ में एक गोली और गिलास में पानी लेकर दादू के पास आया। गोली दादू की हथेली पर रखते हुए बोला, "केवल गोलियाँ खाते रहने से बी.पी. कम नहीं होगा। आप अपनी आदत छोड़िए। अब वो आपका जमाना नहीं रहा।"

३०, गुरुछाया कॉलोनी,
साईंनगर, अमरावती-४४४६०७ (महा.)
दूरभाष : ९४२२८५६७६७
vaidyabhagwan23@gmail.com

धनगर जाति का लोक-साहित्य

● योगेश राणुजी कोरटकर

समाज और लोक-साहित्य का संबंध शरीर और आत्मा का रहा है। जिस प्रकार शरीर से आत्मा का निकल जाना आदमी को मृत कहलाता है, ठीक उसी प्रकार समाज से लोक-साहित्य को भिन्न किया जाए तो समाज मृत कहलाएगा। लोक-साहित्य का निर्माता समाज ही रहा है। जिसे हम संस्कृति, रीति-रिवाज, सन-उत्सव कहते हैं, वह सब लोक-साहित्य में ही समाहित है। भावनाओं को सशक्त रूप से अभिव्यक्त तथा विरेचन का सबसे सशक्त माध्यम लोकगीत है, जो लोक-साहित्य का एक अंग है।

जनसाधारण में हम उन लोगों को या समूहों को ले सकते हैं, जो विशेष वर्ग से भिन्न या पृथक् होते हैं, इनके मौखिक साहित्य को ही लोक-साहित्य कहा जाता है। उन लोगों का प्राप्त ज्ञान-विज्ञान या आधुनिकता पर आधारित नहीं होता अति पूर्व प्रचलित परंपराएँ और पीढ़ी दर पीढ़ी श्रुतज्ञान होता है। समाज में व्याप्त विश्वास भावनाएँ, आदर्श को वे प्रधानता देते हैं। जीवन में आए हुए संघर्ष निराशा को वे गीतों, लोककथाओं, लोकनृत्य आदि के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न हो साधारण जन को आंदोलित करती हैं, वे लोक-साहित्य के नाम से पुकारी जाती हैं।"

'धनगर' जाति का भी अपना एक लोक-साहित्य है, जो भारतीय संस्कृति का गौरव बढ़ाने का काम करता है। 'धनगर' जनजाति भारत की घुमंतू जनजातियों में प्रमुख स्थान रखती है। यह जनजाति आज पूरे भारतवर्ष में पाई जाती है। इस जनजाति का राष्ट्रीय सभ्यता से अलग संस्कृति, वेशभूषा, अलंकार तो है ही, साथ-साथ संस्कार एवं पर्व भी अलग है। हर एक संस्कार एवं पर्वों के अनुरूप उनकी अपनी कुछ विधियाँ हैं, वे इन्हीं विधियों के अनुरूप संस्कार एवं पर्व संपन्न करते हैं। वर्ष के कुछ महीने वे भेड़-बकरियों के साथ यायावरी करते हैं तो कुछ महीने स्थिर जीवन व्यतीत करते हैं। धनगरों की यह प्रवृत्ति आज भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह आदिम मेषपालक तथा पशुपालक जनजाति रही है। इनके गजनृत्य अथवा गजेनृत्य, सुंबराण एवं हुईक अपनी अलग संस्कृति होने का दावा करती है।

सुपरिचित लेखक। पत्र-पत्रिकाओं में शोध-आलेख एवं संगोष्ठी में प्रपत्र प्रस्तुति। संप्रति डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय के अंतर्गत लघु शोध प्रबंध एवं शोध प्रबंध प्रस्तुत। यु.जी.सी. द्वारा संशोधन के लिए फेलोशिप प्राप्त।

गजनृत्य/गजेनृत्य

'गज' संस्कृत का शब्द है, जिसका अर्थ 'हाथी' होता है। धनगर जाति अपने विशेष पर्व एवं त्योहार पर धीमी ताल, लय से जो नृत्य करते हैं, उसे 'गजनृत्य' या 'गजेनृत्य' कहते हैं। यह नृत्य हाथी के चाल जैसा होता है, इसलिए भी इसे 'गजनृत्य' कहते हैं। आदि-अनादि काल से धनगर समाज में यात्राओं में तथा विशिष्ट देवी-देवता, जैसे बिरोबा, बाबीर देव, धुळोबा, भिवाइया, खंडोबा आदि के सामने गजनृत्य करने का विधान है। यह परंपरा आज भी धनगर समाज में दिखाई देती है। गजनृत्य के सिवाय इनके त्योहार-उत्सव न के बराबर होते हैं। यह परंपरा काफी पुरानी है। अलग-अलग तरह के आभूषण पहनकर गाँव तथा यात्राओं में जुलूस निकाला जाता है। जिसका स्वरूप 'नृत्य' ही होता है। 'गजनृत्य' से ही इनकी यात्रा उत्सव संपन्न होता है। आज आधुनिकता वश इसमें थोड़ा-बहुत बदलाव आया है, परंतु 'गजनृत्य' या गजेनृत्य धनगर जाति में आज भी देखने को मिलता है।

हुईक

'हुईक' यह धनगर जाति की परंपरागत भविष्य विधान विधि है। यह विधि हर साल संपन्न होती है। अलग-अलग स्थानों पर धनगर जाति के लोग इस विधि में बड़े पैमाने में भाग लेते हैं और इसमें पूरे वर्ष का भविष्य धनगर भगत द्वारा कहा जाता है। 'हुईक' कहने वाला व्यक्ति अथवा भगत

संबंधित देवता के सामने बैठकर अपने शरीर में उस संबंधित देवता का संचार करता है और पूरे वर्ष में क्या-क्या घटनाएँ घटित होनेवाली हैं, इनका लेखा-जोखा अपने मुख से बताता है। जैसे बारिश का मौसम कैसा रहेगा ? कौन सी फसल अच्छी रहेगी ? भेड़-बकरियों के लिए यह साल कैसा होगा ? आदि महत्त्वपूर्ण भविष्य की बातें भगत 'हुईक' विधि में बताता है। इस भविष्य कहनेवाली विधि को ही 'धनगर' जाति में 'हुईक' कहते हैं।

'हुईक' कहनेवाला भगत 'बाबीर, बिरोबा, धुळोबा, खंडोबा' का भगत रहता है। ऐसे कई भगत रहते हैं। हर एक अपने श्रद्धा भाव से संबंधित देवता को अपना आराध्य मानकर पूजते हैं और भगत बनकर 'हुईक' बताता है। वह 'हुईक' इस प्रकार का होता है—

रुईच्या या देवाला
बाबीर मह्या नावाला
ऐकारे बाबानों, ऐकारे दादानों
या वरसाच निरुपन
काय होईल ते मंग
ध्यान देवुनी तुम्ही ऐका
या भंडारघरात जो कोणी धर्म करील
शेराच सव्वाशेर होईल रं
ढवाळ पातळ जास्त पिकन
पण ते कवडीमोल होईल
गारा जास्त पडण
पोळी ऐवजी भाकरी जास्त खाईन
दुधात इरजन पडल
जो ग्यानिवंत असेल ही बोली समजेल
अनुभव कसा बघा येईल
नाही तर मी देवच नाही म्हणनार
याला दगडच म्हणाव रं

संबंधित 'हुईक' विधि में बाबीर भगत कहता है कि हे मेरे भक्तो! मेरी बात ध्यान देकर सुनो, जो इस साल धर्म, दान-दक्षिणा करेगा, उसका भला होगा, उसको आर्थिक परेशानी नहीं रहेगी। खेती में कपास की फसल अच्छी रहेगी, परंतु उसको कवड़ीमोल दाम मिलेगा। गेहूँ के बजाय बाजरा, ज्वार की फसल ज्यादा दाम देगी। भेड़-बकरियों को रोग का सामना करना पड़ेगा। यह सब सच है, इसमें अगर झूठ निकला तो मैं ईश्वर नहीं, बल्कि पत्थर समान हूँ।

संबंधित 'हुईक' विधि में बाबीर भगत कहता है कि हे मेरे भक्तो! मेरी बात ध्यान देकर सुनो, जो इस साल धर्म, दान-दक्षिणा करेगा, उसका भला होगा, उसको आर्थिक परेशानी नहीं रहेगी। खेती में कपास की फसल अच्छी रहेगी, परंतु उसको कवड़ीमोल दाम मिलेगा। गेहूँ के बजाय बाजरा, ज्वार की फसल ज्यादा दाम देगी। भेड़-बकरियों को रोग का सामना करना पड़ेगा। यह सब सच है, इसमें अगर झूठ निकला तो मैं ईश्वर नहीं, बल्कि पत्थर समान हूँ।

इस प्रकार धनगर समाज में आज भी 'हुईक' कहने की विधि बड़े पैमाने पर मनाई जाती है।

सुंबराण

'धनगर' समाज में 'सुंबराण' को बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। विविध यात्राओं, त्योहार तथा शुभमंगल अवसर पर यह 'सुंबराण' गीत गाने की परंपरा धनगरों में है। सुंबराण का शाब्दिक अर्थ है, 'स्मरण' धनगर लोक ईश्वर के स्मरण में जो गीत गाते हैं। उसी को ही 'सुंबराण' कहा जाता है। ये धनगरों के मौखिक महाकाव्य होते हैं। कई घंटों के यह स्मरण पर गीत रहते हैं। विशिष्ट ताल-लय में गाए जाने के कारण ये गीत श्रवणीय हो जाते हैं। इन गीतों में धनगरी देवता—बाबीर, धुळोबा, खंडोबा, भिवाया का शौर्य तथा जन्म पर आधारित 'सुंबराण गीत' होते हैं तथा स्मरण गीत होते हैं, जैसे—

सुंबराण मांडल गा सुंबराण मांडल
सुंबराण मांडल गा सुंबराण मांडल
शिरी सोन्याचं जावळ व सोन्याच जावळ
सोन्याचं व जावळ धुळु माझ्या देवाच
धुळु माझ्या देवाचं व धुळु माझ्या देवाचं
सुंबराण मांडल गा सुंबराण मांडल
बाबीर मह्या देवाच बाबीर मह्या देवाच
रुईच्या या देवाच गा रुईच्या देवाच
सुंबराण मांडल गा सुंबराण मांडल
बिरोबा माझ्या देवाच गा बिरोबा देवाच
विठ्ठल ह्या अवताराच गा आवताराच
सुंबराण मांडल गा सुंबराण मांडल
जेजुरी या रायाच गा खंडोबा देवाच
बानाईच्या कारभाऱ्याच गा कारभाऱ्याच
सुंबराण मांडल गा सुबराण मांडल

इस तरह धनगर लोग सुंबराण के माध्यम से बिरोबा, खंडोबा, बाबीर देव, धुळोबा को नमन करते हुए लंबे समय तक ऐसे स्मरण गीत गाते हैं। यह परंपरा आज भी धनगर समाज ने सहेजकर रखी है। इस कारण धनगरों के लोक-जीवन में सुंबराण को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ है।

कहा जा सकता है कि हर एक समाज में अपनी-अपनी परंपरा होती है। उसी प्रकार धनगर समाज की अपनी एक परंपरा, संस्कृति है, जो भारतीय संस्कृति का गौरव एवं वैभव बढ़ाती है।

सा अ

शोध-छात्र, हिंदी विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा
विश्वविद्यालय, औरंगाबाद (महा.)
दूरभाष : ७७७६०३४०९२

वर्ग पहेली (१९३)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० अप्रैल, २०२२ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रा द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जून २०२२ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

बाएँ से दाएँ—

१. सहारा, सामीप्य, भरोसा (२)
३. किसी की तरक्की देखकर ठंडी साँस भरना, किसी वस्तु की तीव्र इच्छा (३)
५. साथी, सहायक (२)
६. नामों की सूची (४)
८. अजवायन, मस्ती, युवावस्था (३)
१०. मानसिक पीड़ा, कसक (२)
१३. पाद-प्रहार, पाँव (२)
१४. प्रेम करना, किसी पर दिल आना (मुहा.) (२,४)
१६. विमुख होना (मुहावरा) (२,२,२)
१९. अलग, जुदा, खंडित (२)
२०. विद्या, उपदेश, सबक (२)
११. बाग वाटिका (३)
२३. उलटा करना, नष्ट करना (४)
२५. जायका, मजा, रसानुभूति (२)
२६. एक प्रसिद्ध धान (३)
२७. बड़ी नदी (२)

ऊपर से नीचे—

१. लौटना, शरू होना (२)
२. बुलाया या एकत्र किया हुआ, ललकारा हुआ (४)
३. छोटी साली, अभी, किसान (२)
४. बटन का छेद, विवाहादि कृत्य (२)
५. किवाड़ के पल्ले के किनारे लगाई जानेवाली वह लकड़ी, जो दूसरे पल्ले को खुलने से रोकती है, त्रिवेणी (२)
७. कुबेर, बगुला (२)
९. बातों की लपेट, उलझाव (३)
११. गौर, स्वरूप, चिंतन, बुद्धि, स्मृति (२)
१२. दूसरे की जगह अस्थाई रूप से काम करने के लिए नियुक्त, एवजी (४)
१३. कृष्ण, एक प्रकार का तोता (४)
१४. प्रधान या मुखिया, महकता हुआ (३)
१५. भाड़े पर देना, नीचे से ऊपर ले जाना (३)
१७. यूरोपियन, विलायती तलवार (३)
१८. पूर्वी एशिया का एक बड़ा द्वीप, शराब बनाने का मसाला (२)
१९. भीख माँगने के लिए फिरना (४)
२०. चट्टान, सिल (२)
२१. बुरा, खराब (२)
२२. पिता का भाई (२)
२३. जमीन का लंबा छेद (२)
२४. शब्द, ध्वनि (२)

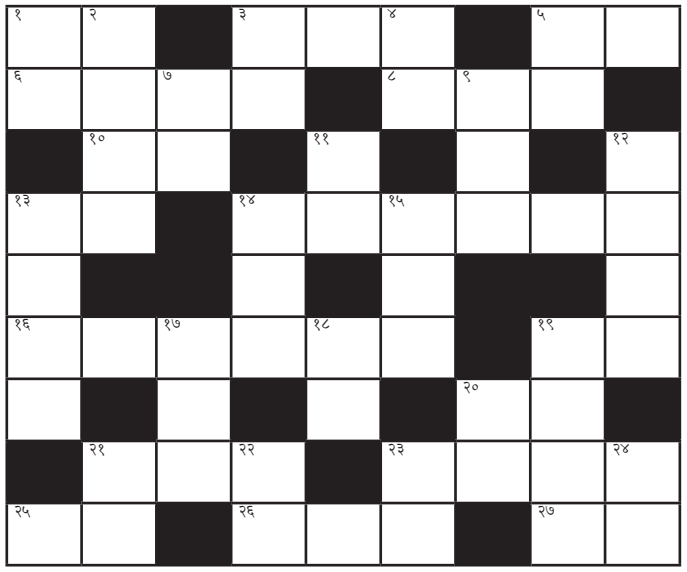

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१९२) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१९१) का शुद्ध हल

१ नि	स्ता	२ र		३ त	त्त्वा	४ व	धा	५ न
हा		६ सि	या	र		गै		तो
७ ल	८ ल	क				९ र	१० स	द
	व		११ गि	ला		१२ ह	जा	र
१३ पा	नी	१४ दा	र		१५ ट्रै		व	
ख		१६ स	दा	१७ ब		१८ अ		१९ पं
	२० सं		२१ न	टु		२२ प	र	चा
२३ सं	वि	२४ ता		२५ आ	२६ चा	र्या		न
२७ न	दा	र	द		स	प्त	दि	न

★ पुरस्कार विजेता ★

१.**श्री जे.एल. शर्मा**
क्वार्टर नं. १५८/सी,
यदुनंदन नगर, बिलासपुर (छ.ग.)
दूरभाष : ९१७९४६७६९२

२.**श्री शिवकांत यादव**
गाँव-पोस्ट : सेहलंग
जिला-महेंद्रगढ़-१२३०२८
दूरभाष : ९९९१२६९५१२

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १९१ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री संतलाल रोहिल्ला (महेंद्रगढ़), फकीरचंद ढुल (कैथल), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), सुमित कुमार (भीलवाड़ा), देवेश सुथार (जयपुर), भूप सिंह (हरिद्वार), मूलचंद राज (बाराबंकी), आनंद शर्मा, दिनेश शुक्ल, वी.के. सिंह (दिल्ली)।

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

रंगारंग आवरण के साथ 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक मिला। पढ़कर मन हर्षित हो गया। सभी रचनाएँ पठनीय व स्तरीय हैं। महाप्राण निराला जैसी हिंदी की सार्वकालिक विभूतियों की रचनाएँ प्रस्तुत कर आप आज की पीढ़ी पर एक उपकार ही कर रहे हैं। 'जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख' में भी हर अंक में माँ भारती के दो वीर सपूतों का पुण्य स्मरण करके आप वर्तमान पीढ़ी को उनके त्याग, बलिदान और शौर्य से परिचित करवा रहे हैं। सभी लेख अपने आप में पूर्ण हैं और एक दृष्टि देते हैं। 'राम झरोखे बैठके' में गोपाल चतुर्वेदीजी वर्तमान सामाजित परिदृश्य पर बहुत तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं। वीरेंद्र जैन और वरुण कुमार के संस्मरण अच्छे हैं। आप इसी प्रकार पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि परिष्कृत करते रहें।

—अपराजिता, मुंगेर (बिहार)

विभिन्न रंगों में रँगे आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक मिला। पूरे मनोयोग से पढ़ने के बाद लगा कि यह अंक भी पठनीय व संग्रहणीय बन पड़ा है। इस अंक में समाविष्ट सभी रचनाएँ रोचक व ज्ञानवर्धक हैं। बाल-कहानी 'विश्वासघात' बहुत अच्छी लगी। इस कहानी में अनुराग ने अपने मित्र प्रशांत से विश्वासघात किया था, जिसके कारण वह ताउम्र पश्चात्ताप की अग्नि में जलता है। यह कहानी बच्चों के साथ-साथ सभी उम्र के लोगों को सीख देनेवाली है। हरिओम पंवारजी की कविता 'अधिकारों का उच्चारण हूँ' भी अच्छी लगी। अन्य रचनाएँ भी ज्ञानवर्धन करनेवाली हैं। पत्रिका के श्रेष्ठ संपादन के लिए 'साहित्य अमृत' के संपादक-मंडल को साधुवाद।

—अतुल शर्मा, बागपत (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' के मार्च अंक की बाह्य व आंतरिक साज-सज्जा आकर्षक व सारगर्भित है। संपादकीय 'सत्यमेव जयते' वाले देश में समाज के उन लोगों को आईना दिखाने का काम किया है, जो आजकल किसी भी खबर की जाँच-परख किए बिना सोशल मीडिया पर फॉरवर्ड कर देते हैं। जैसे किसी अन्य के शब्दों को 'लता मंगेशकर के अंतिम शब्द' का नाम देकर सोशल मीडिया पर एक-दूसरे को फॉरवर्ड करते हैं, यह सब सोशल मीडिया की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगाता है। प्रतिस्मृति में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कहानी 'हिरनी' बहुत अच्छी लगी। इस कहानी के माध्यम से निरालाजी ने उन लोगों को आईना दिखाया है, जो दूसरों की प्रशंसा से जलते हैं और खुद को अपने अन्नदाता की नजरों में बनाए रखने के लिए अन्य सहकर्मी पर झूठा आरोप लगाते हैं, जैसे हिरनी के साथ अन्य दासियों ने किया। इस कहानी में प्रेम, करुणा, क्रोध, क्रूरता आदि सब है। हरिओम पंवारजी ने अपनी कविता 'अधिकारों का उच्चारण हूँ' में इतने कम शब्दों में अफगानिस्तान पर हक्कानी-तालिबानियों के कब्जे की क्रूर कहानी का संपूर्ण चित्रण किया है। इस उत्कृष्ट रचना के लिए पंवारजी की लेखनी को प्रणाम। इस अंक में आलेख की प्रमुखता है। अर्पणा चित्रांश द्वारा अनूदित संदीप कुमार पी के आलेख 'केरल में स्वतंत्रता संग्राम' में केरल के स्वतंत्रता सेनानियों के शौर्य व उनके युद्ध-कौशल का बखूबी चित्रण किया गया है, जो पाठकों का ज्ञानवर्धन करता है। चुनावी मौसम में कविता 'चुनावी सिचुएशन' अच्छी लगी। इन सबके अलावा अन्य रचनाएँ भी अच्छी हैं।

—शंकर सिंह, भोपाल (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का मार्च-२०२२ अंक पढ़ा। विशेष रूप से आलेख पर केंद्रित 'साहित्य अमृत' का मार्च अंक पठनीय, रोचक व संग्रहणीय बन पड़ा है। संपादकीय ('सत्यमेव जयते वाले देश में') में सोशल मीडिया के यूजर्स को यह नसीहत दी गई है कि बिना सोचे-समझे या बिना जाँचे-परखे किसी भी खबर को यों ही फॉरवर्ड नहीं कर देना चाहिए। साथ ही, इसमें यह भी सुझाया गया है कि अमृत महोत्सव कैसे मने। प्रतिस्मृति में दी गई सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कहानी 'हिरनी' बेहद अच्छी लगी। पंकज साहा का आलेख 'सखि! वसंत आया' फाल्गुनी व बासंती रंग लिये हुए है। 'जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख' में रासबिहारी बोस और लाला हरदयाल जैसे हुतात्माओं के संक्षिप्त परंतु तथ्यपरक जीवनवृत्त पढ़कर उनके प्रति श्रद्धा और बढ़ गई। इस अंक में यात्रा-वृत्तांत नहीं है, जिसके कारण घुमक्कड़ों की क्षुधा शांत नहीं हुई। मार्च अंक की अन्य कहानियाँ, कविताएँ व आलेख अच्छे हैं।

—भद्रसेन श्रीवास्तव, अजमेर (राज.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक आकर्षक मुखपृष्ठ के साथ प्राप्त हुआ, जो रंगोत्सव को दरशाता है। हेमंत शर्मा का आलेख 'समरसता के प्रतीक रामानुजाचार्य' पढ़कर रामानुजाचार्यजी के महान् व्यक्तित्व का दर्शन हुआ। यह आलेख ज्ञानवर्धन करनेवाला है। अन्य आलेख शिक्षाप्रद हैं। इस अंक की कहानियाँ व कविताएँ रोचक, प्रेरणादायक व मनोरंजक हैं। कम शब्दों में अपना भाव स्पष्ट करना दुष्कर कार्य है, परंतु हरिओम पंवारजी जैसे कवि के लिए नहीं, और इसका उदाहरण है यह कविता 'अधिकारों का उच्चारण हूँ'।

—रामपाल वर्मा, कैथल (हरियाणा)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक मिला। प्रतिस्मृति में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कहानी 'हिरनी' बहुत अच्छी लगी। अन्य कहानियों में ऊषा किरण खान की 'आवाजाही', विजय कुमार की 'गाँठ', वेदमित्र शुक्ल की 'बुरा न मानो होली है' अच्छी बन पड़ी हैं। संदीप कुमार पी का आलेख 'केरल में स्वतंत्रता संग्राम' बेहद जानकारीपरक एवं ज्ञानवर्धक है। हरिओम पंवार की कविता 'अधिकारों का उच्चारण हूँ' जोश पैदा करनेवाली है। इनके अलावा राम अवतार बैरवा की 'रिहाई की राहें', सुनील त्रिपाठी 'निराला' की 'ऋतुराज वसंत आया', कवींद्र कुमार मिश्र की 'ठिठुरता मौसम' भी अच्छी लगीं। आजादी के पचहत्तरवें साल में 'जिन्होंने जगाई स्वाधीनता की अलख' शहीदों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। पूरन सरमा का व्यंग्य मनोरंजक है। कुल मिलाकर पूरा अंक ही पठनीय है एवं संग्रहणीय बन पड़ा है। पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति के सोपान चढ़े, यही शुभकामना है।

—आनंद शर्मा, (दिल्ली)

त्रिदिवसीय पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह संपन्न

२३ से २५ फरवरी तक श्रीनाथद्वारा में 'साहित्य मंडल' द्वारा आयोजित त्रिदिवसीय पाटोत्सव ब्रजभाषा समारोह के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता सेवानिवृत्त आई.ए.एस. अधिकारी श्री जगदीश शर्मा ने की। मुख्य अतिथि प्रो. नंदकिशोर पांडेय तथा विशिष्ट अतिथि सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति श्री चंद्रभाल सुकुमार एवं श्री मदनमोहन शर्मा 'अकिंचन' रहे। दर्जनभर महानुभावों को 'ब्रजभाषा विभूषण' एवं 'हिंदी साहित्य मनीषी' की मानद् उपाधि से समादृत किया गया। श्री विट्ठल पारीक व श्री हरिओम हरि ने समादृत साहित्यकारों के गद्यात्मक व पद्यात्मक परिचय पढ़े। संचालन साहित्य मंडल के प्रधानमंत्री श्री श्याम देवपुरा ने किया। श्री विट्ठल पारीक की अध्यक्षता में विशाल ब्रजभाषा कवि-सम्मेलन हुआ, जिसमें ख्यातनाम कवियों ने सरस काव्य-पाठ किया। द्वितीय दिवस के प्रथम सत्र की अध्यक्षता डॉ. उमेशचंद्र शर्मा ने की। सर्वश्री अनुज प्रताप सिंह, राजमल परिहार व सुरेंद्र सार्थक विशिष्ट अतिथि थे। 'वल्लभ संप्रदाय में राष्ट्रीय एकता का अमृत भाव' विषय पर आलेख प्रस्तुत किए गए। आठ साहित्यकारों को 'हिंदी साहित्य मनीषी' व 'हिंदी काव्य मनीषी' की उपाधि एवं शॉल, उत्तरीय, कंठहार, मेवाड़ी पगड़ी, श्रीनाथजी का प्रसाद, श्रीफल, श्रीनाथजी की छवि व अभिनंदन-पत्र प्रदान कर अलंकृत किया गया। द्वितीय दिवस के द्वितीय सत्र की अध्यक्षता साहित्य मंडल के उपाध्यक्ष पंडित मदनमोहन शर्मा 'अकिंचन' ने की। इस सत्र में श्रीमती आशा चतुर्वेदी की 'श्री विद्या ललित लालित्य', श्री गौरव सिंघवी की 'पलते हैं आँसू पलकों में', श्री गोपाल गुप्ता की 'महाभारत कथा', श्री सत्य प्रकाश शर्मा सोटानंद की दो पुस्तकें 'ब्रजरास रंगिणी', 'ब्रज वंदनम्', श्रीमती अंजनी छलोत्रे सवि की कृति 'सुनहरे सपनों का सफर', डॉ. सुरेश चतुर्वेदी सुमनेश की कृति 'काव्य कलश', श्री कुमार ललित की 'कोई हो मौसम मितवा' तथा पत्रिका 'टू मीडिया' के श्री प्रेमपाल शर्मा पर केंद्रित विशेषांक का भी लोकार्पण किया गया।

समारोह के तृतीय दिवस के प्रथम सत्र की अध्यक्षता ए.डी.एम., जोधपुर श्री विजय सिंह नाहटा ने की। सर्वश्री चंद्रभाल सुकुमार, विट्ठल पारीक, श्री श्रीकृष्ण शरद एवं वीरेंद्र लोढ़ा विशिष्ट अथिति रहे। 'हिंदी काव्य मनीषी' की मानद उपाधि से कवियों का सम्मान किया गया। तृतीय दिवस के अंतिम सत्र में अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन में कवियों ने अपनी रचनाएँ सुनाईं। संचालन श्री हरि ओम हरि एवं श्री अंजीव अंजुम ने किया। साहित्य मंडल के प्रधानमंत्री श्री श्याम देवपुरा ने सभी आगतों का आभार व्यक्त किया। □

फेसबुक कवि-सम्मेलन संपन्न

२२ फरवरी को पटना में फेसबुक के 'अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका' के पेज पर, भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् के तत्त्वावधान में ऑनलाइन आयोजित 'हेलो फेसबुक कवि-सम्मेलन' में सर्वश्री शंभू भद्रा, सविता सिंह नेपाली, शरद नारायण खरे, कुँवर वीर सिंह मार्तंड, राजप्रिया रानी ने अपने विचार रखे। इस ऑनलाइन कवि-सम्मेलन में देशभर के दो दर्जन से अधिक कवियों की भागीदारी रही। □

अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस पर वेबिनार संपन्न

२१ फरवरी को दिल्ली में हिंदू कॉलेज आई.क्यू.ए.सी. एवं हिंदी विभाग द्वारा संयुक्त रूप से 'अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' पर 'मातृभाषा हिंदी की चुनौतियाँ और संभावनाएँ' विषय पर वेबिनार संपन्न हुआ। मातृभाषा हिंदी पर बात करते हुए प्रो. अनिल राय ने हिंदी भाषा की जीवंतता, उसकी समृद्ध परंपरा पर प्रकाश डाला। प्रो. रामेश्वर राय ने औपचारिक स्वागत करते हुए विषय की प्रस्तावना प्रस्तुत की और यूनेस्को द्वारा 'अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' की स्थापना के संदर्भ में अपने विचार रखे। संचालन विभाग के प्राध्यापक डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह ने किया। □

साप्ताहिक व्याख्यानमाला संपन्न

नई दिल्ली में नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी द्वारा 'आजादी का अमृत महोत्सव' के विशेष संदर्भ में साप्ताहिक व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। 'स्वाधीनता संग्राम और हिंदी पत्रकारिता'। विषय पर प्रो. कुमुद शर्मा ने कहा कि भारतीय पत्रकारिता में भारतीय जन की लंबी यातना और संघर्ष का इतिहास सुरक्षित है। भारत को बड़े त्याग और बलिदान के बाद अजादी प्राप्त हुई। इसमें पत्रकारिता की बड़ी भूमिका है। अध्यक्षता प्रो. पूरनचंद टंडन ने एवं संचालन प्रो. राजरानी शर्मा ने किया। डॉ. नृत्य गोपाल ने आभार व्यक्त किया। □

साहित्य अकादेमी पुरस्कार-२०२१ (उर्दू) घोषित

२२ फरवरी को साहित्य अकादेमी द्वारा उर्दू भाषा में साहित्य अकादेमी पुरस्कार-२०२१ श्री चंद्रभान खयाल को उनके कविता-संग्रह 'ताजा हवा की ताबिशें' को दिए जाने की घोषणा की। □

'बिहारी पुरस्कार' घोषित

के.के. बिरला फाउंडेशन द्वारा वर्ष २०२१ के इकत्तीसवें 'बिहारी पुरस्कार' के लिए प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती मधु काँकरिया के उपन्यास 'हम यहाँ थे' का चयन किया है। पुरस्कारस्वरूप प्रशस्ति-पत्र, एक प्रतीक-चिह्न व ढाई लाख रुपए की राशि भेंट की जाती है। □

अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस पर संगोष्ठी संपन्न

२१ फरवरी को मातृभाषा दिवस के उपलक्ष्य में शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, भारतीय भाषा मंच और अध्ययन एवं अनुसंधान पीठ के संयुक्त तत्त्वावधान में द्विदिवसीय राष्ट्रीय तरंग संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का विषय था—'भारतीय भाषाओं के विकास का नया प्रस्थान बिंदु : नई शिक्षा नीति।' शुभारंभ प्रसिद्ध समाजधर्मी श्री अतुल कोठारी के कर-कमलों से हुआ तथा मुख्य समन्वयक प्रो. माला मिश्र थीं। संगोष्ठी में दोनों दिन देशभर की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं के प्रतिनिधि विद्वान् सर्वश्री अनिल शर्मा जोशी, रवि टेकचंदानी, राकेश कुमार दुबे, फिल्मेका मारबेनियांग, गणेश हेगड़े, सविता धूडकेवार, पी. सरस्वती, नवनीत शर्मा, बीना बुदकी, रामेंद्र सिंह, श्री लक्ष्मीनारायण भाला, विष्णु

पंड्या, गिरीश पंकज, हरि पाल सिंह, संदीप अवस्थी, इंदु वीरेंद्र, नीलाद्रि बैग, लक्ष्मण अधिकारी, गिरीश नाथ झा सम्मिलित हुए। सभी ने अपने विचार मातृभाषा और नई शिक्षा नीति के संदर्भ में बड़ी सुंदरता से अभिव्यक्त किए। भारतीय भाषा मंच के दिल्ली प्रांत के संयोजक डॉ. लोकेश गुप्ता ने धन्यवाद ज्ञापन किया। □

'अभी भी बची है कविता' कृति लोकार्पित

पिछले दिनों पटना के बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभागार में कवि श्री कमला प्रसाद की तीन काव्य पुस्तकों 'पत्थर होते समय में', 'कवि का यह मन' और 'अभी बच्ची है कविता' का विमोचन सम्मेलन अध्यक्ष डॉ. अनिल सुलभ की अध्यक्षता में नालंदा विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. के.सी. सिन्हा ने किया। सर्वश्री अमरनाथ सिन्हा, भगवती प्रसाद द्विवेदी, अरुण शादवल, राजेश शुक्ला, उपेंद्रनाथ पांडे, रणविजय कुमार, शंकर प्रसाद, मधु वर्मा, अज्ञनाथ तिवारी और अभिजीत कश्यप ने पुस्तक पर अपने विचार प्रस्तुत किए। लोकार्पण के पश्चात् उपरोक्त रचनाकारों के अतिरिक्त सर्वश्री आराधना प्रसाद, सिद्धेश्वर, मधुरेश नारायण, शमाँ कौसर शमाँ, मेहता नगेंद्र सिंह, विजय गुंजन, बच्चा ठाकुर, शानिली पांडे, अर्चना त्रिपाठी, छाया मिश्रा, जय प्रकाश पुजारी, वीणा कुमारी, ब्रह्मानंद पांडे, कमल किशोर, सुषमा कुमारी, अर्जुन प्रसाद सिंह, नरेंद्र कुमार, लाल मोहन प्रसाद, अभय कुमार, श्याम बिहारी, अरुण कुमार आदि ने कविता पाठ किया। संचालन श्री सुनील कुमार ने और धन्यवाद ज्ञापन श्री श्रीकृष्ण रंजन सिंह ने किया। □

वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान घोषित

इंदौर में आपले वाचनालय एवं श्री सर्वोत्तम द्वारा उत्कृष्ट मराठी काव्य-कृतियों को दिए जानेवाले वसंत राशिनकर स्मृति अखिल भारतीय सम्मानों की घोषणा की गई है। कवि श्री राजू देसले की कृति 'अवघेचि उच्चार' का चयन कविवर्य वसंत राशिनकर स्मृति अ.भा. सम्मान-२०२१ के लिए तथा उल्लेखनीय काव्य कृतियों को दिए जानेवाले वसंत राशिनकर काव्य साधना अ.भा. सम्मान-२०२१ के लिए श्री संदीप काले की कृति 'सईच्या कविता वसई की', डॉ. पल्लवी परुलेकर बनसोडे की कृति 'देह्यूठ', संतोष विठ्ठलराव कांबले की कृति 'तुकोबाच्या कुलाचा वंश', डॉ. आशुतोष रारावीकर की कृति 'यशपुष्प', श्री विद्धयाधर बंसोड की कृति 'प्रश्न पाणी बदलण्याचा आहे', डॉ. शिवाजी नारायणराव शिंदे की कृति 'कैवार' तथा श्री हबीब भंडारे की कृति 'मरण्याच्या दारात जगण्याचा अर्थ शोधणारी माणसं' का चयन किया गया है। □

'नवग्रह वाटिका' पत्रिका का विमोचन संपन्न

७ मार्च को नई दिल्ली में भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने स्वदेशी समाज सेवा समिति, फिरोजाबाद द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'नवग्रह वाटिका' का विमोचन किया। इस अवसर पर सर्वश्री विवेक यादव, हितेंद्र सिंह एवं अरुण प्रकाश उपस्थित थे। □

अज्ञेय के जन्मदिवस पर संगोष्ठी संपन्न

७ मार्च को कवि अज्ञेय के जन्मदिवस पर विद्याश्री न्यास, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' भारतीय साहित्य संस्थान न्यास/समिति (ट्रस्ट) एवं बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर के संयुक्त तत्त्वावधान में 'अज्ञेय की सौंदर्य दृष्टि' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई। स्वागत वक्तव्य श्री अमृतांशु शुक्ल ने तथा बीज वक्तव्य डॉ. अरुणेश नीरन ने दिया। मुख्य अतिथि प्रो. विश्वनाथ तिवारी ने सौंदर्य और सौंदर्य के उद्भव तथा विकास पर चर्चा करते हुए बताया कि संपूर्ण सृष्टि ईश्वर की कविता है; इसलिए सबकुछ सुंदर है, कुछ भी असुंदर नहीं। सुंदर और असुंदर का भेद यदि कहीं है तो विषयगत है अर्थात् सब्जेक्टिव है, ऑब्जेक्टिव नहीं। अध्यक्षीय वक्तव्य में श्री महेश्वर मिश्र ने अज्ञेय को प्रकृति का प्रेमी बताया। उन्होंने कहा कि अज्ञेय की लगभग सभी रचनाओं के शीर्षक प्रकृति पर आधारित हैं। सर्वश्री अनंत मिश्र, रामदेव शुक्ल, चितरंजन मिश्र ने भी विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. गौरव तिवारी ने तथा धन्यवाद ज्ञापन श्री सिद्धार्थ पांडेय ने किया। □

'भारतीय मनीषियों की प्रेरक भूमिका' लोकार्पित

१२ मार्च को एन.डी.एम.सी. कन्वेंशन सेंटर, नई दिल्ली में 'स्वाधीनता के अमृत महोत्सव' के उपलक्ष्य में भारतीय शारीरिक शिक्षा संस्थान (पेफी), युवा एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से आयोजित कार्यक्रम में डॉ. सरवन सिंह बघेल की पुस्तक 'भारतीय मनीषियों की प्रेरक भूमिका' का विमोचन भाजपा के राष्ट्रीय सचिव श्री सुनील देवधर, पंजाब स्पोर्ट विश्वविद्यालय के कुलपति ले.ज. (डॉ.) जे.एस. चीमा, पेफी के कार्यकारी अध्यक्ष प्रो. ए.के. उप्पल और पेफी के राष्ट्रीय सचिव डॉ. पीयूष जैन द्वारा किया गया। □

लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

९ मार्च को भोपाल में डॉ. देवेंद्र दीपक की अध्यक्षता में 'मध्य प्रदेश लेखक संघ' के तत्त्वावधान में दुष्यंत कुमार पांडुलिपि संग्रहालय में वीर रस के विख्यात कवि श्री पंवार राजस्थानी के काव्य-संग्रह 'हिंदुस्तान नहीं बदलेगा' का लोकार्पण संपन्न हुआ। इस अवसर पर २६ दिसंबर को श्री गुरु गोविंद सिंहजी के पुत्रों श्री जोरावर सिंह और श्री फतह सिंह के शहीदी दिवस 'वीर बालक दिवस' को राष्ट्रीय स्तर पर मनाने के भारत सरकार के निर्णय पर भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया गया। सर्वश्री राम वल्लभ आचार्य, विकास दवे, गौरीशंकर गौरीश, साधना बलवटे ने अपने विचार व्यक्त किए। □

प्रो. संजय द्विवेदी को 'पी.आर.एस.आई. लीडरशिप अवॉर्ड'

१३ मार्च को नई दिल्ली में भारतीय जनसंचार इंटरनेशनल पब्लिक रिलेशंस एसोसिएशन की अध्यक्ष सुश्री एत्सुको सुगिहारा एवं आयरलैंड में भारत के राजदूत श्री अखिलेश मिश्रा द्वारा संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी को पब्लिक रिलेशंस सोसायटी ऑफ इंडिया द्वारा 'पी.आर.एस.आई. लीडरशिप अवॉर्ड-२०२१' से सम्मानित किया गया है, जिसमें पी.आर.एस.आई. के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. अजीत पाठक भी उपस्थित थे। □